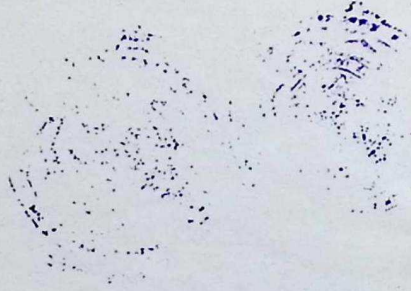


क्र.सं.
६३

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और
भाषा अनुवाद टिप्पणी और यन्त्रों के
आशय पर व्याख्यान से युक्त



क्र.सं. ६३



R.

रत्न पुस्तक भण्डार

"ग्रीन हाउस"

२७९, माईतीघर

काठमाडौं, नेपाल

फोन : ४-२४०८५०

ऋग्वेद संहिता (वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और
भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के
आशय पर व्याख्यान से युक्त

प्रथम मण्डल : ऋग्वेद खण्ड

सम्पादक

शिवनाथ आहिताग्नि

पं० शंकरदत्त शास्त्री



नाग प्रकाशक

११ए/यूए, जवाहर नगर, दिल्ली-७

नाग प्रकाशक

- (१) ११ए/यू. ए. जवाहरनगर, दिल्ली-७
- (२) ८ ए/यू. ए. ३ जवाहर नगर, दिल्ली-७
- (३) जलालपुर माफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN 81-7081-246-1(SET)

प्रथम संस्करण १९०४

द्वितीय संस्करण १९९१



R

Acc. 250000
290000

मूल्य: रु०

श्री नागशरण सिंह द्वारा नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली से
प्रकाशित ज्ञान आफसेट, शहजादा बाग, दिल्ली से मुद्रित ।

(३९८३)

क्र०मं०१ सू०१४५

क्र०मं० १ सू०१४५।

उचथ्यपुत्रो दीर्घतमाश्रुषिः अग्निर्देवता ।

विनियोगः—

१—५ इदं सूक्तं प्रातरनुवाकस्याग्नेयेकतौ जागते छन्दसि तथादिवन
शस्त्रे च विनियुक्तम् ॥ (आ० ४।१३।७)

सूक्त का भावार्थ ।

जो अग्निदेव अन्न के बलके और बलवान के स्वामी हैं जो सब के आदेश करने वाले और कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं, जो प्रार्थना करने के योग्य हैं जो सब कुछ जानते हैं और सब जगह जाते हैं जो अत्यन्त बुद्धिमान हैं उन के पास जाकर पूछो और ज्ञान को प्राप्त करो ॥१॥ उस से बहुत मनुष्य पूछते हैं परन्तु सब उत्तर को नहीं समझते जो हृदय निश्चय वाला है वह ऐसे समझ लेता है मानो अपने ही मन से वह ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह अपने ग्रहण को और उसके उत्तर को सदा स्मरण रखता है और घमंड से रहित होकर उस ज्ञान पर चलता है ॥ २ ॥ हम जो नाना देवताओं को आहुतियां देते हैं और स्तुतिके वचन सुनाते हैं वे सब आहुतियां और स्तुतियां उसी एक को प्राप्त होती हैं (जो अग्नि का अधिष्ठाता है) वह सब वचनों को सुनता है, वह जय को प्राप्त कराने वाला, सब को आश्वास देने वाला, अटूट रक्षक और सब के पूर्ण कराने वाला सब ओर से बल को ग्रहण करता हुआ बालक की न्याई हमारे घरमें बढता है ॥३॥ जो अग्नि का आधान करके उस के साथ सम्बन्ध करता है वह अग्नि सदा उस के हृदय में रहते हैं, वह अरणी से उत्पन्न होते ही मित्रों के साथ बिबरते हैं, जब प्रेम से मरी हुई आहुतियां उसको पहुंचनी हैं, तब वह थके हुए मनुष्य का थकान दूर करके उसको आनन्द को ओर ले जाते हैं

क्र०मं०१ सू०१४५मं०१ (३९८४)

॥ ४ ॥ जो आकाश के ऊँचे तलपर सूर्य रूपसे स्थापित हैं वह अग्नि भी वही है जो वनों को जलाते हुए देखते हैं, अथवा जो विजली रूप से बादल में वर्तमान हैं, उसी विद्वान् देवी नियम को जानने वाले सत्यस्वरूप अग्नि न भरण धर्मियों के ताई वेद रूप धर्म का उपदेश किया है ॥५॥

अग्निदेवता निवृज्जगतीछन्दः ११।२।१२।३२

तं पृच्छता स जगामा स वेद स-
चिकित्वा ईयते सान्वीयते । तस्मिन्
न्त सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्ठयः स
वाजस्य श्वसः शुष्मिणस्पतिः । १ ।

तम्	तम्	उस को
पृच्छत	पृच्छत	पूछो
सः	सः	वह
जगाम	गच्छति	जाता है

२

(३९५) क्र०मं०१ स०१४५ मं०१

सः वेद	सः जानाति	वह जानता है
सः चिकित्तवान्	सः विज्ञः	वह खूब जानने
इयते	प्रार्थ्यते	वाला प्रार्थना किया जाता है
सः न	सः खलु	वह सचमुच
इयते	प्रार्थ्यते	प्रार्थना किया जाता है
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में
सन्ति	सन्ति	हैं
प्रश्लिषः	प्रशासनानि	आदेश
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में

ऋ०मं०१ सू०१४५मं०१ (३९८६)

दृष्टयः	कामाः	कामनाएं
सः	सः	वह
वाजस्य	अन्नस्य	अन्न का
शवसः	बलस्य	बल का
शुष्टिमणः	बलवतः	बलवान का
पतिः	स्वामी	मालिक

संस्कृतार्थः।

(हे आर्याः) तंपृच्छत सः (सर्वत्र) गच्छति स जानाति, सविज्ञः स प्रार्थ्यते सखलु प्रार्थ्यते, तस्मिन् प्रशासनानि तास्मन् कामाः (च) सन्ति सोऽन्नस्य बलस्य बलवतः (च) पतिः (अस्ति) ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य लोगो) उसको पूछो वह (सब जगह) जाते हैं वह जानते हैं वह प्रार्थना किये जाते हैं सचमुच वह प्रार्थना किये जाते हैं उसमें आदेश

(३९८७) क्र०मं०१ सू०१४५मं०२

हैं उस में कामनाएं हैं, वह अन्न के बलके (और)
बलवान के मालिक हैं ॥ १ ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

तमितृ॑च्छन्ति॒ नसि॒मोवि॑पृ॒च्छति॒
स्वेने॑व॒धीरो॒मनसा॑यदय॒भीत् । नमृ॑-
ष्यते॒प्रथ॒मंन॑परं॒वचो॑ ऽस्यक्र॒त्वास-
चते॒अप्र॑हृ॒पितः॑ ॥ २ ॥

तम्

इत्

पृ॒च्छन्ति॒

न

सि॒मः

वि

तम्

एव

पृ॒च्छन्ति

न

सर्व॑जनः

वि+

उस को

ही

पूछते हैं

नहीं

सब मनुष्य

-

क्र०मं०१ सू०१४५मं०२ (३९८८)

पृच्छति	वि+पृच्छति अवबोधते	समझते हैं
स्वेनऽद्व	स्वकीयेनेव	मानो अपने से
धीरः	धीरः	दृढ़ निश्चय वाला
मनसा	मनसा	मन से
यत्	यत्	जो
अग्रभीत्	गृह्णाति	ग्रहण करता है
न	न	नहीं
मृष्यते	विस्मरति	भूलता है
प्रथमम्	प्रथमम्	पहले को
न	न	नहीं
अपरम्	उत्तरकालीनम्	पिछले को

(३९८९) क्र०मं०१ सू० ०२

वचः	वचनम्	वचन को
अस्य	अस्य	उस के
क्रत्वा	ज्ञानेन	ज्ञान से
सञ्चते	संगच्छते	मिल जाता है
प्रप्रवृत्तः	दर्परहितः	गर्व से रहित

संस्कृतार्थः ।

तमेव (अग्निम्) पृच्छन्ति (परन्तु) सर्वजनः
 (उत्तरम्) नाव बोधते, धीरः यस्त्वेनेव मनसा गृह्णात तत्
 प्रथमम् अपरञ्च वचनम् न विस्मरति, (स) दपरहितः
 (सन्) अस्य (अग्नेः) ज्ञानेन संगच्छते । २ ।

भाषार्थः ।

उसी (अग्नि) को पूछते हैं (परन्तु) सब मनुष्य
 उत्तर को नहीं समझते जो धीर (पुरुष) मानों अपने
 मन से ही ग्रहण करता है उस प्रथम और पिछले
 वचन को नहीं भूलता, वह गर्व से रहित हुः २ उस
 (अग्नि) के ज्ञान से मिल जाता है ॥ २ ॥

क्र०मं०१ सू०१४५मं०३ (३९९०)

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

तमिद्गच्छन्ति जुह्व॑स्तमर्वता वि-
प्रवान्येकः शृणवद्वा॑सिमे । पुरु॒प्रैष-
स्ततु॑रि॒र्यज्ञ॑साध॒नो ऽच्छि॑द्रोतिः शि-
शुराट॑त्त संरभः ॥ ३ ॥

तम्	तम्	उस को
इत्	एव	ही
गच्छन्ति	प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होती हैं
जुह्वः	आहुतयः	आहुतियां
तम्	तम्	उस को
अर्प॑तीः	प्राप्तिमत्यः (स्तुतयः)	स्तुतियां

(३९९१) मा०सं०१ अ०१४५ सं०३

विश्वानि	सर्वाणि	सब को
एकः	एकः	एक
शृणवत्	शृणोति	सुनता है
वचांसि	वचनानि	बचनों को
मे	मम	मेरे
पुरुषैः	सर्वेषामाज्ञा पयिता	सब को आज्ञा देने वाला
ततुरिः	जयशीलः	जयशील
यज्ञसाधनः	यज्ञस्यसाधकः	यज्ञ का सिद्ध करने वाला
{ पच्छिद्र- ऽजतिः	अविच्छिन्न रक्षणः	अटूट रक्षक
शिशुः	शिशुः	बालक
पा	मा+	-

क्र०मं०१ सू०१४५मं०३ (३९२२)

अदत्त	सम्+आ+अदत्त समादत्ते	सब ओर से ग्रहण करता है
सम्	सम्+	-
रभः	बलम्	बल को

संस्कृतार्थः ।

तमेव आहुतयः तम् (एव) स्तुतयो प्राप्तुवन्ति
(स) एकः सर्वाणि मन वचनानि शृणोति सर्वेषामा
ज्ञापयिता जयशीलोयज्ञस्य साधकोऽविच्छिन्नरक्षणः
शिशुः आसमन्ताद्बलं गृह्णाति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

उसी को आहुतियां उसीको स्तुतियां प्राप्त
होती हैं, वह अकेला मेरे सब बच्चों को सुनता
है, सब को आज्ञा देने वाला जयशील, यज्ञका सिद्ध
करने वाला अटूट रक्षक बालक सब ओर से बल
को ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

अग्निदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

उपस्थायं चरतियत्समारतः

सद्योजातस्तत्सारयुज्येभिः। यभि-

(३९९३) क्र०मं०१ सू०१४५मं०१

प्र॒वा॒न्तं मृ॒श॒ते॒ना॒न्दे॒मु॒दे॒ यद्दी॒ग॒च्छ-
न्त्यु॒श॒ती॒र॒पि॒ष्ठि॒तम् ॥ ४ ॥

उ॒प॒ऽ॒स्थाय॑म्	समी॒पे॒स्थि॒त्वा	समी॒प॒ रह॑कर
च॒र॒ति	च॒र॒ति	च॒ल॒ता है
यत्	य॒दा	ज॒ब
स॒म्॒ऽ॒आ॒र॒त	स॒मा॒ग॒च्छ॒ति	स॒मा॒ग॒म॒ हो॒ता है
स॒द्यः	त॒त्काल॑म्	तु॒रन्त
जा॒तः	उ॒त्प॒न्नः	उ॒त्प॒न्न हुआ
त॒त्सा॒र	वि॒च॒र॒ति (लि॒डथे॒लट्)	वि॒च॒र॒ता है
यु॒ज्ये॑भिः	स॒खि॒भिः॒सह	सा॒थि॒यों के साथ

क्र०सं०१ मू०१४५ सं०४ (३९९४)

अभि	अभि +	-
श्वान्तम्	भ्रान्तम्	थके हुए को
मृशते	अभि + मृशते	स्पर्श करके प्रेरण करता है
नान्द्ये	आनन्दयुक्ते	आनन्द युक्त में
मुदे	हर्षे	हर्ष में
यत्	यदा	जब
ईम्	एनम्	इस को
गच्छन्ति	गच्छन्ति	प्राप्त होती हैं
उशतीः	कामयमानाः	प्रेम से भरी हुई
{ अपिऽस्थि- तम्	समीपेवर्तमानम्	पास ठेरे हुए को

(३९९५) ऋ०मं०१ सू०१४५मं०४

संस्कृतार्थः ।

यदा(अग्निः) समागच्छति (तदा) समीपेस्थित्वा
 चरति (सः) तत्कालम् उत्पन्नः (सन्) सखिभिःसह
 विचरति यदा समीपे वर्तमानम् एनं कामयमानाः
 (आहुतयः) गच्छन्ति (तदासः) श्रान्तम् (मनुष्यम्)
 आनन्द युक्ते हर्षे प्रेरयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

जब (अग्निदेव का) समागम होता है (तब वह)
 पास रहकर विचरते हैं (वह) तत्काल उत्पन्न होकर
 मित्रों के साथ विचरते हैं जब समीप ठेरे हुए इसको
 प्रेम से भरी हुई (आहुतियां) प्राप्त होती हैं (तब वह)
 थके हुए मनुष्यको आनन्द युक्त हर्षमें प्रेरण करते हैं । ४।

अग्निदेवता निचृत्त्रिष्टुपूछन्दः १०।११।११।११

सङ्गमृगोपप्योवनगुरुपत्वच्य

पमस्यानिधायि। व्यब्रवीद्वयुनामर्त्ये

भ्यो ऽग्निर्विद्वांश्चतुर्विद्विस्तयः । ५।

क्र०सं०१ पृ०१४५ सं०५ (३९९६)

सः	सः	वह
ईम्	एव	ही
मृगः	मृगः	मृग
आयः	जलेभवः	जलमें रहने वाला
वनर्गुः	वनगामी	वनमें फिरने वाला
उप	उप+	-
तवचि	तले	तलपर
उपऽमस्याम्	उत्तमे	सब से ऊंचे पर
नि	नि+	-
धायि	उप+नि+धायि उपस्थापितः	स्थापन किया गया
वि	स्व +	-

(३९९७) क्र०मं०१ सू०१४५मं०५

अब्रवीत्	वि+अब्रवीत्	उपदेश किया है
वयुना	उपदिष्टवान्	
मर्त्येभ्यः	मार्गाणि	धर्म को
अग्निः	मरणधर्मेभ्यः	मरण धर्मियों के लिये
विद्वान्	अग्निः	अग्नि
ऋतश्चित्	विद्वान्	विद्वान्
हि	ऋतस्यज्ञाता	दैवीनियम का जानने वाला
सत्यः	यतः	क्योंकि
	सत्यस्वरूपः	सत्यस्वरूप

संस्कृतार्थः ।

सएव (दावाग्निरूपेण) वनगामा (विद्युद्रूपेण)
जलेभवः (च) मृगः उत्तमे (दिवः) तले उपस्थापितः
(सएव) मरण धर्मेभ्यः (धर्म) मार्गाणि उपदिष्टवान्
यतः (स) ऋतस्य ज्ञाता सत्यस्वरूपो विद्वान्
(वास्ति) ॥ ५ ॥

अ०मं०१ अ०१४५ मं०५ (३२९८)

भाषार्थः।

वह ही (दावाग्निरूप) से बन में फिरने वाला
(और विद्युत रूप से) जल में होने वाला मृग (शौके)
सब से ऊंचे तल में स्थापन किया गया है (उसीने)
मरणधर्मियों के लिये धर्म का उपदेश किया है
क्योंकि (वह) दैवी नियम के जानने वाला सत्य-
स्वरूप [और] विद्वान है ॥ ५ ॥

(३९९९) अ० मं० १ सू० १४६

अ० मं० १ सू० १४६ ।

अग्निर्देवता, दीर्घतमा ऋषिः ।

विनियोगः—

१—५। एतत् सूक्तं प्रातरनुवाकस्य आश्विनशस्त्रस्य च षेष्ठमे
छन्दसि विनियुक्तम् (आ०४.१३.७)

सूक्त का भावार्थ ।

हे मनुष्य तू इस अग्नि की स्तुति कर जिसके तीन मस्तक और सात किरणें हैं जो इस चलने वाले द्यौ और अचल पृथिवी की गोद में बैठा है जो त्रुटि रहित है और जो ध्रुलोक के सब तारा गण में भरा हुआ है ॥ १ ॥ इस महाबीर ने समस्त द्यौ और पृथिवी को चारों ओर से घेर लिया है, कभी बूढ़ा न होने वाला यह जगत का रक्षक बन कर उठा है, यह पृथिवी के शिखर पर पैर रखता है और इस की ज्वालाएं मेघों के स्तनों को चाटती हैं ॥ २ ॥ द्यौ और पृथिवी रूप दो सुन्दर गौएं सूर्य रूप सांघे बछड़े को घुंघाती हुई आकाश के अटल मार्गों को नापती हुई और सारी कामनाओं को महान अग्नि पर छोड़ती हुई चलती हैं ॥ ३ ॥ धीमान ऋषि अनेक हृद्यों से क्षय रहित की रक्षा करते हुए मनुष्यों को रस्ता दिखाते हैं, वे सत्य को प्राप्त करने की इच्छा से हृदय रूप समुद्र को देखते हैं और उनके लिये उस में ज्ञानरूप सूर्य का उदय होता है ॥ ४ ॥ जब सबसे देखने योग्य धनवान अग्नि ने जगह जगह प्रजाओं को उत्पन्न किया, तब सब दिशाओं में जीतने वाले दर्शनीय वह सब छोटे और बड़ों के पूजनीय हुए क्योंकि वही सब के जीवन के हेतु हैं ॥ ५ ॥

क्र०सं०१ स०१४६सं०१ (४०००)

अग्निर्देवता निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥१०॥११॥११॥

त्रिमूर्द्धानं सप्तरश्मिमंगणीषे ऽनू-
नमग्निं पित्रोरुपस्थे निषत्तमस्यचर
तोध्रुवस्य विश्वादिबोरोचनापप्रि-
वांसम् ॥१॥

त्रिमूर्द्धानम्	त्रिमूर्द्धानम्	तीन मस्तक वाले को
{ सप्तर-	सप्तरश्मिम्	सान किरणों वाले
{ श्मिम्		को
गणीषे	स्तुहि (लोड्छेल्ड्)	स्तुति कर
अनूनम्	पूर्णम्	पूर्ण को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को

(४००१) क्र०मं०१ सू०१४६ मं०१

पि॒त्रोः	पि॒त्रोः (द्या॒वापृ॒थि॒व्याः)	द्यौ और पृथिवीरूप माना और पिता को
उ॒प॒ऽस्थे	उत्सङ्गे	गोद में
नि॒ऽस॒त्त॒म्	उपविष्टम्	बैठे हुए को
अ॒स्य	अस्य	इस के
च॒रतः	चरतः	चलने वाले के
ध्रु॒व॒स्य	निश्चलस्य	अचल के
वि॒श्र॒वा	विश्वानि	सब
दि॒वः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
रो॒च॒ना	प्रकाशमयानि (नक्षत्राणि)	प्रकाश मय (नक्षत्रों) को
{ आ॒प॒प्रि॒ऽ वा॒ंस॒म्	सर्वतः पूरयन्तम्	सब ओर से पूर्ण करते हुए को

(४००३) ऋ०सं०१ सू०१४६ सं०२

हृ॒क्षा	से॒क्ता,वीरइत्यर्थः	शूरवीर
म॒हान्	महान्	महान्
अ॒भि	अ॒भितः	सबओर से
व॒व॒क्षे	व्याप्तवान् (वहतेलेंदिशपःइलुः)	घेर लिया है
ए॒ने०	इमे (द्यावा पृथिव्यौ)	इन (द्यौ और पृथिवी) को
अ॒जरः	ज॒रारहितः	बुढापे से रहित
त॒स्थौ	स्थितवान् (लडथें लिट्)	डटा है
हू॒तः॥उ॒क्तिः	र॒क्ष॒णोपेतः	रक्षा से युक्त
वृ॒ष्वः	महान्	महान्
उ॒र्व्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
प॒दः	पादान्	पैरों को

४६ सं०२ (४००४)

न	नि+	-
दधाति	नि+दधाति	रखता है
नि	शिखरे	शिखर में
लिहन्ति	लिहन्ति (रस्यलत्वम्)	चाटते हैं
ऊधः	स्तनरूपम्	स्तनरूप को
अरुणासः	ज्वालाः (भा० को०)	ज्वालाएँ
प्रस्य	अस्य	इस की

संस्कृतार्थः ।

महावीरः (अग्निः) इमे द्यावापृथिव्यौ अभितो
 व्याप्तवान् (अस्ति) जरारहितः (सः) महान् रक्षणो
 पेतः (सन्) स्थितवान् (अस्ति) (सः) पृथिव्याः
 शिखरे पादान् निदधाति, अस्य ज्वालाः स्तनरूपम्
 (मेघम्) लिहन्ति ॥ २ ॥

(४००५) क्र०मं०१५०१४१मं०३

भाषार्थः ।

महावीर (अग्निने) द्यौं (और) पृथिवी को चारों ओर से घेर लिया है वह बुढ़ापे से रहित महान रक्षा वाला हुआ २ डटा है (वह) पृथिवी के शिखर में पैरों को रखता है (और) उसकी ज्वालाएं स्तनरूप मेघको चाटती हैं। २ ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

स॒मा॒नं॒ व॒त्स॒म॒भि॒सं॒चर॑न्ती॒ वि॒ष्व
ग॒धे॒नू॒वि॒चर॑तः॒समे॑के । अ॒न॒प॒वृ॒ज्यां
अ॒ध्व॒नो॒मि॒माने॒ वि॒प्र॒वा॒न्के॒ता॒अ॒धि
म॒हो॒द॒धाने॑ । ३ ।

स॒मा॒नम्

साधारणम्

सांझे को

व॒त्स॒म्

वत्सम्

बछड़े को

अ॒भि

अभि +

-

भा०सं०१ सू०१४१मं०३ (४००६)

सम्चरन्ती०	अभि+सं चरन्त्यो (विभक्त्युक्)	मिलती हुई
विष्वक्	परितः	चारों ओर
धेनू०	गावो	दो गौएँ
वि	वि+	—
चरतः	वि+चरतः	घूमती हैं
सुमेके०	शोभनरूपे	सुन्दर रूप वाली
{ अनपऽव- ज्यान्	अत्याज्यान्	न त्याग करने योग्यो को
षष्ठवनः	मार्गान्	मार्गों को
मिमाने०	मीयमाने	नापती हुई
विश्वान्	सर्वान्	सब को
केतान्	कामान् (काम को)	कामनाओं को

(४००७) न० मं० १ ख० १४६ मं० ३

अधि	अधि	—
महः	महः+अधि	महान पर
दधाने०	दधाने	धारण करती हुई

संस्कृतार्थः ।

साधारणं वत्सम् संचरन्त्यौ अत्याज्यान् मार्गान्
मीयमाने सर्वान् कामान् महति (अग्नौ) दधाने (च)
शोभनरूपे (द्यावापृथिवी रूपे) गावो विचरतः । ३॥

भाषार्थः ।

सांझे के बछड़े के साथ मिलती हुई, न त्याग करने
योग्य मार्गों को नापती हुई (और) सम्पूर्ण कामनाओं
को महान (अग्नि) पर धारण करती हुई सुन्दर रूप
वाली द्यौ और पृथिवी रूप दोनों गौएँ विचरती हैं । ३।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना

हृदारक्षमाणाञ्जुष्ट्यम् । सिषास

क्र० सं० १९०१४६ सं० ४ (४००८)

न्तः पठ्यपश्यन्तसिन्धु माविरभ्यो

अभवत्सूर्यो नृन् । ४ ।

धीरासः	धीमन्तः	बुद्धिमान्
पदम्	मार्गम्	मार्ग को
कवयः	ऋषयः	ऋषि
नयन्ति	नयन्ति,	लेजाते हैं
नाना	अनेकेन	अनेक से
हृदा	हृदयेन	हृदय के द्वारा
रक्षमाणाः	रक्षन्तः (व्यत्ययेनात्मनेपदम्)	रक्षा करते हुए
अजर्णम्	अक्षीणम्	न छीजने वाले को
सिसासन्तः	प्राप्तुमिच्छन्तः	प्राप्त करने की इच्छा करते हुए

४००९

क्र०सं० १ स० १४४ सं० ४

परि ^१	परि+	-
अपश्यन्त	परि+अपश्यन्त,	चारों ओर देखा
सिन्धुम् ^१	समुद्रम्	समुद्र को
आविः	आविः+	-
एभ्यः	एभ्यः	इन के लिये
अभवत्	आविः+अभवत्	प्रकट हुआ
सूर्यः ^१	सूर्यः	सूर्य
नून	नृभ्यः (विभक्तिव्यत्ययः)	मनुष्यों के लिये

संस्कृतार्थः ।

बुद्धिमन्तः ऋषयः अनेकेन हृदयेन अक्षीणं
 रक्षन्तः (सन्तः मनुष्यान्) मार्गं दर्शयन्ति (ते) प्राप्तु
 मिच्छन्तः समुद्रं पर्यपश्यन्त, एभ्यो मनुष्येभ्यः
 सूर्यं आविरभवत् । ४ ।

क्र०म०१६०१४६ सं०५ (४०१०)

भाषार्थः ।

बुद्धिमान ऋषि अनेक हृदय से क्षय रहित की
रक्षा करते हुए मनुष्यों को मार्ग दिखाते हैं उन्होंने
प्राप्त करने की इच्छा करते हुए चारों ओर समुद्र को
देखा तब इन मनुष्यों के लिये सूर्य प्रकट हुआ । ४ ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

दि॒दृ॒क्षे॒ण॒यः॑ पा॒र॒का॒ष्ठा॒सु॒जे॒न्य॑
ई॒ळे॒न्यो॑म॒हो॒अ॒र्भा॒य॒जी॒व॒से॑ । पु॒रु॒त्रा
यद॒भ॒व॒त्सू॒र॒है॒भ्यो॑ गर्भ॒भ्यो॑म॒घ॒वा॒-
वि॒प्र॒व॒द॒र्श॒तः॑ । ५ ।

दि॒दृ॒क्षे॒ण॒यः॑	द्रष्टव्यः	दर्शनीय
परि॑	परितः	चारों ओर से
का॒ष्ठा॒सु॑	दिक्षु	दिशाओं में
जे॒न्यः॑	जयशीलः	जीतने वाला

(४०११) क्र०सं०१ सू०१४६ सं ८५

ई॒ल॒न्यः	स्तु॒त्यः	स्तु॒ति के योग्य
म॒हः	म॒हतः	ब॒ड़े के
प॒र्भा॒य	अ॒ल्प॒स्य (षष्ठ्यर्थेचतुर्थी)	छो॒टे के
जी॒व॒से	जी॒व॒नाय	जी॒वन के लिये
पु॒रु॒ऽचा	व॒ह॒षु॒स्थानेषु	ब॒हु॒त स्था॒नों में
य॒त्	य॒दा	ज॒ब
प॒भ॒व॒त्	अ॒भ॒व॒त्	ह॒आ है
सूः	उ॒त्पा॒दयि॒ता	उ॒त्प॒न्न कर॒ने वा॒ला
प॒ह	ख॒लु	स॒च॒मू॒ष
ए॒भ्यः	ए॒षाम् (षष्ठ्यर्थेचतुर्थी)	इ॒नके
ग॒र्भे॒भ्यः	प्र॒जा॒नाम्	प्र॒जाओं के

क०मं०१ सू०१४६मं०५ (४०१२)

मघऽवा	धनवान्	धनवान्
विश्वऽदर्शितः	सर्वैर्द्रष्टव्यः	सबसे देखने योग्य।

संस्कृतार्थः ।

परितो दिक्षु जयशीलो द्रष्टव्यः (अग्निः) महतो
ऽल्पस्य च जीवनाय स्तुत्यः (अभवत्) यदा बहुषु देशेषु
सर्वैर्दर्शनीयो धनवान् (सः) एषां खलु प्रजानामु-
त्पादयिता ऽभवत् । ५ ।

भाषार्थः ।

चारों ओर दिशाओं में जीतने वाले दर्शनीय
अग्नि बड़े के (और) छोटे के जीवन के लिये स्तुति के
योग्य हुए, बहुत स्थानों में सबसे देखने योग्य वह धन-
वान् सब मुच प्रजाओं के उत्पन्न करने वाले हुए ॥५॥

(४०१३ , अ०मं०१ सू०१४७)

अ० मं०१ सू० १४७ ।

अग्निदेवता दीर्घतमाशुषिः ।

विनियोगः—

१-५ एतत्सूक्तं प्रातरनुवाकस्य आश्विनशस्त्रस्य च त्रैलोक्येन्दुसि
विनियुक्तम् (आ० ४ । १३ । ७ ॥)

सूक्त का भावार्थ ।

हे अग्नि ! किस प्रकार आप की प्रकाशमान और सब को व्याप्त करने वाली किरणें जीवन को और बल को देती हैं, जो हमारे पुत्र पौत्रादि में इन दोनों को स्थापन करती हुई दैवी नियम को सफल करने में ही आनन्द को मानती हैं ॥ १ ॥ हे अत्यन्त जवान ! स्वतन्त्र अग्नि ! मेरी इस माननीय और उत्तम रची हुई स्तुति को सुनो, कोई मनुष्य आप का अनादर करता है, कोई स्तुति करता है, मैं तो स्तुति शील हूँ, सदा आप की स्तुति ही करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्नि जिन रक्षा करने वाले आप के भक्तों ने ममता के पुत्र (मुझ) अन्धे को कष्ट से बचाया, उन पुण्यवानों को सर्वश्व आप ने रक्षा की, और धोखा देने की इच्छा करते हुए शत्रु उन को धोखा नहीं दे सके ॥ ३ ॥ हे अग्नि जो ईर्ष्या से भरा हुआ दान न करने वाला पापी छल से हम को पीड़ित करता है उस का दुष्ट बिचार उसी पर गिरे, और उस के दुर्वाक्य उसी के शरीर को नष्ट करें ॥ ४ ॥ हे बल वाले ! जो मनुष्य जान बूझ कर दूसरे मनुष्य को छल द्वारा पीड़ित करता है, हे स्तुति किये गए अग्नि देव ! स्तुति करने वाले को उस से बचाओ आप हम को दुःख की ओर मत प्रेरण करो ॥ ५ ॥

क्र०मं० १स० १४७मं० १ (४०१४)

अग्निदेवता निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ११।१०।११।११

कथाते अग्ने शचयन्त आयोद-

दाशुर्वाजेभिराशुषाणाः । उभेयत्तो

केतन दधाना ऋतस्य सामन्रण

यन्त देवाः ॥ १ ॥

कथा	कथम्	किस प्रकार
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
शुचयन्तः	दीप्यमानाः	प्रकाश मान
आयोः	जीवनम् (द्वितीयार्थे बण्डो)	जीवन को
ददाशुः	ददति (लङ्गर्थे लट्)	देती हैं

(४०१५) क्र०मं० १ सू० १४७मं० १

वाज॑भिः	बलैः सह	बलों के साथ
आशु॒षाणाः	सर्व॑व्याप्नुवन्तः	सब को व्याप्त करने वाली
उ॒भे०	उभे	दोनों
यत्	यतः	जिस से
तो॒के०	पुत्रे	पुत्र में
तन॑ये	पौत्रे	पोते में
दधा॑नाः	धारयन्तः	धारण करते हुए
ऋ॒तस्य॑	नियमस्य	नियम का
सामन्	सफलतायाम्	सफलता में
र॒णयन्त॑	मोदन्ते	मोद करते हैं
दे॒वाः	द्योतनशीलाः	प्रकाश शील

क्र०मं०१ सू०१४७मं०२ (४०११)

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने! दीप्यमानाः सर्वव्याप्तुवन्तश्च तत्र कि-
रणाः कथंबलः सहजीवनं ददति, ये द्योतनशीलाः
पुत्रे पौत्रे (च) उर्भधारयन्तः (सन्तः) नियमस्य
सफलतया मोदन्ते ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! प्रकाशमान (और) सब को व्याप्त
करने वाली आपकी किरणें कैसे बलों के साथ
जीवन को देती हैं जो पुत्र (तथा) पौत्र में दोनों को
धारण करती हुई नियम की सफलता में मोद
करती हैं ॥ १ ॥

आग्नेदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११

बोधामे॑ अस्य॒वच॑सो॒यवि॑ष्ठ म॒हि
ष्ठस्य॒प्रभृ॑तस्य॒स्वधा॑वः । पी॒यति॑ त्वो
अनु॑त्वो॒गुणा॑ति व॒न्दारु॑स्ते॒तन्वं॑वन्दे
अग्ने ॥ २ ॥

(४०१७) अ०मं०१ स०१४७ मं०२

बोध	बुध्यस्व	जानो
मे	मम	मेरे
अस्य	एतत् (कर्मणिषण्डी)	इस को
वचसः	वचः	बचन को
यविष्ठ	हे युवतम्	हे अत्यन्त जवान
मंहिष्ठस्य	आदरणीयम्	आदर करने योग्य को
प्रभृतस्य	प्रकर्षेणसम्पादि तम्	खूब बनाये हुए को
स्वधाऽवः	हे स्वतन्त्र	हे स्वतन्त्र
पीयति	हिनस्ति	पीडित करता है
एवः	एकः (यास्कः)	एक
अनु	अनु+	-

क्र०मं०१८०१४७मं०२ (४०१८)

तवः	एकः	एक
गुणाति	अनु+गुणाति, अनुकुलमुच्चार यातिस्तौतीत्यर्थः	स्तुति करता है
वन्दारुः	वन्दनशीलः	स्तुति करने वाला
ते	तव	तेरे
तन्वम्	तन्वम्	शरीर को
वन्दे	वन्दे	स्तुति करता हूँ
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि

संस्कृतायः ।

हे युवतम ! स्वतन्त्र ! अग्ने ! ममैतत् आदरणीयं
प्रकर्षेण सम्पादितम् (चस्तितिरूपां) वचोबुध्यस्व,
एकः जनः (त्वाम्) हिनस्ति एकः (च)स्तौति वन्दन
शीलः (अहं तु) तव तन्वं वन्दे (एव) ॥ २ ॥

(४०१९) क्र० सं० १ ज० १४७ म० ३

भाषार्थः ।

हे अत्यन्तजवान ! स्वतन्त्र ! अग्नि ! मेरे इस
आदर करने योग्य (और) खूब बनाए हुए (स्तुतिरूप)
वचन को जानो, एक मनुष्य आप को पीड़ित करता
है (और) एक स्तुति करता है, स्तुति करने वाला मैं
(तो) आप के शरीर की स्तुति (ही) करता हूँ ॥ २ ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

येपायवोमामतेयंतेअग्नेपप्रयन्तो
अन्धंदुरितादरक्षन् । ररक्षतान् सुक-
तोविश्ववेदा दिप्सन्तद्भद्रिपवोना-
हृदेभुः ॥ ३ ॥

ये

पायवः

ये

रक्षकाः

जो

रक्षक

अ० सं० १ सू० १४७ मं० ३ (४०२०)

मामतेयम्	ममतायाः पुत्रम्	ममता के पुत्र को
ते	तव	तेरे
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
पश्यन्तः	पश्यन्तः	देखते हुआं ने
अन्धम्	अन्धम्	अन्धे को
दुःसहतात्	कष्टात्	कष्ट से
अरक्षन्	रक्षितवन्तः	रक्षा की है
ररक्ष	रक्षितवान्	रक्षा की है
तान्	तान्	उन को
सुसुक्तः	सुकर्मणः	शुभ कामयों को
विप्रवर्द्धः	विश्वप्रज्ञः	सर्वज्ञानी ने

(४०२१) न०

दिप्सन्तः	दम्भितुमिच्छन्तः	धोखा देने की इच्छा वाले
इत्	(पूरणः)	-
रिपवः	शत्रवः	शत्रुओं ने
न	न	नहीं
अह	खलु	सचमुच
देभुः	दबधवन्तः	धोखा दिया

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! ये रक्षकास्तव (भक्ताः) अन्धं समतायाः
पुत्रं पश्यन्तः (सन्तः) कष्टात् रक्षितवन्तः तान् सुक-
र्मणो विश्वप्रज्ञः (भवान्) रक्षितवान् दम्भितुमिच्छन्तः
शत्रवः (तान्) न खलु दबधवन्तः ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! जिन रक्षा करने वाले आपके (भक्तों)
ने अन्धे समता के पुत्र को देखते हुए कष्टसे बचाया

क०मं०१सू०१४७ मं०४ (४०२२) .

उन शुभ कर्मियों की सर्वज्ञ (आप) ने रक्षा की
(और) धोखा देने की इच्छा करते हुए शत्रु सचमुच
(उन को) नहीं धोखा दे सके ॥ ३ ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

यो नो॑ अग्ने॒ अर॑रिवाँ अघा॒यु ररा॑तो
वा॒मर्च॑यति॒द्वये॑न । मन्त्रो॑ गुरुः पुन॑
रस्तु॒सो अ॑स्मा॒ अनु॑मृक्षी॒ष्टत॑न्वंदु-
रु॒क्तैः ॥ ४ ॥

यः	यः	जो
नः	अस्मान्	हम को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अररि॑वान्	असूयकः (भा०को०)	ईर्षा करने वाला

(४०२३) स०सं०१ सू०१४७ सं०४

अघट्युः	पापात्मा	पापी
अरातिऽवा	अदाता (वनिपूप्रत्ययः)	दान न करने वाला
मर्चयति	हिनस्ति (आ०को०)	पीड़ित करता है
इयेन	द्वैधीभात्रेन	छल से
मन्त्रः	विचारः	विचार
गुरुः	गुरुः	गुरु
पुनः	पुनः	फिर
अस्त	अस्तु	हो
सः	सः	वह
अस्मै	तस्मै (तलोपः)	उस के लिये
अनु	अनु+	-

क्र०मं०१सू०१४७ मं०४ (४०२४)

मृ॒क्षी॒ष्ट	अनु+मृक्षीष्ट,	क्रम से नष्ट करे
त॒न्व॒म्	अनुक्रमेण लुम्पतु	शरीर को
दुः॒उ॒क्तैः	दुर्वाक्यैः	खोट बचनों से

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! योऽसूयको ऽदाता (च) पापात्मा द्वैधी
भावेनास्मान् हिनस्ति (तस्य) सः विचारः पुनः
तस्मै(एव) गुरुः अस्तु, (सः) दुर्वाक्यैः (निज-) शरीरम्
अनुक्रमेण लुम्पतु ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! जो ईर्ष्या से भरा हुआ (और) दान न
करने वाला पापी छल से हम को पीड़ित करता है
उस का वह विचार फिर उसी के लिये गुरु हो (और
वह) खोटे बचनों से (अपने) शरीर को क्रम से
नष्ट करे ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११॥

उ॒त॒वा॒यः स॒हस्य॒प्रवि॒ज्ञान् म॒र्तो

(४०२/१) क्र०मं०१ स०१४२ म०५

मर्तमर्चयतिद्वयेन । अतःपाहिस्त-
वमानस्तुवन्त मग्नेमाकिर्नादुरिता
यधायीः ॥ ५ ॥

उत	उत	-
वा	उत+वा, अपिच	और
यः	यः	जो
सहस्य	हे बलवन्	हे बलवाले
प्रविद्वान्	प्रकर्षेणजानन्	खूब जानता हुआ
मर्तः	मनुष्यः	मनुष्य
मर्तम्	मनुष्यम्	मनुष्य को

क्र० सं० १ स० १४३ सं० १ (४०२६)

मर्चयति	हिनस्ति	पीडित करता है
द्वयेन	द्वैधीभावेन	छल से
अतः	ततः (तलोपः)	उस से
पाहि	रक्ष	रक्षा करो
स्तवमान	हे स्तूयमान	हे स्तुति किये जाते हुए
स्तुवन्तम्	स्तुवन्तम्	स्तुति करतेहुए को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
माकिः	मा	मत
नः	अस्मान्	हम को
दुःऽद्विताय	दुःखाय	दुःख के लिये
धायीः	प्रेरय (भा०को०)	प्रेरण करो

(४०२७) क्र०मं०१सू०१४३मं०५

संस्कृतार्थः ।

अपिच हे बलवन् यः मनुष्यः प्रकर्षेण जानन्
 (सन्) (अन्यम्) मनुष्यं छलेन हिनस्ति तस्मात्
 हेस्तयमान ! अग्ने स्तुवन्तम् पाहि, अस्मान् दुःखाय
 माप्रेरय ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

और हे बलवाले ! जो मनुष्य खूब जानता हुआ
 (दूसरे) मनुष्य को छल द्वारा पीड़ित करता है उस
 से हे स्तुति किये गये अग्निदेव स्तोता की रक्षा करो
 हमें दुःख के लिये मत प्रेरण करो ॥ ५ ॥

अ० सं० १ सू० १४८

(४०२८)

अ० सं० १ सू० १४८ ।

अग्निदेवता उचथ्य पुत्रोदीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः ।

१-५ इदं सूक्तं प्रातरनुवाकस्याग्नेयेऋतौ आश्विनशस्त्रेचत्रैष्टुभे
छन्दसि विनियुक्तम् (आ० ४ ॥ १३ । ७)

सूक्त का भावार्थ ।

जिस विश्वरूप सृष्टियज्ञ के होता ओर सर्वदेव स्वरूप को
सृष्टि की आदि में परमाणुरूप मातरिश्वा ने मथन करके प्रकट किया
और जिस सूर्य जैसे आश्चर्य रूप देदीप्यमान शरीर वाले को
देवताओं ने मनुष्यों में स्थापन किया वे दोनों एक ही हैं ॥ १ ॥ स्तोत्र
की भेट करने वाले मुझ दीर्घतमा को शत्रु नहीं पीड़ित कर सकें
शरणरूप अग्नि ने मुझ जैसे के स्तोत्र को प्रेम से स्वीकार किया
समीप जाकर स्तुति करने वाले इस स्तोता के सब कर्म देवताओं
ने पसंद किये ॥ २ ॥ यज्ञ करने वाले भक्तों ने नित्य रखने के लिये
स्तुतियों के साथ अग्नि का आधान किया इसी नित्य अग्नि को
इष्टि के समय आहवनीयादि स्थानों में ले गए जैसे शीघ्रगामी
घोड़े रथ को लेजाते हैं ॥ ३ ॥ दावाग्नि रूप में अग्निदेव दादों से
वृक्षों को चबाकर और अनेक प्रकाश से युक्त होकर वन में चमकते
हैं फिर वायु भी प्रतिदिन उन्हीं के पीछे चलता है जैसे धनुर्धारी
के बाण के पीछे ॥ ४ ॥ शत्रु और हिंसाशील घातों वृक्षों के गर्भ
में रहते हुए अग्नि को घात नहीं करसके उसके महत्त्व के न देखने
वाले अन्धे उस के माहात्म्य को नहीं लोप करसके, नित्यधारण
करने वाले भक्तों ने इस की रक्षा की है ॥ ५ ॥

(४०२९) क्र०सं०१सू०१४८ सं०१

अग्निर्देवता निचृतत्रिष्टुप्छन्दः ११०।११।११।११

मथीद्यदीविष्टोमातरिश्वा हो-

तारंविश्वाप्सुविश्वदेव्यम् । नियं

दधुर्मनुष्यासुविक्षु स्व १ णचिचंवपुषे

विभावम् ॥ १ ॥

मथीत्	अमथ्नात्	मथन किया
यत्	यम्	जिस को
ईम्	एनम्	इस को
विष्टः	प्रविष्टः	प्रविष्ट होकर
मातरिश्वा	मातरिश्वा	मातरिश्वाने
होतारम्	होतारम्	होता को

क०मं०१ क०१४८मं०१ (४०३०)

{ विश्वऽ- - प्सुम्	विश्वरूपम्	सब रूप वाले को
{ विश्वऽ- - देव्यम्	सर्वदेवस्वरूपम्	सब देवताओं के स्वरूप को
नि	नि +	-
यम्	यम्	जिस को
दधुः	नि+दधुः धारित वन्तः	स्थापन किया
मनुष्यासु	मनुष्यासु +	-
विद्म	मनुष्यासु+विक्षु, मानुषीषुप्रजासु	मनुष्य प्रजा में
स्वः	आदित्यम् (निब० २।१४)	सूर्य
न	इव	की न्याई
चित्रम्	आश्चर्यरूपम् (आ० को०)	आश्चर्य रूप को

(४०११) क्र०सं०१७०१४८ सं०२

वपुषे	शरीरेण (विभक्तिव्यत्ययः)	शरीर से
विभाऽवम्	देदीप्यमानम्	देदीप्यमान को

संस्कृतार्थः ।

यमेनंहोतारं विश्वरूपं प्रविष्टः सन् मातरिश्वा-
ऽमथनात् यम्(च) सूर्यमिवाऽऽश्चर्यरूपंशरीरेण देदी-
प्यमानं (देवाः) मानुषीषु प्रजासु धारितवन्तः ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

जिस सब रूप वाले और सर्व देव स्वरूप इस
होता को प्रविष्ट होकर मातरिश्वाने मथन किया
और जिस सूर्य की न्याई आश्चर्य रूप और शरीर
से देदीप्यमान को (देवताओं ने) मानुषी प्रजाओं
में स्थापन किया ॥ १ ॥

अग्निदेवता निचृत्त्रिष्टुपुच्छन्दः ।११।११।१०।११

ददानमिन्नददभन्तमन्माग्नि

र्वह्यममृतस्यचाकन्।जुषन्तविप्रवा

न्यस्यकर्मोपस्तुतिंभरमाणस्यका-

रोः ॥ २ ॥

क्र०सं०१ सू०१४८सं०२ (४०३२)

दद॒ानम्	दद॒ानम्	देते हुए को
दू॒त्	व॒ए	हो
न	न	नहीं
द॒द॒भ॒न्त	हिंसितुंशेकुः	पीड़ित कर सके
स॒न्म	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
अ॒ग्निः	अ॒ग्निः	अग्नि
व॒रु॒थम्	शरणम्	शरण
म॒म	म॒म	मेरे
त॒स्य	त॒स्य	इस के
चा॒क॒न्	वाञ्छितवान्	इच्छा की
जुष॒न्त	प्रशंसितवन्तः	पसन्द किया
विप्र॒दानि	सर्वाणि	सब

(४०३३) क्र०सं०१सू०१४८सं०२

अस्य	अस्य	इसके
कर्म	कर्माणि	कर्मों को
उपऽस्तुतिम्	समीपेस्तुतिम्	समीपस्तुति को
भरमाणस्य	सम्पादयितुः	करने वाले के
कारोः	स्तोतुः (निघं० ३।१६)	स्तोता के

संस्कृतार्थः ।

(शत्रवः) स्तोत्रंददानमेव (माम्) हिंसितुं न शक्नुः
तस्यमम (स्तोत्रम्) शरणरूपोऽग्निः वाञ्छितवान्
समीपेस्तुतिं सम्पादयितुः अस्यस्तोतुः कर्माणि कर्मा-
णि (देवाः) प्रशंसितवन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

स्तोत्र को देते हुए (मुझे शत्रु) नहीं पीड़ित कर
सके, शरण रूप अग्नि ने उस मेरे (स्तोत्र) की इच्छा
की है, समीप में स्तुति को करने वाले इस स्तोता
के सब कर्म (देवताओं ने) पसन्द किये ॥ २ ॥

क्र०मं०१ सू०१४८ मं०३ (४०३४)

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

नित्ये॑चि॒न्नु॒यं॑स॒दने॑जगृ॒भ्ने प्र॒श-
स्ति॑भिर्द॒धिरे॒य॒ज्ञिया॑सः । प्र॒सू॒नय॑न्त
गृ॒भय॑न्तद्दृ॒ष्टा व॒श॒वा॒सो॒नर॒थ्यो॒रार
ह्या॒णाः ॥ ३ ॥

नित्ये॑	नित्ये	नित्य में
चि॒त्	एव	हा
नु॒	खल	सचमुच
यम्	यम्	जिस को
स॒दने॑	आसादनस्थाने	बैठने के स्थानमें
जगृ॒भ्ने	गृहीतवन्तः	ग्रहण किया है

(४०१५) क्र०सं०१ सू०१४८ सं०३

प्रशस्तिऽभिः	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
दधिरे	स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
यज्ञियासः	यजमानाः	यज्ञ करनेवालोंने
प्र	प्र+	-
सु	सुष्ठु	भली प्रकार
नयन्त	प्र+नयन्त प्राणयन्	प्रणयन किया
गृभयन्त	गृहीतवन्तः	ग्रहण किया
इष्टौ	इष्टौ	इष्टि में
अप्रवासः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
रथ्यः	रथेनियुक्ताः	रथ में जुड़े हुए
ररहाणाः	वेगेनगच्छन्तः (रदिन्तौ)	शीघ्रगामी

क्र०मं०१सू०१४८मं०४ (४०३६)

संस्कृतार्थः ।

यजमानाः यं खलु नित्ये एव आसादनस्थाने
गृहीतवन्तः, स्तुतिभिः स्थापितवन्तः (च तमेव) इष्टौ
सुष्ठुप्रणयन्तः यथा देशेन गच्छन्तः रथेनियुक्ताः
अश्वाः (रथं नयन्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

यजमानों ने सचमुच जिसको नित्य स्थान में
ग्रहण किया और स्तुतियों द्वारा स्थापन किया
(उसी को) इष्टि में आगे ले गए जैसे रथ में जुड़े
हुए शीघ्रगामी घोड़े, (रथ को) ले जाते हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ११।१०।११।११

पुरु॑णि॒द॒स्मो॒निरि॑णाति॒जम्भै॑
राद्रो॑च॒ते॒व॒न॒आ॒वि॒भावा॑ । आ॒द॒स्य
वा॒तो॒अ॒नु॒वा॒ति॒शोचि॑ र॒स्त॒र्न॒श॒र्या॑म
सु॒ना॒म॒नु॒द्यून् ॥ ४ ॥

(४०३७) क्र०सं०१स०१४१सं०४

पुरुषि	बहूनि	बहुतों को
दृश्मः	अद्भुतरूपः	आश्चर्य रूप
नि	नि+	—
रिणाति	नि+रिणाति, चर्वति	चवाता है
जम्भः	दंष्ट्रैः	दाढ़ों से
प्रात्	अनन्तरम्	पीछे
रोचते	आ+रोचते	खूब चमकता है
वने	वने	बन में
आ	आ+	—
विभाऽवा	विविध प्रकाश युक्तः	अनेक प्रकाश से युक्त
प्रात्	अनन्तरम्	पीछे

क०मं०१सू०१४१मं०४ (४०३८)

अस्य	अस्य	इस के
वातः	वायुः	वायु
अनु	अनु	-
वाति	वाति	पीछे चलता है
शोचिः	ज्वालाम्	ज्वाला को
अस्तुः	क्षेप्तुः	फेंकने वाले के
न	इव	जैसे
शर्याम्	शरमयम्	सरके
असनाम्	वाणम्	वाण को
अन	अनु+	-
द्युन	अन+द्युनू प्रति दिनम्	प्रतिदिन

(४०३९) श्र०मं०१सू०१४८व०५
संस्कृतार्थः ।

अद्भुतरूपोऽग्निः दंष्ट्रैः बहूनि (दारुणि) चर्वति
अनन्तरं विविधप्रकाशयुक्तः (सन्) वने आरोचते,
अनन्तरम् अस्य ज्वालाम् अनु-सृत्य) प्रतिदिनं
वायुर्वति यथा क्षेप्तुः शरमयंवाणम् अनुसृत्य
(वाति) ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

आश्चर्यरूप अग्नि दाढ़ों से बहुत वृक्षों को
चबाता है फिर अनेक प्रकाश से युक्त होकर वन
में चमकता है फिर इसकी ज्वाला के पीछे प्रतिदिन
वायु बहता है जैसे फेंकने वाले के सर के बाण के
पीछे (बहता है) ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

नयंरिपवोनरिषयवोगर्भेसन्तं
रेषणा षयन्ति । अन्धा अप्रयानद-
भन्नभिख्या नित्यासङ्गप्रेतारो अर-
क्षन् ॥ ५ ॥

न

न

नहीं

क्र०सं०१ सू०१४८ सं०५ (४०४०)

यम्	यम्	जिस को
रिपवः	शत्रवः	शत्रु
न	न	न
रिषयवः	हिंसकाः	हिंसक
गर्भे	गर्भे	गर्भ में
सन्तम्	सन्तम्	होते को
रेषणाः	हिंसनस्वभावाः	हिंसाशील
रेषयन्ति	हिंसन्ति	हिंसा करते हैं
अन्धाः	अन्धाः	अन्धे
अपश्याः	अद्रष्टारः	न देखने वाले
न	न	न

(४०४१) क्र०सं०१सू०१४८ पं०५

द॒भन्	हिंसितवन्तः	हिंसित किया है
अभि॒ऽख्या	माहात्म्यम्	माहात्म्य को
नि॒त्यासः	नित्यंधारयितारः	नित्य धारण करने वालों ने
ई॒म्	एनम्	इस को
प्रे॒तारः	प्रीतिकर्तारः	प्रेम करनेवालों ने
अ॒र॒क्षन्	रक्षितवन्तः	रक्षा की है

संस्कृतार्थः ।

शत्रुबोहिसनस्वभावाः हिंसकाः (च) यंगर्भेसन्तं
नहिंसन्ति अद्रष्टारः अन्धाः (अस्य) माहात्म्यं
नाहसितवन्तः, एनं प्रीतिकर्तारः नित्यं धारयितारो
रक्षितवन्तः ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

जिस को गर्भ में रहते हुए को शत्रु और हिंसा
के स्वभाव वाले हिंसक नहीं पीड़ित कर सकते, न
देखने वाले अंधे (इस को) माहात्म्य को नहीं नाश
कर सके, प्रीति करने वाले और नित्य धारण करने
वालों ने इसकी रक्षा की है ॥ ५ ॥

क्र० मं० १ सू० १४९ मं० १ (४०४२)

ऋ० मं० १ सू० १४६ ।

उचथ्यपुत्रो दीर्घतमाऋषिः अग्निदेवता

विनयोगो लैङ्गिकः

सूक्तका भावार्थ

वह बड़े धन के स्वामी और राजाओं के राजा अग्निदेव हम को धन देने के लिये इस निधि के स्थान अर्थात् हमारी यज्ञ भूमि में भारहे हैं हमारे सोम कूटने के पत्थर भी उन की सेवा के लिये तैय्यार हैं ॥ १ ॥ जिसके त्याग हुआ को जीव भोगते हैं, जो अपने यशस्वियों का पृथिवी और मनुष्यों का वीर है वही सरकता हुआ हमारी वेदी का आश्रय लेता है ॥ २ ॥ जिसने मनुष्य के शरीर को दीपन किया है, जो बुद्धिमान आकाश में दौड़ने वाले वायु की न्याईं शीघ्रगामो और सूर्य की न्याईं प्रकाशमान है वही नाना शरीरों का आत्मा है ॥ ३ ॥ तीन ज्योतियों को और सारे लोकों को प्रकाशित करने वाले द्विजन्मा अग्नि हमारी वेदि में पूज्य होता बनकर बैठे हैं ॥ ४ ॥ जो द्विजन्मा अग्नि है वही देवताओं के बुलाने वाले हैं, जो मनुष्य सब वेग युक्त होकर इस को हवि अर्पण करता है उसके लिये वह सब घरने योग्य धनों को और यशों को देते हैं ॥ ५ ॥

अग्निदेवता विराट् छन्दः ११।११।११

म॒हः॒सरा॒य॒ए॒ष॒ते॒पति॒र्द॒न्नि

न॒दून॒स्य॒व॒सुनः॒प॒द॒त्रा उप॒ध्रज॒न्त

म॒द्रयो॒वि॒ध॒न्नि॒त् ॥ १ ॥

(४०४१) क्र०सं०१ स०१४९सं०१

महः

महतः

बड़े के

सः

सः

वह

रायः

धनस्य

धन के

आ

आ +

-

ईषते

आ + ईषते

आता है

पतिः

पतिः

स्वामी

दन्

दानार्थम्

देने के लिये

इनः

स्वामी

स्वामी

इनस्य

स्वामिनः

स्वामी का

वसनः

धनस्य

धनका

पदे

स्थाने

स्थान में

म०सं०१ज०१४९ सं०१ (४०४४)

आ	खलु (आ०को०)	सचमुच
उप	समीपे	समीप में
ध्वजन्तम्	आगच्छन्तम्	आते हुए को
अद्रयः	पाषाणाः	परथर
विधन्	परिचरन्ति	सेवा करते हैं
इत्	एव	ही

संस्कृतार्थः ।

स महतो धनस्य पतिः स्वामिनः (अपि) स्वामी
दानार्थं धनस्य स्थाने आगच्छति खलु, समीपे आग-
च्छन्तम् (तम् अस्मत्सोमकुट्टन-) पाषाणाः परिचरन्ति
एव ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

वह बड़े धन के स्वामी, (और) स्वामियों के (भी
स्वामी) (अग्निदेव) देने के लिये सचमुच धन के स्थान
में आते हैं, उस समीप आते हुए को (सोम कूटने के)
परथर सेवा करते ही हैं ॥ १ ॥

(४०४५) क्र०मं०१ सू०१४९ मं०२

अनिर्देवता विराट्छन्दः १११११०

स॒यो॒वृ॒षा॒न॒रा॒न॒रो॒द॒स्योः॒ श्र॒वो॑
 भि॒र॒स्ति॒जी॒व॒पी॒त॒स॒र्गः॑ । प्र॒यः॑ स॒स्त्रा॒-
 णः॑ शि॒श्री॒त॒यो॒नौ॑ । २ ।

सः	सः	वह
यः	यः	जो
वृ॒षा॑	वीरः	वीर
न॒राम्	नराणाम्	मनुष्यों को
न	इव	न्याई
रो॒द॒स्योः॑	आवापृथिव्योः	धौ और पृथिवी का
श्र॒वः॑ऽभिः	यशोभिः	यशों से

क्र०सं०१ सू०१४९ सं०२ (४०४१)

अस्ति	अस्ति	है
{ जीवपीत - ऽसर्गः	जीवैः पीयतेवि सृष्टिर्यस्य	जिस के छोड़े हुए को जीव भोगते हैं
प्र	प्र +	-
यः	यः	जो
सस्त्राणः	प्र + सस्त्राणः प्रसरन्	सरकत। हुआ
प्रिश्नीत	आश्रयं प्राप्नोत्	आश्रय को पाया हूँ
योनी	(वेदि-) स्थाने	(वेदि के) स्थान में

संस्कृतार्थः ।

योजीवपीतसर्गो द्यावापृथिव्योरिव यशोभिर्नराणां
वीरोऽस्ति सः (एवाग्निरस्ति) यः प्रसरन् वेदिस्थाने
आश्रयं प्राप्नोत् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जिस के छोड़े हुए को जीव भोगते हैं, जो द्यो
आर पृथिवी का जैसे वैसे ही यशों से नरों का वीर

(४०४७) म०सं०१ स०१४९पं०३

है, वह (ही आग्न है) जिस ने सरकते हुए वेदि के स्थान में आश्रय को पाया है ॥ २ ॥

अग्निदेवता विराट्छन्दः १०।१०।१०

आयःपुरंनार्मिणीमदीदेदत्यः

कविर्नभन्यो ३ नार्वा । सूरोनरु

कवाञ्छतात्मा । ३ ।

आ	अभितः	चारों ओर से
यः	यः	जिस ने
पुरम्	शरीरम्	शरीर को
नार्मिणीम्	नरसम्बन्धि	मनुष्य के
अदीदेत्	दीपितवान्	दीपन किया है
अत्यः	शीघ्रगामी	शीघ्र चलनेवाला

क्र०सं०१ सू०१४९प्र०३ (४०४८)

कविः	मेधावी	बुद्धिमान
नभन्यः	आकाशेभवः	आकाश में होने वाला
न	इव	जैसे
अर्वा	अश्वः	घोड़ा
सूरः	सूर्यः	सूर्य
न	इव	की न्याई
रुरुक्वान्	दीप्यमानः	प्रकाशमान
शतऽआत्मा	बह्वात्मा	बहु आत्मा

लक्ष्यतार्थः ।

योनरसम्बन्धि शरीरं दीपितवान् (सोऽयम्)
मेधावी आकाशेभवः अश्वइव शीघ्रगामी सूर्यइव
(च) दीप्यमानः (अग्निः) बह्वात्मा (अस्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

जिसने मनुष्य के शरीर को दीपन किया है

(४०४९) ऋ०सं०१स०१४९ मं०४

(वह) बुद्धिमान आकाश के घोड़े की न्याईं
शीघ्र गामी और सूर्य की न्याईं प्रकाशमान (अग्नि)
ब्रह्मात्मा! (है) ॥ ३ ॥

अनिर्देवता विराट्छन्दः १०।११।१०

अभिद्विजन्मात्रीरोचनानि वि-
प्रवारजासिशुशुचानोअस्थात् । हो
तायजिष्ठोअपासधस्थे । ४ ।

अभि	अ भतः	चारों ओर
द्विजन्मा	द्विजन्मा	दो जन्म वाला
त्री	त्रीणि	तीन
रोचनानि	ज्योतांषि	ज्योतियों को
विप्रवा	सर्वान्	सब को

क्र०मं० १ सू० १४९ मं० ४ (४०५०)

रजांसि	लोकान्	लोकों को
प्र॒श॒चा॒नः	प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
प्र॒स्था॒त्	स्थितवान्	ठैरा है
हो॒ता	होता	होता
यजि॑ष्ठः	पूजनीयतमः	अत्यन्त पूजनीय
प्र॒पाम्	जलानाम्	जलों के
स॒ध॒स्थे	सहस्थाने	साथ एकस्थान में

संस्कृतार्थः ।

द्विजन्मा(अग्निः) त्रीणि ज्योतींषि सर्वान् लोकान्
(च) अभितः प्रकाशयन् जलानां सहस्थाने पूज्य-
तमो होता (भूत्वा) स्थितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

दो जन्म वाले (आग्न) तीन ज्योतियों को (और)
सारे लोकों को चारों ओर से प्रकाशित करते हुए

(४०५१) क्र०सं०१सू०१४९ सं०५

जलों के साथ एक स्थान में अत्यन्त पूजनीय होता
बन कर बैठे हैं ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता विराट्छन्दः १।११।११

अयं स होता यो द्विजन्मा विप्रवा दधे वा
र्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको
ददाश ॥ ५ ॥

अयम्

अयम्

यह

सः

सः

वह

होता

आह्वाता

बुलाने वाला

यः

यः

जो

द्विजन्मा

द्विजन्मा

दो जन्म वाला

क्र०सं०१ स०१४९ प्र०५ (४०५२)

विश्रवा	सर्वाणि	सब को
दधे	धारयति	धारण करता है
वार्याणि	वरणीयानि	वरने योग्यों को
श्रवस्था	यशांसि	यशों को
मतः	मनुष्यः	मनुष्य
यः	यः	जो
अस्मै	अस्मै	इस के लिये
सऽतुक्तः	सुवेगयुक्तः	खूब वेग से युक्त
ददाश	ददाति	हुआ २ देता है

संस्कृतार्थः ।

यो द्विजन्मा सः (एव) (देवानाम्) आह्वाता (अस्ति)
यो मनुष्यः सुवेगयुक्तः सन् अस्मै हविः ददाति

(४०५३) ऋ०मं०१७०१४९ मं०५

तस्मै सः सर्वाणि वरणीयानि धनानि यशांसि (च)
ददाति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

जो द्विजन्मा (है) वह (ही) यह देवताओं के
बुलाने वाले हैं, जो मनुष्य खूब वेगयुक्त होकर इस
के लिये हवि देता है (उस के लिये वह) सब बरने
योग्य धनों को (और) यशों को देते हैं ॥ ५ ॥

ऋ०मं०१ सू०१५०मं०१ (४०५४)

ऋ० मं० १सू० १५० ।

अग्निर्देवता उचथ्यपुत्रो दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः-

१-३ इदं सूक्तं प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरौष्णिहे छन्दसि चिनि युक्तम् । (आ० सू० १३७)

सूक्त का भावार्थ

हे अग्नि ! जैसे कोई बड़े अधिकारी की शरण में हो, ऐसे मैं आप का भक्त आप की ही शरण में रहता हुआ और हविदेता हुआ आप को बार २ बुलाता हूँ । १ । जो आप देव-भक्ति शून्य न देने वाले धनवान के बहुत बुलाने पर भी नहीं जाते, जिस ने आप को अपना स्वामी नहीं बनाया है । २ । हे बुद्धिमान अग्नि आप का पूजने वाला मनुष्य सब को आनन्दित करने वाला और सुलोक में अत्यन्त बड़ा हुआ होता है, आप के पूजने वाले हम प्रतिदिन उन्नति करते रहें । ३ ।

अग्निर्देवता उष्णिगच्छन्दः । ८ । ८ । १२ ।

पु॒रु॒त॒वा॒दा॒श्वान्॒वो॒चे ऽरि॒र॒ग्ने-

तव॑स्वि॒दा । तो॒दस्ये॑व शर॒ण॒आम-

हस्य॑ ॥ १ ॥

(४०५५) क्र०सं०१५०१५०सं०१

प्रु	बहु	बहुत
त्वा	त्वाम्	तुम को
दाश्वान्	ददानः	देता हुआ
बोचे	आ+बोचे आह्वयामि (यास्कः)	मैं बुलाता हूँ
अरिः	भक्तः (भा०को०)	भक्त
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
तव	तव	तेरा
स्वित्	एव	ही
आ	आ+	-
तौदस्यऽद्व	प्रेरकस्येव	प्रेरण करने वाले की

क्र० सं० १६०१५० सं० २ (४४५६)

शरणे	शरणे	शरण में .
आ	खलु (आ०को०)	सचमुच
महस्य	महतः	महान की

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! महतः प्रेरकस्य इव शरणे खलु
(स्थितः) तवैवभक्तः (हविः) ददानः अहम् त्वां बहु
वारम् आह्वयामि ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! सचमुच महान प्रेरक की शरण में
मानो (स्थित हुआ २) आप का ही भक्त (हवि को
देता हूँ आ मैं आपको बारम्बार बुलाता हूँ ॥ १ ।

अग्निर्देवता उष्णिगच्छन्दः । ८। ८। १२

व्यनिनस्य धनिनः प्रहीषे चि-

दरुषः । कदाचन प्रजिगतोऽद्यदेव-
योः ॥ २ ॥

(४०५७) क्र०म०१सू०१५० मं०र०

वि	वि+	-
अनिनस्य	अस्वामिनः	स्वामीसे रहित के
धनिनः	धनवतः	धनवान के
प्रऽहोषे	वि+प्रहोषे, विशेषाह्वाने	विशेषतासे बुलाने पर
चित्	अपि	भी
अररुषः	अदातुः	न देने वाले के
कदा	कदा+चन नक- दापि	न कभी
चन	+चन	-
प्रऽजिगतः	प्रगच्छन्तम् (द्वितीयार्थे षष्ठी)	जाते हुए को
अदेवऽयोः	देवाननिउतः	देवताओं को न चाहने वाले के

क्र०सं०१ सू०१५०सं०३ (४०५८)

संस्कृतार्थः ।

(कथंभूतमग्निम्) अस्वामिनः देवाननिच्छतः
अदातुः धनवतोऽपि विशेषाद्दाने न कदापिगच्छ-
न्तम् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(जो अग्नि) स्वामी रहित देवताओं की कामना
न करने वाले दान रहित धनवान के भी विशेषता
से बुलाने पर कभी नहीं जाते ॥ २ ॥

अग्निर्देवता पंक्तिश्छन्दः ८।८।१२

सचन्द्रोविप्रमर्त्यो म॒हो॒ब्राध-
न्तमोदिवि । प्र॒प्रे॒त्ते॒अग्ने॒व॒नुषः
स्याम ॥ ३ ॥

सः

चन्द्रः

सः

आहादकः

वह

आनन्दित करने
वाला

(४०५९) ऋ०मं०१सू०१५०मं०१

विप्र	हे मेधाविन्	हे बुद्धिमान
मर्त्यः	मनुष्यः	मनुष्य
महः	महतः	बड़ों का
बाधन्तमः	प्रवृद्धतमः	अत्यन्त बड़ा हुआ
दिवि	द्युलोके	द्युलोक म
प्रऽप्र	अग्नेऽग्ने	आगे आगे
इत्	एव	ही
ते	ते	तेरे
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वनस्पः	पूजयितारः	पूजने वाले
स्याम	भवेम	हम होंवें

क्र०मं०१ सू०१५०मं०३ (४०६०)

संस्कृतार्थः ।

हे मेधाविन् ! अग्ने ! समनुष्यः द्युलोके महतः
(मध्ये) प्रवृद्धतमः (सर्वेषाम्) आह्लादकः (चास्ति)
तवपूजयितारः (वयम्) अग्रेऽग्रे एवभवेम ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे बुद्धिमान अग्नि ! वह मनुष्य द्युलोक में
बड़ों के (बीच में) अत्यन्त बढ़ा हुआ (और सबका)
प्रसन्न करने वाला (होता है) आप के पूजने वाले
हम आगे २ बढ़ते रहें ॥ ३ ॥

इति पञ्चाशदत्तरैक शततमं सूक्तं समाप्तम्

(४०११) क्र०मं० १ सू० १५१ मं०

ऋ०मं० १ सू० १५१ ।

मित्रावरुणौ देवते, उचथ्यपुत्रो दीर्घतमा ऋषिः ।

विनियोगोलैङ्गिकः ।

सूक्त का भावार्थः ।

सृष्टि रचना रूपी यह मैं प्रकाश को चाहने वाले देवताओं ने मनुष्यों की रक्षा के लिये मित्र जैसे प्रिय अग्नि को सृष्टि के कारण भूत परमाणुओं में उत्पन्न किया, उस के बल से और शब्द से धररा कर द्यौ और पृथिवी बने ॥ १ ॥ जिन मित्र और वरुण को पुरुमीलह के योग्य ऋत्विजों ने मित्र की न्याई सोम अर्पण किया, वे इस गाने वाले के ताई मनोबल का प्रदान करें और यजमान की स्तुति को सुनें ॥ २ ॥ हे वीरो ! बहुत बल के कारण कथन करने के योग्य आप के जन्म को जो आप नियम को धारण करने के लिये और भक्त को उपासना के लिये लेते हो मनुष्यों ने द्यौ और पृथिवी से वर्धन किया है, आप स्तुति और शुभ कर्म करने से यह मैं आते हो ॥ ३ ॥ हे बलवान मित्र और वरुण ! जो मनुष्यजाति आप के मर्यान्त प्यारी है वह आगे बढ़ती है, हे नियम के धारण करने वालो ! आप सृष्टिनियम को उच्च स्वर से पुकार रहे हो, आप ही मनुष्य के कर्म में निपुणता युक्त सामर्थ्य को युक्त करते हो जैसे शकट के घुरे में बैल को युक्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे मित्र और वरुण ! आप महान हो आप ही मनुष्य के ताई कामना करने योग्य महत्त्वको प्राप्त कराते हो, आपके घर में प्रातः काल और सायंकाल की संख्यारूपी धूलि रहित लाल गौपं भीड़ कर रही हैं जो उड़नेवाले पक्षियों को न्याई सूर्य की स्तुति से आकाश को गुंजाती हैं ॥ ५ ॥ हे मित्र और वरुण ! जहां पर आप धर्ममार्ग को ऊंचा करते हो, वहां पर आप के लिये यह होता है, आप हम को चिता मांगे दो,

R 220 60

क्र०मं०१ सू०१५१मं०१ (४०६३)

हमारी स्तुतियों को बढ़ाओ, आप ही ऋषि की स्तुतिओं के मालिक हो ॥ ६ ॥ हे मित्र और वरुण ! जो यज्ञों द्वारा परिश्रम करता हुआ आप के निमित्त देता है और जो देवताओं को बुलाने वाला कवि आप के निमित्त स्तोत्र अर्पण करता है आप उस के पास जाते हो, और उस के यज्ञ की कामना करते हो, ऐसे आप हमको चाहते हुए हमारी स्तुतियों और भक्ति को लक्ष्य रख कर हमारे पास आओ ॥ ७ ॥ हे नियम वाले मित्र और वरुण ! मनुष्य मन की प्रेरणाओं से प्रेरित हुए की न्याईं दुग्ध और यज्ञों द्वारा आप को पूजते हैं, वे निश्चल ध्यान से आप के लिये स्तुतियों की भेंट करते हैं, और आप गर्वरहित धनी की न्याईं विनीत मन से उन को प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥ हे वीरो ! आप धन सहित बल के धारण करने वाले हो, आप मन के बल द्वारा ऐसे महत्त्व को पहुंचे हो, जो रक्षा करने में समर्थ है, दिन के साथ जुड़े हुए दिन, न नदियां और न प्रकाश रूपी गौओं के छिपाने वाले पणि आप के देवपन को और धन को पहुंचे हैं ॥ ९ ॥

मित्रावरुणादेवने, जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

मि॒त्रं न॒यं॑ शि॒म्या गो॒षु ग॒व्यवः॑ स्वा-

ध्या॑ वि॒दथे॑ अ॒सु जी॒जनन् । अ॒रेजे॑तां

रो॒दसी॑ पा॒जसा॒गिरा॑ प्र॒तिप्रि॒यं य॒जतं॑

ज॒नुषा॑मवः ॥ १ ॥

(४०६३) अक्टोबर २०१२ ई०

मिचम्

न

यम्

शिम्या

गोषु

गव्यवः

सुऽप्राध्यः

विदधे

पपऽसु

जीजनन्

परजेताम्

मित्रम्

इव

यम्

कर्मणा

गोषु+

गोषु+गव्यवः,
प्रकाशस्य किर-
णान्मुच्यन्तः
(भा० को०)अतिशयेन ध्यान
युक्ताः

यजे

(सृष्टिकारण-
भूतेषु) जलेषु

उत्पादितवन्तः

अकम्पेताम्

मित्र

की न्याई

जिस को

कर्म से

प्रकाशकी किरणों
को चाहते हुएअत्यन्त ध्यान
करने वाले

यज्ञ में

(सृष्टि के कारण-
भूत) जलों में

उत्पन्न किया

यराण

क्र०सं०१ त०१५१सं०१ (४०६४)

रोदसी०	धावापृथिव्यौ	द्यौ और पृथिवी
पाजसा	बलेन	बल से
गिरा	वाण्या	बाणी से
प्रति	प्रति	की ओर
प्रियम्	प्रियम्	प्रिय को
यजतम्	यजनीयम्	पूजनीय को
जनप्राम्	प्राणिनाम्	प्राणियों के
अवः	रक्षणम्	रक्षण को

संस्कृतार्थः ।

यं प्रियं यजनीयम् (अग्निम्) प्रकाशस्य किरणान्
 हृच्छन्तः (सृष्टि-) यज्ञे अतिशयेन ध्यानयुक्ताः (देवाः)
 प्राणिनां रक्षणं प्रति मित्रमिव (जगत्कारणभूतेषु)
 जलेषु कर्मणा उत्पादितवन्तः (तस्य) बलेन वाण्या
 (च) धावापृथिव्यौ अकम्पेताम् ॥ १ ॥

(४०६५) ऋ० ष० १५१ पं० २

भाषार्थः ।

जिस प्यारे पूजनीय (अग्नि) को प्रकाश की किरणों की इच्छा करते हुए (सृष्टि-) यज्ञ में अत्यन्त ध्यान करने वाले, (देवताओं) ने प्राणियों की रक्षा के लिये मित्र की न्याई (जगत के कारण भूत) जलों में कर्म द्वारा उत्पन्न किया, उसके बल (और) बाणी से द्यौ और पृथिवी थराई ॥ १ ॥

मित्रावरुणोदेवते, जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

यद्दत्तयद्वापुर्मौलहस्यसोमिनः

प्रमित्रासोनदधिरेस्वाभुवः । अधक्र-

तुंविदतंगातुमर्चत उत्तश्रुतवृषणा

पस्त्यावतः ॥ २ ॥

यत्

ह

त्यत्

यतः

खलु

तत्

जिस से

सचमुच

उस को

क्र०५०१ स्०१५१मं०२ (४०६६)

वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनों के लिये
{ प्र०मी-	पुरुमीळ्हस्य	पुरुमीळ्ह के
{ ल्हस्य		
सोमिनः	सोमवतः	सोम वाले के
प्र	प्र+	-
मिचासः	मित्राणि	मित्रों
न	इव	की न्याई
दधिरे	प्र+दधिरे, अर्पितवन्तः	अर्पण किया है
स०पाभुवः	सुयोग्याः	खूब योग्यों ने
पध	अतः	इसलिये
क्रतुम्	मनोबलम्	मनोबल को
विदत्तम्	लभेथाम्	प्राप्त करो

(४०६७) अ०मं०१ सू०१५१ मं०२

गा॒तुम्	गा॒नम्	संगीत को
प॒र्च॑ते	निवे॒दय॑ते	निवेदन करने वाले के लिये
उ॒त	च	और
श्रु॒तम्	शृ॒णु॒तम्	सुनो
ह॒व॒ष॒णा	हेवीरौ !	हेवीरो !
प॒स्त॒यऽव॑तः	गृ॒हिणः	घर वाले की

संस्कृतार्थः ।

हेवीरौ ! (मित्रावरुणौ !) यतः सोमवतः पुरुमी-
ळहस्य सुयोग्याः(ऋत्विजः) मित्राणि इव युवाभ्यां तम्
(सोमम्) अर्पितवन्तः, अतः गानं निवेदयते मनो-
बलं लभेथाम्, गृहिणः च (स्तुतिम्) शृणुतम् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हेवीर (मित्र और वरुण !) जिस से सोम वाले
पुरुमीळह के खब योग्य (ऋत्विजों) ने मित्रों की ग्याई
आप दोनों के लिये उस (सोम) को अर्पण, किया है

क्र०सं०१ न०१५१ सं०३ (४०१८)

इसलिये संगीतको निवेदन करनेवालेके लिये मनोबल
को प्राप्त करो और घरवालेकी स्तुति को सुनो ॥ २ ॥

मित्रावरुणौदेवते, जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

आ॒वा॒भू॒षन्॒क्षि॒तयो॒जन्म॒रोद॒स्योः

प्र॒वा॒च्यं॒वृष॒णाद॒क्ष॒सेम॒हे । यदी॒मृ॒ताय॒

भर॒थो॒यद॒र्वते॒ प्र॒हो॒त्रया॒ग्नि॒म्यावी॒थो

अ॒ष्ट॒व॒रम् ॥ ३ ॥

आ

खलु

सचमुच

वा॒म्

युवयोः

तुम दोनों के

भू॒षन्

कथितवन्तः

कथन किया है

क्षि॒तयः

मनुष्याः

मनुष्यों ने

जन्म

जन्म

जन्म को

(४०६९) ऋ०मं०१ सू०१५१ मं०३

रोदस्योः	द्यावापृथिव्योः (सकाशात्)	द्यौ और पृथिवी से
प्र॒ऽवाच्यम्	प्रकथनीयम्	कथन करने के योग्य
वृषणा	हेवीरौ !	हे वीरो
दक्षसे	बलाय	बल के लिये
महे	महते	महान के लिये
यत्	यत्	जिस को
ईम्	(पूरणः)	-
ऋताय	ऋताय	दैवीनियम केलिये
भरथः	धारयथः	धारण करते हो
यत्	यत्	जिस को
अर्वते	प्राप्नुवते (भक्ताय)	(शरण) लेने वाले (भक्त) के लिये
प्र	प्रकर्षेण	खूब

क्र०मं०१ सू०५१ मं०३ (४०७०)

होत्रया	वाण्या	बाणी से
शिम्या	कर्मणा	कर्म से
वीथः	प्राप्नुथः	प्राप्त होते हो
अध्वरम्	यज्ञम्	यज्ञ को

संस्कृतार्थः ।

हेवीरौ ! मनुष्याः महते बलाय प्रकथनीयं युवयोः
जन्म आवापृथिव्योः (सकाशात्) प्रकथितवन्तः, यत्
(जन्म) युवाम् ऋताय भक्ताय (च) धारयथः (युवाम्)
(स्तुतिरूपया) वाण्या (सु-) कर्मणा (च) यज्ञं प्राप्नुथः । ३।

भाषार्थः ।

हेवीरो ! महान बल के लिये कथन करने के योग्य
आप के जन्म को मनुष्यों ने द्यौ और पृथिवी
से वर्णन किया है, जो (जन्म) आप दैवी नियम के
लिये (और) भक्त के लिये धारण करते हो, आप
स्तुतिरूप बाणी द्वारा (और) सुकर्म द्वारा यज्ञ में
आते हो ॥ ३ ॥

(४०७१) ऋ०सं०१ सू०१५१ सं०४

मित्रावरुणौदेवते, निचृज्जगती छन्दः १२।१२।१२।११।

प्रसाक्षितिरसुरयामहिप्रिया ऋता

वानावृतमाघोपथोबृहत् । युवंदिवो

बृहतोदक्षमाभुवं गांनधुर्युपयुञ्जाथे

अपः ॥ ४ ॥

प्र	प्र-(भवतु)	आगे (बदे)
सा	सा	वह
क्षितिः	मनुष्यजातिः	मनुष्यजाति
असुरा	हे बलवन्तौ !	हे बलवानो
या	या	जो
महि	अत्यधिकम्	अत्यन्त
प्रिया	प्रिया	प्यारी

क्र० ३०१ स० १५१ म० ४ (४०११)

कृतऽवानौ	हे नियमवन्तौ !	हे नियम वालो
कृतम्	नियमम्	नियम को
आ	आ+	-
घोषथः	आ+ घोषथः	पुकारते हो
बृहत्	उच्चैः	ऊंचे स्वर से
युवम्	युवाम्	आप दोनों
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
बृहतः	महतः	महान के
दक्षम्	सामर्थ्यम्	सामर्थ्य को
आऽभुवम्	नैपुण्ययुक्तम्	निपुणतायुक्त को
गाम्	बलीवर्दम्	बैल को

(४०७३) क्र० मं० १ स० १५१ मं० ४

न	इव	जैसे
धुरि	धुरि	धुरे में
उप	प्रति	की ओर
युञ्जयाथे०	योजयथः	जोड़ते हो
अपः	कर्म	कर्म को

संस्कृतार्थः ।

हे बलवन्तौ ! (मित्रावरुणौ !) या मनुष्यजातिः
 (युवयोः) अत्यधिकं प्रिया (अस्ति) सा प्र- (भवतु) हे
 नियमवन्तौ ! युवां नियमम् उच्चैः आघोषयः (युवाम्)
 बलीवर्द धुरि इव महतो युलोकस्य नैपुण्ययुक्तं
 सामर्थ्यं (मनुष्यस्य कर्म प्रति योजयथः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे बलवान (मित्र और वरुण !) जो मनुष्यजाति
 (आप की) अत्यन्त प्यारी (है) वह आगे (बढ़े)
 हे नियमवालो ! आप नियम को ऊंचे स्वर से पुकार
 रहे हो, आप महान युलोक के निपुणतायुक्त सामर्थ्य-
 को (मनुष्य के) कर्म के प्रति जोड़ते हो जैसे धुरे में
 बेल को ॥ ४ ॥

क्र०सं०१स०१५१ मं०५ (४०५४)

मित्रावरुणौदेवते, निचृज्जगतीछन्दः १२।१२।१२।११

म॒हीअ॒त्रम॒हिना॒वारमृ॒णव॒थोऽ-
रे॒णव॒स्तुज॒आस॒न्नन्धे॒नवः॑ । स्वर॑न्ति
ता॒उ॒पर॒ताति॒सूर्य॑ मा॒निम्नु॒च॒उ॒षस॑-
स्त॒क्ववी॒रिव॑ ॥ ५ ॥

म॒ही०	महत्त्वम्	महत्त्व को
अ॒त्र	अत्र	यहाँ
म॒हिना	महत्त्वेन	महत्त्व के कारण
वा॒रम्	वरणीयम्	वरने योग्य को
ऋ॒णव॒थः	प्रापयथः	प्राप्त कराते हो
अ॒रे॒णवः॑	धूलि रहिताः	धूलि से रहित

(४०७५) क्र०सं०१ सू०१५१ सं०५

तुजः	सङ्घट्टिताः	भीड़ करती हुई
आ	सर्वतः	सब ओर से
सङ्गन्	सङ्गनि (सप्तम्यालुक्)	घर में
धेनवः	गावः	गौएँ
स्वरन्ति	शब्दयन्ति (आ० को०)	गुँजाती हैं
ताः	ताः	वे
उपरऽताति	सन्निधौ	समीप में
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
आ	आ +	-
निऽमृचः	आ+निमृचः, सायंकालेषु	सायंकाल में
उषसः	आ+उषसः, उषः- कालेषु	प्रातःकाल में
तक्ववीऽद्व	उद्यमानाःपक्षिणः इव	जैसे उड़ने वाले पक्षी

क्र०सं०१ सू०१५१ मं०१ (४०७१)

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रावरुणौ ! (युवाम्) अत्र महत्त्वेन वरणीयं महत्त्वं प्रापयथः, (युवयोः) गृहे धूलिरहिताः संघट्टिता गावः (सन्ति) ताः सायंकालेषु उषःकालेषु च डयमानाः पक्षिण इव सन्निधौ सूर्यं शब्दयन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र और वरुण ! आप दोनों यहाँ पर महत्त्व के द्वारा वरनेयोग्य महत्त्व को प्राप्त कराते हो, (आप के) घर में धूलि रहित भीड़ करती हुई गौएँ हैं, वे सायंकाल में और प्रातःकाल में उड़ने वाले पक्षियों की न्याईं समीप में सूर्य को गुंजाती हैं ॥ ५ ॥

मित्रावरुणौदेवते, जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

आवा॑मृ॒ताय॑के॒शिनी॑रनू॒षत॑ मि-
चय॑च॒वरु॑णगा॒तुमर्च॑यः । अव॒त्मना॑
सृ॒जतं॑पि॒न्वतं॑धि॒यो यु॒वंवि॑प्रस्य॒मन्म-
नामि॑रज्यथः ॥ ६ ॥

(४०७७) क्र०मं०१ स०१५१ मं०७

आ	खलु (आ० को०)	सचमुच
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
कृताय	यज्ञेन	यज्ञ के द्वारा
केशिनीः	केशवत्यः	बालों वालीं
अनूषत	स्तुवन्ति	स्तुति करती हैं
मित्र	हे मित्र !	हे मित्र
यत्र	यत्र	जहाँ पर
वरुण	हे वरुण !	हे वरुण
गातुम्	धर्ममार्गम्	धर्म के मार्ग को
अर्चयः	महयथः	ऊँचा करते हो
अथ	अथ +	-
तमना	आत्मना	अपने आप

क्र०सं०१ त०१५१ सं०७ (४०७८)

सृजतम्	अव+सृजतम्	छोड़ो
पिन्वतम्	वर्धयतम्	बढाओ
धियः	स्तुतीः	स्तुतियों को
युवम्	युवाम्	आप दोनों
विप्रस्य	ऋषेः	ऋषि के
मन्मनाम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
इरज्यथः	स्वामिनौस्थः	स्वामी हो

संस्कृतार्थः ।

हे मित्र ! हे वरुण ! यत्र (युवाम्) धर्ममार्गं महयथः
(तत्र) केशवत्यः (ज्वालाः) युवां यज्ञेन स्तुवन्ति,
(युवाम्) आत्मना (एव) अवसृजतम्, (अस्माकम्)
स्तुतीर्वर्धयतम्, युवाम् ऋषेः स्तोत्राणां स्वामिनौ
स्थः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र ! हे वरुण ! जहाँ आप दोनों धर्म मार्ग
को ऊंचा करते हो वहाँ पर वालोंवाली (ज्वालाएँ)

(४०५९) क्र०सं० १२०१५१मं० ११

यज्ञ द्वारा आप की स्तुति करती हैं, आप दोनों अपनेआप छोड़ो (हमारी) स्तुतियों को बढ़ाओ, आप दोनों ऋषि के स्तोत्रों के स्वामी हैं ॥ ६ ॥

मित्रावरुणौ देवते, जगती छन्दः १२।१२।१२।१२

यावां यज्ञैः शशमानो हृदा श्रति

कविर्होता यजति मन्मसा धनः । छ-

पाहतं गच्छथो वीथो अथ वर मच्छागि-

रः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

यः

वाम्

यज्ञैः

शशमानः

यः

युवाभ्याम्

यज्ञैः

श्रयतमानः

जो

आप दोनों के
द्वारे

यज्ञों द्वारा

श्रयतन करता

हुआ

क्र०सं०१ सू०१५१ सं०७ (४०८०)

५

दाशति

कविः

होता

यजति

[मन्मसा

[धनः

उप

अह

तम्

गच्छथः

वीथः

खलु

ददाति

कविः

(दवानाम्)
आह्वाता

पूजयति

स्तोत्रसाधकः

प्रति

इति प्रसिद्धम्

तम्

गच्छथः

कामयेथे

सचमुच

देता है

कवि

(देवताओं के)
बुलाने वाला

पूजन करता है

स्तोत्र रचने वाला

की ओर

यह प्रसिद्ध है

उस को

जाते हो

कामना करते हो

(४०८१) ऋ० मं०१ सू०१५१ मं०७

अ॒ध॒वरम्	य॒ज्ञम्	ज्ञ॒य को
अ॒च॒क्षुः	अ॒भिलक्ष॑य	लक्ष॑य र॒ख॒कर
गिरः	स्तु॒तीः	स्तु॒तियों को
सु॒ऽम॒तिम्	शो॒भना॑भक्तिम्	सु॒न्दर भक्ति को
ग॒न्त॒म्	आ॒गच्छ॑तम्	आओ
अ॒स्म॒ऽयू॒०	अ॒स्मान्का॑म॒- य॒मानौ	हम को चाहते हुए

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रावरुणौ ! योयज्ञैः प्रयतमानः सन् युवाभ्यां
खलु ददाति, (यश्च) (देवानाम्-) आह्वाता स्तोत्रसाध-
कः कविः (युवाम्) पूजयति (युवाम्) तं प्राप्नुयः,
तस्य यज्ञम् (च) कामयेथे, (इदं शौ युवाम्) अस्मान्का-
मयमानौ (सन्तौ) (अस्मत्-) स्तुतीः शोभनांभक्तिम्
(च) अभिलक्ष्य आगच्छतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र और वरुण ! जो स्तुति करता हुआ सत्तमूच
यज्ञों द्वारा आप के लिये देता है, और जो (देवताओं का)

संस्कृत-शब्द-कोश (४०६२)

बुलाने वाला स्तोत्र रचने वाला कवि (आप को)
पूजता है, आप दोनों उसको प्राप्त होते हैं (और)
उसके यज्ञ की कामना करते हैं, (ऐसे आप) हमको
चाहते हुए (इमारा) स्तुतियों और सुन्दर भक्ति को
लक्ष्य रख कर आओ ॥ ७ ॥

मित्रावरुणौ देवते, जगती छन्दः १२।१२।१२।१२

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत

कृतावानामनसो न प्रयुक्तिषु । भर-

न्ति वां मन्मना संयता गिरोऽहप्यता

मनसा रेवदाश्रये ॥ ८ ॥

यवास्

युवाम्

आप दोनों को

यज्ञैः

यज्ञैः

यज्ञों द्वारा

प्रथमा

प्रथमों

पहलों को

(४०८१) क्र०सं०१सू०१५१ सं०८

गोभिः	पयोभिः	दुग्ध से
अञ्जते	अर्चयन्ति (भा० को०)	पूजते हैं
ऋतऽवाना	हे नियमवन्तों !	हे नियम वालों !
मनसः	मनसः	मन के
न	इव	मानो
प्रयुक्तिषु	प्रेरणैः (विभक्तिव्यत्ययः)	प्रेरणाओं से
भरन्ति	आहरन्ति (आङ्गोपः)	लाते हैं
वाम्	युवाभ्याम्	आप दोनों के लिये
मन्मना	ध्यानेन	ध्यान से
सम्ऽयता	निश्चलेन	निश्चल से
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को

क्र०मं०१ सू०१५१मं०८ (४०८४)

अदृश्यता	दर्परहितेन	गर्व रहित से
मनसा	मनसा	मन से
रेवत्	धनवद्यथास्यात्तथा	धनवान की न्याई
आश्राये०	प्राप्नुथः	प्राप्त होते हो

संस्कृतार्थः ।

हे नियमवन्तौ ! (मित्रावरुणौ) ! (मनुष्याः) मनसः प्रेरणैरिव प्रथमौ युवां पयोभिर्यज्ञैः (च) अर्चयन्ति, ते युवाभ्यां निश्चलेन ध्यानेन स्तुती आहरन्ति (युवाञ्च) दर्परहितेन मनसा धनिनौ (इव तान्) प्राप्नुथः ॥८॥

भावार्थः ।

हे नियम वाले (मित्र और वरुण !) (मनुष्य) मानो मनकी प्रेरणाओं से प्रधान आप दोनों को दुग्ध और यज्ञों द्वारा पूजते हैं, वे निश्चल ध्यान से आप के लिये स्तुतियों को लाते हैं (और आप) गर्व से रहित मनसे धनवानों की (न्याई उन को) प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥

(४०८५) अ. क्र. ० सं. १६०. १५१ सं. ९

मित्रावरुणोदेवते, जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

रेवद्वयोदधायेरेवदाश्नायेनरा

मायाभिरितऊतिमाहिनिम् । नवां

द्यावोऽहभिर्नोतसिन्धवो नदेवत्वम्

प्रणयोनानशुर्मघम् ॥ ८ ॥

रेवत्

धनवत्

धन सहित को

वयः

बलम्

बलको

दधाये०

धारयथः

धारण करते हो

रेवत्

धनवत्

धन सहित को

आश्नाये०

प्राप्नुथः

प्राप्त करते हो

नरा

हे नरौ !

हे नरो

क्र०सं०१सू०१५१सं० ९ (४०८६)

मा॒याभिः॑	मनो॑बलैः	मन॑के बलों से
द्व॒तऽऊ॑ति	रक्षो॑पेतम्	रक्षा॑ से युक्त को
मा॒हि॒नम्	मह॑त्त्वम्	मह॑त्त्व को
न	न	नहीं
वा॒म्	यु॒वयोः	तुम्हारा
द्या॒वः	दि॒वसाः	दिन
अ॒हऽभिः॑	अ॒होभिः॑	दिनों के साथ
न	न	नहीं
उ॒त	अ॒पिच	और भी
सि॒न्ध॒वः	न॒द्यः	नदियाँ
न	न	नहीं
दे॒वऽह॑वम्	दे॒वभा॑वम्	दे॒वभा॑व को

(४०८७) क्र०मं०१ ख०१५१ मं०९

पणयः	पणयः	पणि
न	न	नहीं
प्राप्तः	प्राप्तः	प्राप्त हुए हैं
मघम्	धनम्	धन को

संस्कृतार्थः ।

हे नरो ! (युवाम्) धनवद्वलधारयथः, (युवाम्) मनोबलै रक्षोपेतं महत्त्वं प्राप्नुथः, न अहोभिर्युक्ताः दिवसाः न नद्यः न पणयश्चापि युवयोर्देवत्वं धनम् (च) प्रापुः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे नरो ! आप धनसहित बल के धारण करने वाले हो, आप मन के बलों द्वारा रक्षा से युक्त महत्त्व को पहुंचते हो, न दिनों के साथ जुड़े हुए दिन न नदियाँ और न पणि आप के देवपन को (और) धन को पहुंचे हैं ॥ ९ ॥

इत्येकपञ्चाशदधिकशततमं सूक्त ।

क्र० सं० १ सू० १५२

(४०८८)

ऋ० सं० १ सू० १५२

मित्रावरुणौ देवते, दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः ।

१ । 'बुवंवस्त्राणि'-इत्येषा मैत्रावरुणे पशौ वपायायाज्या (आ० ३।८।१)

समावर्तने नववस्त्रधारणेऽपि विनियुक्ता (आ० गृ० सू० ३।८।१)

७ । 'आवांमित्रावरुणा'-इत्येषा मैत्रावरुणपशौ वपायाः अनुवक्ष्या

(आ० ३।८।१)

सूक्तका भावार्थः ।

हे मित्र और वरुण ! आप स्थूलजगतरूपी मोटे वस्त्रों को पहनते हैं, आप के संकल्प और आप की रचनाएँ छिद्र रहित हैं, आप सब प्रकार के झूठ को उल्लंघन करके सत्य के साथ रहते हैं ॥ १ ॥ इनके महत्त्व को कोई नहीं जानता, ऋषि का उच्चारण किया हुआ वह भयानक बचन सत्य है कि देवभक्त अपने तुल्यबल वाले भक्तिशून्य शत्रु को मारता है और देवनिन्दक पहले नष्ट होते हैं ॥ २ ॥ बिना पैरों वाली उषा पैरों वाले जीवों से आगे चलती है, हे मित्र और वरुण ! आप के इस कर्म को कौन जानता है कि गर्भ में रहने वाला बालक (अर्थात् उत्पन्न होने से पहले सूर्य) इस जगत के मार को उठाता है सत्य की रक्षा करता है और झूठ को डबोता है ॥ ३ ॥ बिखरे हुए और दूरतक फैले हुए ज्वालारूप वस्त्रों को पहनने वाले, मित्र और वरुण के प्रिय स्थान और उषाओं के जीर्ण करने वाले सूर्य को हम सदा आगे बढ़ता हुआ ही देखते हैं, पीछे हटता हुआ कदापि नहीं ॥ ४ ॥ बिना घोड़े और बिना रासों वाला सवार उत्पन्न होते ही हिनहिनाता हुआ ऊंची शिखर शिखर

(४०८९) क्र०अं०१ सू०१५२ मं०१ ५

दौड़ता है, अपरिपक्व बुद्धि वाले युवा पुरुष जब चकित होकर वरुण और मित्र के स्थान रूप सूर्य की स्तुति करते हैं तब वे वास्तव में चित्त में न आने वाले ब्रह्म को सेवन करते हैं ॥ ५ ॥ हे मित्र और वरुण ! भजन के प्रिय मुझ ममता के पुत्र को पालने वाली गोमों के स्तनों में दूध बढे, जो धर्म के मार्गों को जानने वाला विद्वान है वह भिक्षा से निर्वाह करे और वाणी-द्वारा मनुष्यों की सेवा करता हुआ पृथिवी की रक्षा करे ॥ ६ ॥ हे मित्र और वरुण ! मैं नमस्कार और हविद्वारा अपने यज्ञ की आर आप को उन्मुख करूं, हमारी स्तुति युद्ध में जिताने वाली हो, और दुःखां के पार लंग्राने वाली द्यौ की वृष्टि हम पर हो ॥ ७ ॥

मित्रावरुणौदेवते, त्रिष्टुब्छन्दः । ११११११११११

युवंवस्त्राणिपीवसावसाथे युवो-
रच्छिद्रामन्तवोहसर्गाः । अवाति-
रतमनृतानि विप्रव चृतेन मित्राव-
रुणासचेथे ॥ १ ॥

युवम्

वस्त्राणि

युवाम्

वस्त्राणि

आप दोनों

वस्त्रों को

क्र०सं०१सू०१५२सं०१ (४०९०)

पीवसा	स्थूलानि	स्थूलों को
वसाथे०	परिधस्थः	पहनते हो
युवोः	युवयोः	आप दोनों के
अच्छिद्राः	छिद्ररहिताः	छिद्र से रहित
मन्तवः	मनोरथाः	मनोरथ
ह	खलु	सचमुच
सर्गाः	सृष्टयः	सृष्टियाँ
अव	अव +	-
अतिरतम्	अव+अतिरतम्, उल्लङ्घयथः (लङर्थे लुङ्)	उल्लाघते हो
अनृतानि	अनृतानि	झूठ को
विश्वानि	सर्वाणि	सब कों

(४०९१) क्र०सं० १२०१५२ सं० २

ऋतेन ^१	सत्येन	सत्य से
मित्रावरुणा	हे मित्रावरुणौ !	हे मित्र और वरुण
सचेथे	सङ्गच्छेथे	साथ रहते हो

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रावरुणौ ! युवां स्थूलानि वस्त्राणि परि-
धत्थः, युवयोर्मनोरथाः सृष्टयः(च) छिद्ररहिताः खलु
(सन्ति) (युवाम्) सर्वाणि अनृतानि उल्लङ्घयथः,
सत्येन (च) सङ्गच्छेथे ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र और वरुण ! आप दोनों स्थूल वस्त्रों को
पहनते हो, सचमुच आप के मनोरथ (और)
सृष्टियाँ छिद्र से रहित (हैं) आप सब प्रकार के
झूठ को उल्लाँघ कर सत्य के साथ रहते हो ॥ १ ॥

मित्रावरुणौ देवते, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

एतच्च न त्वो विचिकेत देषां स-
त्यो मन्त्रः कविशस्त ऋचावान् । चिर-

अ० सं० १ पृ० १५२ सं० २ (४०९२)

श्रिं॑ ह॒न्ति॒ च॒तु॒र॒श्चि॒र॒ग्रो॒ दे॒व॒नि॒दो॒ह
प्र॒थ॒मा॒द्य॒ज॒र्य॒न् ॥ २ ॥

ए॒तत्

ए॒तत्

इ॒स को

च॒न

अ॒पि॒न

न भी

ह॒वः

ए॒कः

ए॒क

वि

वि+

-

चि॒के॒त॒त्

वि + चि॒के॒त॒त्,
वि॒जा॒ना॒ति

जा॒न॒ता है

ए॒षाम्

ए॒षाम्
(बहुवचनं पू॒जार्थम्)

इ॒न के

स॒त्यः

स॒त्यम्

स॒त्त॒वा

म॒न्त्रः

वा॒क्यम्

वा॒क्य

(४०९३) क्र०मं०१६०१५२मं०२

कविऽशस्तः	ऋषिणा उच्चा- रितम्	ऋषि से उच्चा- रण किया हुआ
चट्टघावान्	प्रचण्डम् (मा०को०)	वेग वाला
त्रिऽचश्रिम्	अश्रित्रयोपेतम्	तीन नोंक वाले कों
हन्ति	हिनस्ति	मारता है
चतुऽचश्रिः	अश्रिचतुष्टयो- पेतः	चार नोक वाला
उग्रः	उग्रः	भयानक
देवऽनिदः	देवनिन्दकाः	देवताओं की निंदा करने वाले
ह	खलु	सचमुच
प्रथमाः	प्रथमम्	पहिले
अजर्यन्	जीर्णाभवन्ति (लडर्येंलड्)	नष्ट होते हैं

संस्कृतार्थः ।

एषामेतत् (महत्त्वम्) एकोऽपि न विजानाति,

क्र०सं०१ क्र०१५२ सं०३ (४०९४)

ऋषिणा उच्चारितम् (वक्ष्यमाणम्) प्रचण्डं वाक्यं
सत्यम् (अस्ति यत्) अश्रिचतुष्टयोपेतउग्रः (योद्धा)
त्रिरश्रिं (योद्धारम्) हिनस्ति, देवनिन्दकाः (च) प्रथमं
खलु जीर्णाभवन्ति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

इनके इस (महत्त्व को) एक भी नहीं जानता है,
ऋषि से उच्चारण किया हुआ (यह) भयानक वाक्य
सत्य (है) कि चार नोक के शस्त्र वाला तीन नोक
वाले को मारता है (और) देवताओं की निन्दा करने
वाले सचमुच पहले नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

मित्रावरुणौ देवते, त्रिष्टुच्छन्दः । १११११११११

अपादेति प्रथमा पद्मतीनां कस्त-
दां मित्रावरुणा चिकेत । गर्भो भारं भ-
रत्या चिदस्य ऋतं पिपत्यनतं नि-
तारीत् ॥ ३ ॥

(४०९५) क्र०मं० १६०१५२ मं० ३

अपात्	पादरहिता	बिन पैरों वाली
एत	गच्छति	जाती है
प्रथमा	प्रथम	आगे
{ पत्स्व त नाम्	पद्मतीनाम्	पैरों वालियों के
कः	कः	कौन
तत्	तत्	उसको
वाम्	युवयोः	तुम दोनों के
मित्रावरुणा	हे मित्रावरुणौ !	हे मित्र और वरुण
आ	आ +	—
चिकेत	आ + चिकेत, विजानाति	जानता है

अ०मं०१सू०१५२ मं०३ (४०९६

गर्भः	गर्भः	गर्भ में होने वाला
भारम्	भारम्	बोझ को
भरति	धारयति	उठाता है
आ	खलु	सचमुच
चित्	एव	ही
अस्य	अस्य	इस के
चतम्	सत्यम्	सत्य को
पिपति	पालयति	पालता है
अनृतम्	अनृतम्	अनृत को
नि	नि+	-
तारीत्	नि+तारीत्, निमज्जयति	डबोता है

(४०९७) क्र०मं०१ सू०१५२ सं०४

संस्कृतार्थः ।

पादरहिता(उषाः) पद्मतीनाम् (प्रजानाम्) प्रथम-
गामिनी भवति, हे मित्रावरुणौ ! युवयोः तत् (कर्म)
कोविजानाति, अस्य (जगत्) भारं गर्भः खलु धार-
यति, सस्यं पालयति, अनृतम् (च) निपाज्जयति ॥ ३ ॥

भावार्थः ।

बिना पैरों वाली (उषा) पैरों वाली (प्रजाओं) के
आगे जाती है हे मित्र और वरुण ! आपके उस (कर्म)
को कौन जानता है, स्वप्नमुच गर्भ में रहने वाला
बालक इस (जगत्) के भार को उठाता है, सत्य को
पालता है (और) अनृत को डबोता है ॥ ३ ॥

मित्रावरुणौदेवते त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

प्रयन्तमित्परिजारं कनीनां

पश्यामसिनोपनिपद्यमानम् । अनव-

पृष्णाविततावसानम् प्रियं मित्रस्य

वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥

क्र०सं०१ सू०१५२सं०४ (४०९८)

प्रऽयन्तम्	प्रगच्छन्तम्	आगे बढ़ते हुए को
हृत्	एव	ही
परि	परि +	-
जारम्	जरितारम्	क्षीण करनेवाले को
कनीनाम्	कन्यास्थानीया- नाम् (उषसाम्)	उषाओं के
पश्यामसि	परि + पश्यामः (मसङ्काराणम्)	हम देखते हैं
न	न	नहीं
{ उपऽनिप- द्यमानम्	अपसर्पन्त	पीछे हटते हुए को
अनवऽपूरणा	विश्लिष्टानि	विखरे हुआं को
विऽतता	विततानि	फैले हुआं को

(४०९९) क्र०मं०१ सू०१५२ मं०४

वसानम्	परिदधानम्	पहनते हुए को
प्रियम्	प्रियम्	प्रिय को
मित्रस्य	मित्रस्य	मित्र के
वरुणस्य	वरुणस्य	वरुण के
धाम	स्थानम्	स्थान को

संस्कृतार्थः ।

(वयम्) विश्लिष्टानि विततानि (च तेजांसि)
 परिदधानं मित्रस्य वरुणस्य (च) प्रियं स्थानं
 उषसांजरितारम् (सूर्यं च) प्रगच्छन्तमेव परिपश्यामः,
 अपसर्पन्तं न (कदापि पश्यामः) ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हम बिखरे हुए (और) फैले हुए (तेजों को)
 पहनने वाले मित्र (और) वरुण के प्रिय स्थान को
 (और) उषाओं के क्षीण करने वाले (सूर्य) को आगे
 बढ़ता हुआ ही देखते हैं पीछे हटता हुआ (कदापि)
 नहीं (देखते) ॥ ४ ॥

(५१०१)

श० सं० १२०१२२

ऊर्ध्वऽसानुः

ऊर्ध्वशिखरः

ऊर्ची शिखर वाला

अचित्तम्

चित्तादिषयम्

चित्तमें न आने
वाले को

ब्रह्म

ब्रह्म

ब्रह्म को

जुजुषुः

सेवन्ते

सेवन करते हैं

युवानः

युवानः

जवान

प्र

प्रकर्षेण

खूब

मित्रे

मित्रे

मित्र में

धाम

स्थानम्

स्थान को

वरुणे

वरुणे

वरुण में

गृणन्तः

स्तुवन्तः

स्तुति करते हुए

संस्कृतार्थः ।

अश्वरहितः प्रमहरहितः (च) अश्वारोहः जातः

क्र०मं०१ सू०१५२ मं०६ (४१०२)

(एव) ऊर्ध्वशिखरः (सन्) हेषमाण उत्पतति, युवानः
मित्रे वरुणे (च) स्थानं स्तुवन्तः चित्ताविषयं ब्रह्म
सेवन्ते ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

बिना घोड़े (और) बिना रासों वाला सवार
उत्पन्न (होते ही) ऊंची शिखर वाला (होकर) हिन
हिनाता हुआ दौड़ता है, जवान (मनुष्य) मित्र (और)
वरुण के स्थान (रूप सूर्य) की स्तुति करते हुए चित्त
में न आने वाले ब्रह्म को सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

मित्रावरुणौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

आधेनवोमामतेयमवन्ती ब्रह्म-

प्रियंप पयन्तस्वस्मिन् धन् । पितवो

भिद्येतवयुनानिविद्वानासाविवास-

न्नदितिमरुष्येत् । ६ ।

आ

अ+

(४१०३) ऋ० १०१ सू० १५२ मं० ६

धेनवः	गावः	गौएँ
मामतेयम्	ममतायाः पुत्रम्	ममता के पुत्र को
अवन्तीः	अवन्त्यः, रक्षन्त्य	रक्षा करती हुई
ब्रह्मऽप्रियम्	स्तुतिशीलम्	भजनप्रिय का
पीपयन्	आ+पीपयन्,	बढ़ें
सस्मिन्	आप्यायन्तु स्वकीये	अपने में
ऊधन्	स्तने	थन में
पितवः	अन्नम् (वे.मणि पण्ठी)	अन्न को
भिक्षेत्	याचेत्	माँगे
वयुनानि	मार्गान्	मार्गों को
विद्वान्	जानन्	जानता हुआ

म०सं०१ स०१५२सं०२ (४१०४)

आसा	आस्येन	मुख से
{ आऽविवा- सन्	परिचरन्	सेवा करता हुआ
अदितिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
उच्येत्	रक्षेत्	रक्षा करे

संस्कृतार्थः ।

(हे मित्रावरुणौ !) गावःस्तुतिशीलं ममनायाः
पुत्रं (माम्) रक्षन्त्यः(सत्यः) स्वकीये स्तने आप्या-
यन्तु (धर्म-)मार्गाणांज्ञाता अन्नं भिक्षेत्, आस्येन
[परिचरन् (च) पृथिवीं रक्षेत् ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

(हे मित्र और वरुण !) गौएँ भजनप्रिय (मुझ)
ममना के पुत्र की रक्षा करती हुई अपने स्तन में बढें
(धर्म-)मार्गों के जानने वाला अन्न की भिक्षा करे,
(और)मुख से सेवा करता हुआ पृथिवी की रक्षा करे ॥ ६ ॥

(४१०५) क्र०मं०१ स०१५२ मं०७

मित्रावरुणौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

आवा॑मित्रावरुणा॑ ह॒व्यजु॑ष्टिं॒ नम॑-

सादे॒वाव॑वसाव॒वृत्या॑म् । अ॒स्माकं॑

ब्र॒ह्म॒पृ॒त॒नासु॑स॒ह्या अ॒स्माकं॑वृ॒ष्टिर्दि॑-

व्यासु॑पा॒रा ॥ ७ ॥

आ	आ	-
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
मित्रावरुणा	हेमित्रावरुणों !	हे मित्र और वरुण
{ ह॒व्यऽ- जु॑ष्टिम् नम॑सा	हव्यसम्बन्धिनी सेवाम् (प्रति) रक्षया सह	हविवाली सेवा की (ओर) रक्षा के साथ

क्र०मं० १२०१५२ तं ०७ (४१०६)

देवौ	हे देवौ !	हे देवताओ
अवसा	अन्नेन	अन्न से
ववृत्याम्	आ+ववृत्याम्, आवतयेयम्	फेरुं
अस्माकम्	अस्माकम्	हमारी
ब्रह्म	स्तुतिः	स्तुति
पृतनासु	सङ्ग्रामेषु	युद्धों में
सह्याः	सह्यःत्, अभिभू- यात् (वचनव्यत्ययः)	दबावे
अस्माकम्	अस्माकम्	हमारी
वृष्टिः	वृष्टिः	वृष्टि
दिव्या	दिव्या	दिव्य
सुऽपारा	सुष्ठुपारयित्री	भली प्रकार पार लंघाने वाली

(४१०७) ऋ०मं०१सू०१५२ मं०७

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रावरुणौ ! देवौ ! (अहम्) युवां रक्षया सह
हव्यसम्बन्धिनीं सेवाम् (प्रति) नमस्कारेण आवर्तये-
यम्, अस्माकं स्तुतिः सङ्ग्रामेषु (शत्रून्) अभिभूयात्,
सुष्ठु पारयित्री दिव्यावृष्टिरस्माकम् (भूयात्) ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र और वरुण देवताओ ! मैं आप को रक्षा
के सहित हवि वाली सेवा की (ओर) नमस्कार के
द्वारा फेरूँ, हमारी स्तुति युद्धों में (शत्रुओं को) दबावे,
(और) भली प्रकार पार लंघाने वाली दिव्य वृष्टि
हमारी हो ॥ ७ ॥

इति द्विपञ्चाशदधिकशततमं सूक्तम् ।

क्र० सं० १ सू० १५३ (४१०८)

ऋ० सं० १ सू० १५३ ।

मित्रावरुणौ देवते, दीर्घतमा ऋषिः ।

विनयोगोलैङ्गिकः ।

सूक्तका भावार्थः ।

हे घी के बरसाने वाले मित्र और वरुण ! यह हम समान चित्त वाले होकर नमस्कारों हवियों और घृत से महान आप को पूजते हैं जो हमारे अध्वर्यु भक्तिसे आपके लिये अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे मित्र और वरुण ! आपकी स्तुति तेज की न्याई प्रेरक है, इसलिये मैं सुन्दर स्तुति करता हुआ आपके पास आता हूँ, हे वीरो ! इसी-लिये यज्ञों में होता आप को घी से सौंचता है और इसीलिये पूजने की इच्छा करता हुआ स्तोता आपकी प्रसन्नता को चाहता है ॥ २ ॥ हे मित्र और वरुण ! ऋत रूप हवि देने वाले मनुष्य के लिये अदिति रूप गौ दूध से फूले, जब वह मनुष्य होता की न्याई हवि देकर यज्ञ में आप की सेवा करता हुआ आपको प्रलम्ब करता है ॥ ३ ॥ हे मित्र और वरुण ! आनन्दित प्रजाओं के बीच में गौएँ और वृष्टि आपकी हवि के लिये दूध और अन्न को बढ़ावें, प्राचीन स्वामी अग्नि हम को यह वर देवें कि आप हमारे अन्न को खावें और हमारी गौओं के दूध को पीव ॥ ४ ॥

मित्रावरुणौ देवते, निचृत्त्रिष्टुप्लन्दः ॥ १० ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

यजामहे वांमहः सजीषा हव्येभि-

मित्रावरुणानमोभिः । घृतैर्घृतस्मृ-

(४१०९) आ०मं०१ सू०१५३मं०१

ध॒य॒द्वा॒म॒स्मे अ॒ध्व॒र्य॒वो॒न॒धो॒ति॒भि॒-
भ॒र॒न्ति॒ । १ ।

य॒जा॒म॒हे	पू॒ज॒या॒मः	हम पू॒ज॒ते हैं
वा॒म्	यु॒वा॒म्	तुमदोनों को
म॒हः	महा॒न्तौ	महानों को
सऽजो॒षाः	समा॒न॒चि॒त्ताः	समा॒न चि॒त्त॒वा॒ले
ह॒व्ये॒भिः	ह॒वि॒र्भिः	ह॒वि॒र्यों से
मि॒त्रा॒व॒रु॒णा	हे मि॒त्रा॒व॒रु॒णौ !	हे मि॒त्र और वरु॒ण
नमः॑ऽभिः	नमस्कारैः	नमस्कारों से
घृ॒तैः	घृ॒तैः	घृ॒तों से

२५०६०

R

क्र० सं० १ सू० १५३ सं० १ (४११०)

घृतऽस्न०	हे घृतस्य स्नाव- यितारौ !	हे घीके बरसाने वालो
अध	अथ	अब
यत्	यत्	जो
वाम्	युवाभ्याम्	तुम्हारे लिये
अस्मे०	अस्माकम्	हमारे
अध्वर्यवः	अध्वर्यवः	अध्वर्यु लोग
न	(पूरणः)	-
धीतिऽभिः	भक्तिभिः	भक्तियों से
भरन्ति	अर्पयन्ति	अर्पण करते हैं

संस्कृतार्थः ।

हे घृतस्य स्नाययितारौ ! मित्रावरुणौ ! समान-
चित्ताः (वयम्) हविर्भिर्नमस्कारैर्धृतैः (च) महान्तौ युवां

(४१११) क्र०मं०१सू०१५३मं०२

पूजयामः, इदानीं यदस्माकमध्वर्यवो युवयोरर्थं भक्ति-
भिरर्पयन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे घीके वरसाने वाले मित्र और वरुण ! समान
चित्त वाले हम हवियों नमस्कारों (और) वृत्तों से महाब
आप को पूजते हैं जो अब हमारे अध्वर्यु लोग भक्ति
के साथ आपके लिये अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

मित्रावरुणौ देवते, निचृत्त्रिष्टुपूछन्दः ॥ १०११११११११

प्रस्तुतिर्वाधामनप्रयुक्ति रयामि

मित्रावरुणासुवृत्तिः । अनक्तियद्वां

विदथेपुहोता सुम्नंवांसूरिर्ह्यप्रणावि-

यक्षन् । २ ।

प्रस्तुतिः

प्रकृष्टास्तुतिः

उत्तमस्तुति

वाम्

युवयोः

तुम दोनों के

स० म० १ अ० १५३ म० २ (४११२)

धाम	तेजः	तेज
व	इव	की न्याई
प्रद्युक्तिः	प्रेरका	प्रेरण करने वाली
प्रयामि	आगच्छामि (आङ्गोत्थः)	मैं आता हूँ
मित्रावरुणा	हे मित्रावरुणौ !	हे मित्र और वरुण
सुदृष्टिः	शोभनस्तोता	सुन्दर स्तुति करने वाला
अनक्ति	अनक्ति	चुपड़ता है
यत्	यदा	जब
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
विदधेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
होता	होता	होता

(४११३) क्र०मं०१.सू०१५३.पं०२

सु॒न्नम्

वा॒म्

सू॒रिः

वृ॒ष॒णौ

इ॒ष्ट॒मि॒च्छन्

प्रसन्नताम्

युवयोः

स्तोता

हे वीरौ !

यष्टुमिच्छन्

प्रसन्नता को

तुम दोनों की

स्तोता

हे वीरो

पूजने की इच्छा करता हुआ

संस्कृतार्थः ।

हे वीरौ ! मित्रावरुणौ ! युवयोः प्रकृष्टास्तुतिः तेज-
इव प्रेरका (अस्ति) (अतोऽहम्) शोभनस्तोता (भूत्वा)
आगच्छामि, यद् यज्ञेषु होता युवाम् अनक्ति स्तोता (च)
घष्टुमिच्छन् युवयोः प्रसन्नताम् (आकाङ्क्षति) ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे वीर मित्र और वरुण ! आपकी उत्तम स्तुति
तेज की नाई प्रेरक (है) इसलिये मैं सुन्दर स्तुति
करता हुआ आता हूँ, जो यज्ञों में होता आपको चुपड़ता
है (और) स्तोता पूजने की इच्छा करता हुआ आप की
प्रसन्नता को चाहता है ॥ २ ॥

क्र०मं०१ सू०१५३मं०३ (४११४)

मित्रावरुणौदेवते, त्रिष्टुप् छन्दः । ११११११११११

पीपाय॑ धेनु॑रदि॑तिऋ॑ताय॑ जना॑-
यमित्रावरुणा॑हविर्दे॑ । हि॒नोति॒य-
द्वा॑वि॒दये॑सपर्य॑न्तसरा॒तह॑व्योमा-
नु॒षो॒नहो॑ता ॥ ३ ॥

पीपाय॑	अप्यायताम् (प्रार्थनायां लिटिषो भाषा)	बढ़े
धेनुः॑	गौः	गौ
अदि॑तिः	अदितिरूपा	अदितिरूप
ऋ॒ताय॑	ऋताय	ऋत के लिये
जना॑य	मनुष्याय	मनुष्य के लिये
मि॒त्रा॒व॒रु॒णा	हे मित्रावरुणौ !	हे मित्र और वरुण

(४११५) क्र०सं०१ अ०१५३३०३

हविः॑ऽदे	हविर्दात्रे (विचिप्रत्यये सति मत्वा- दाकारदोषः)	हवि देने वाले के लिये
हिनोति॑	प्रीणयति	प्रसन्न करता है
यत्	यदा	जब
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
विदथे॑	यजे	यज्ञ में
सपर्यन्	परिचरन्	सेवा करता हुआ
सः	सः	वह
रातः॑हव्यः	दत्तहविष्कः	हवि के देने वाला
मानुषः॑	मानुषः	मनुष्य
न	इव	की न्याई
होता॑	होता	होता

क्र०सं० १ अ० १५३ सं० ४ (४११६)

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रावरुणौ ! अदितिरूपागौ ऋतरूपाय हवि-
र्पात्रे मनुष्याय आप्यायतां यदा सः (मनुष्यः) दत्त-
हविष्कः (सन्) मानुषो होतेव यजे परिचरन् (सन्)
पुष्पां प्रीणयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्र और वरुण ! अदितिरूपा गौ ऋतरूप
हवि देने वाले मनुष्य के लिये बड़े जब वह (मनुष्य)
हवि देकर मनुष्यहोता की न्याई सेवा करता हुआ
आपको प्रसन्न करता है ॥ ३ ॥

मित्रावरुणोदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

उ॒तवा॑वि॒क्षुम॒द्यास्व॒न्धो॑ गाव॒-
प्राप॑श्चपीपयन्तदे॒वीः । उ॒तोनी॑
अ॒स्यपू॒र्व्यःप॒तिर्द॒न् वी॒तंप्रा॒तंपय॑स-
उ॒स्त्रिया॑याः ॥ ४ ॥

(४११७) म०म०१ सू०१५१ व०४

उ॒त	अ॒पि॒च	औ॒र भा
वा॒म्	यु॒वा॒भ्याम्	तुम दोनों के लि॒खें
वि॒क्षु	प्र॒जा॒सु	प्रजाओं में
म॒द्या॒सु	ह॒र्ष॒यु॒क्ता॒सु	हर्ष यु॒क्तों में
अ॒न्धः	अ॒न्नम्	अन्न
गा॒वः	गा॒वः	गौ॒एँ
आ॒पः	आ॒पः	जल
च	च	औ॒र
पी॒प॒य॒न्त॒	आ॒प्या॒य॒न्तु	ब॒ढ़ा॒वें
दे॒वीः	दे॒व्यः	दे॒वि॒याँ
उ॒तो०	अ॒पि॒च	औ॒र भी

अ०श्री०१ न०१५३म०४ (४११८)

नः	अस्माकम्	हम को
अस्य	एतद् (द्वितायार्थे षष्ठी)	इस को
पूर्वः	पुरातनः	प्राचीन
पतिः	स्वामी	स्वामी
दन्	ददातु	देवे
वीतम्	भक्षयतम्	खाओ
पातम्	पिबतम्	पीओ
पयसः	पयः (कर्मणि षष्ठी)	दूध को
उस्त्रियायाः	गोः	गौ के

संस्कृतार्थः ।

अपिच हर्षयुक्तासु प्रजासु गावो देव्य आपश्च
युवयोरथ हवीरूपमन्नं वर्धयन्तु, अपिच पुरातनः

(४११९) क्र०मं०१ ख०१५३ मं०४

मी अस्मान् एतद् ददातु (यद्युवांहविः) भक्षयतं
गोदुग्धम् (च) पिबतम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

और हर्ष युक्त प्रजाओंमें गौएँ और जल देवियाँ
आपके लिये हवि रूप अन्न को बढ़ावें, और प्राचीन
स्वामी हम को यह (वर) देवें, (कि) आप (हविको)
खावें (और) गौ के दूध को पीवें ॥ ४ ॥

इति त्रिपञ्चाशदुत्तरशततमं सप्तम् ।

क्र०मं० १ सू० १५४ (४१२०)

ऋ०मं० १ सू० १५४

विष्णुर्देवता, दीर्घतमाश्रुषिः ।

विनियोगः—

- १-६ । एतत्सूक्तम् आभिलष्यडहेपुत्रकथेषु तृतीयसवने स्तोम-
वृद्धौ अच्छावाकस्य स्तोमातिशंसनार्थम् (आ० ७, १४)
- १ । 'तृतीयसवने सोमातिरेके विष्णोर्नुकमितियाज्या (आ० ६, ७, ६)
- १ । 'विष्णोर्नुकं—' इत्येषा आग्निमास्येशसूत्रे विनियुक्ता,
(आ० ५, २०, ६)
- २ । 'प्रतद्विष्णुः' इत्येषा राजपेये स्तोत्रियानुरूपः (आ० ९, ११, ११)
- २ । 'प्रतद्विष्णुः—' सोमातिरेके स्तोत्रियानुरूपः (आ० ६, ७, ८)
- ५ । 'तदस्य—' इत्येषा आतिथ्यायां प्रधानस्य याज्या (आ० ४, ५, ३)

सूक्त का भावार्थ ।

अब मैं विष्णु के धीरकर्मों का वर्णन करता हूँ जिस ने तीन कदम रख कर पृथिवी आदि लोकों को नाप लिया है और जिस ने ऊपर के आकाश को थांभा हुआ है ॥ १ ॥ इसी पराक्रम के कारण पर्वत पर रहने वाले भयानक जंगली पशु की न्याईं विष्णु की स्तुति की जाती है, जिस के तीन चौड़े कदमों में सारे भुवन निवास करते हैं ॥ २ ॥ उस पर्वत पर रहने वाले नरपशु विष्णु के लिये हमारा स्तोत्र बलरूप हो, जिस भकेले ने तीन ही कदमों से इस लंबे चौड़े अत्यन्त विस्तृत आकाश को नाप लिया है ॥ ३ ॥

(४१२१) प्रा०गं०१ स्०१५४मं०१

जिसके तीनों स्थान कभी न छीजने वाले मिठास से भरे हुए स्वतंत्र होकर मोड़ करते हैं, जिन धकेले ने समुद्र स्थल और वायु मण्डल ऐसी तीन तह वाली पृथिवी को द्यौ की और सब भूवनों को धारण किया हुआ है ॥ ४ ॥ मैं इस चौड़े, कदमों वाले विष्णु के प्रिय स्थान को प्राप्त होऊँ, जहाँ देवभक्त मोड़ करते हैं, इस में कोई सन्देह नहीं कि वही हमारा बन्धु है और उसके परम स्थान में आनन्द का स्रोत है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! और विष्णु ! हम आपके उन स्थानों को जाने की कामना करते हैं जहाँ नक्षत्ररूपी बहुत सीगों वाली चपल गोपें रहती हैं, उस घोर का उत्तम स्थान बहुत चमकता हुआ यहाँ से दीख पड़ता है ॥ ६ ॥

विष्णुर्देवता, निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ॥ १० ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११

विष्णोर्नुकवीर्याणिप्रबोचं यः

पार्थिवानिविममेरजांसिः योऽशकभा-

यदुत्तरं सधस्थं विचक्रामाणस्त्रेधो-

रुगायः ॥ १ ॥

विष्णोः

विष्णोः

विष्णु के

क०सं०१ ख०१५४सं०१ (४१२२)

नु	इदानीम्	अब
कम्	(पूरणः)	-
वीर्याणि	वीरकर्माणि	वीरकर्मों को
प्र	प्र+	-
वोचम्	प्र+वोचम्. प्रब्र- वीमि	कथन करता हूं
यः	यः	जिस ने
पार्थिवानि	पृथिवीसम्बन्धिनः	पृथिवीसंबन्धियों को
विऽममे	मापितवान्	मापा
रजांसि	लोकान्	लोकों को
यः	यः	जिस ने
अस्कभायत्	स्तम्भितवान्,	थाँभा

(४१२३) क्र०सं०१ पृ०१५४ पं०१

उत्तरम्	उत्तरभाविनम्	ऊपर होने वाले को
सधस्थम्	(पृथिव्याः) सह स्थायिनम् (आकाशम्)	आकाश को
विचक्रमाणः	विक्रममाणः	कदम रखता हुआ
त्रेधा	त्रिवारम्	तीनवार
उरुगायः	प्रभूतंगीयमानः (आ०को०)	बहुत स्तुति किया जाता हुआ

संस्कृतार्थः ।

इदानीम् (अहम्) विष्णोर्वीरकर्मणि प्रब्रवीमि
यः प्रभूतंगीयमानः त्रेधा विक्रममाणः (सन्) पृथिवी-
सम्बन्धिनो लोकान् मापितवान्, उत्तरभाविनम्
आकाशम् (च) स्तम्भितवान् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

अब मैं विष्णु के वीरकर्मों को कहता हूँ जिस
बहुत स्तुति किये गए थे तीन बार कदम रख
कर लोकों को मापा (और) ऊपर के आकाश को
थामा ॥ १ ॥

क्र०सं० १८०१५४ सं० २ (४१२४)

विष्णुर्देवता, निचृत्त्रिष्टुच्छन्दः । १०।११।११।११

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न

भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु

त्रिषु विक्रमणोऽवधि क्षियन्ति भुवना-

निविशन्वा । २ ।

प्र	प्र+	-
तत्	तेन (विभक्तेर्लुक्)	उस से
विष्णुः	विष्णः	विष्णु
स्तवते	प्र+स्तवते, प्रक- षेण स्तुयते (कर्मणि क्यत्ययेन शप्)	खूब स्तुति किया जाता है
वीर्येण	वीर्यबलेन	वीर्यबल से

(४१२५) क्र० सं० १ स० १५४ सं०

मृगः	वनपशुः	वन का पशु
न	इव	का न्याई
भीमः	भयानकः	भयानक
कुचरः	(भक्ष्यार्थम्) मन्दगात युक्तः	(शिकार के लिये) मन्द गति वाला
गिरिऽस्थाः	पर्वतस्थायी	पर्वत पर रहने वाला
यस्य	यस्य	जिस के
उरुषु	विस्तीर्णेषु	फैले हुआओं में
त्रिषु	त्रिषु	तीनों में
विऽक्रमणेषु	विक्रमणेषु	कदमों में
{ अधिऽक्षि- यन्ति	निवसन्ति	रहते हैं

कर्णः ११ (७१२१)

भुवमानि	भुवनानि	भुवन
विष्वा	विश्वानि	सर्व

संस्कृतार्थः ।

विष्णुः (भक्ष्यार्थम्) मन्दगतियुक्तोभयानकः
पर्वतस्थायी वनपशुरिव तेन वीर्य-बलेन प्रस्तूयते,
यस्य विस्तीर्णेषु त्रिषु विक्रमणेषु सर्वाणि भुवनानि
निवसन्ति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(शिकार के लिये) मन्दगति वाले पर्वतपर रहने
वाले भयानक जंगली पशु की ग्याई विष्णु उस
वीर्यबल के द्वारा स्तुति किये जाते हैं, जिनके चौड़े
तीन कदमों में सब लोक निवास करते हैं ॥ २ ॥

विष्णुर्देवता, निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । १०।११।११।११

प्रविष्णवैश्वमेतुमन्म गिरिच्छि-

तच्च रगायायवृष्णे । यद्दुददीर्घप्रयतंस

(४१२७) क०गं०१ सु०१५४प्र०३

धस्यमेकोविममेचिभिरित्पदेनिः

॥ ३ ॥

प्र	प्र +	-
विष्णवे	विष्णवे	विष्णु के लिये
शूषम्	बलम्	बल
एतु	प्र+एतु, प्राप्नोतु	प्राप्त हो
मन्म	स्तोत्रम्	स्तोत्र
गिरिऽक्षिते	पर्वतस्थायिने	पर्वत पर रहने वाले के लिये
उरुऽगायाय	प्रभूतं गीताय	बहुत शक्ति किस्से हुए के लिये
वृष्णे	नरपशवे	नरपशु के लिये
यः	यः	जिस ने

क्र०सं०१ सू०१५४सं०३ (४१२८)

इदम्	इदम्	इस को
दीर्घम्	दीर्घम्	लंबे को
प्रत्यतम्	प्रकर्षणविस्तृतम्	अत्यन्त विस्तृत को
सुधस्थम्	आकाशम्	आकाश को
एकः	एकः	अकेला
विममे	मापितवान्	मापा
त्रिभिः	त्रिभिः	तीनों से
इत्	एव	ही
पदेभिः	पादैः	पैरों से

संस्कृतार्थः ।

प्रभूतं गीताय पर्वतस्थायिने नरपशुरुपाय
(च) विष्णवे बलरूपं स्तोत्रं प्राप्नोतु, य एकस्त्रिंभि

(४१२९) क०मं०१ सू०१५४ मं०४

शेवपादैरिदं दीर्घं विस्तृतम् (च) आकाशं मापित-
वान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

बहुत स्तुति किये गए, पर्वत पर रहने वाले
(और) नरपशुरूप विष्णु के लिये स्तोत्ररूप बल
प्राप्त हो, जिस अकेले ने तीन ही पैरों से लंबे (और)
अत्यन्त विस्तृत आकाश को नाप लिया ॥ ३ ॥

विष्णुदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११

यस्य॑त्री॒पूर्णामधु॑नाप॒दान्यक्षी॑-
यमा॑णास्व॒धयाम॑दन्ति । यउ॑चि-
धातु॑पृथि॒वीमु॑तद्यामेको॒दाधार॑भुव-
नानि॒विश्वा॑ । ४ ।

यस्य॑	यस्य	जिस के
त्री॒	त्रीण	तीन

क्र०सं० १ सू० १५४ सं० ४ (४१३०)

प्रणा	पूर्णानि	पूर्ण
मधुना	माधुर्येण	मिठास से
पदानि	स्थानानि	स्थान
अक्षीयमाणा	अक्षीयमाणानि	क्षीण न होने वाले
स्वधया	स्वातन्त्र्येण	स्वतंत्रता से
मदन्ति	माद्यन्ति	मोद करते हैं
यः	यः	जिस ने
ऊम्	(पूर्णः)	-
त्रिधातु	त्रिगुणम्	तिहरी को
पृथिवीम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
उत	च	और

(४१३१) क्र०मं०१ सू०१५४ मं०४

द्याम्	द्याम्	द्यौ को
एकः	एकः	अकेले ने
दाधार	धारितवान्	धारण किया है
भुवनानि	भुवनानि	लोकों को
विष्वा	विश्वानि	सब को

संस्कृतार्थः ।

यस्य (विष्णोः) अक्षीयमाणानि माधुर्येण पूर्णानि
(च) त्रीणिस्थानानि स्वातन्त्र्येण माद्यन्ति, यः
एकस्त्रिगुणापृथिवीं द्यां सर्वाणि भुवनानि (च)
धारितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

जिस (विष्णु) के क्षीण न होने वाले(और) मिठास
से भरे हुए तीन स्थान स्वतन्त्रता से मोद करते हैं,
जिस अकेले ने तिहरी पृथिवी द्यौ (और) सम्पूर्ण
लोक को धारण किया हुआ है ॥ ४ ॥

सं० सं० १ सू० १५४ सं० ५ (४१३२)

विष्णुर्देवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

तदस्य प्रियम् अभिपाथोऽप्यया
नरोयच देवयोमदन्ति । उरुक्रम-
स्य सहिबन्धुरितथा विष्णोः पदे
परमेमध्वउत्सः । ५ ।

तत्	तत्	उस को
अस्य	अस्य	इस के
प्रियम्	प्रियम्	प्यारे को
अभि	अभि +	-
पाथः	स्थानम्	स्थान को
अप्ययाम्	अभि + अभ्याम्, प्राप्नुयाम्	पहुँचूँ

(४१३३) क्र० सं० १ जू० १५४ सं० ५

नरः	मनुष्याः	मनुष्य
यत्र	यत्र	जहाँ
देवऽयवः	देषकामाः	देवताओं को प्यार करने वाले
मदन्ति	मायन्ति	मोद करते हैं
उरुऽक्रमस्य	उरुक्रमस्य	चौड़े कदमों वाले के
सः	सः	वह
हि	एव	ही
बन्धुः	बन्धुः	बान्धव
इत्था	इतिसत्यम्	यह सत्य है
विष्णोः	विष्णोः	विष्णु के
पदे	पदे	पद में

क०मं०१ सू०१५४ मं०५ (४१३४)

परमे	परमे	परम में
मध्वः	माधुर्यस्य	मिठास का
उत्सः	कूपः	कूआ

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) उरुक्रमस्याऽस्यविष्णोस्तत् प्रियं स्थानं
प्राप्नुयां यत्र देवकामामनुष्यामायन्ति, स एव
बन्धुरितिसत्यम्, विष्णोः परमे पदे माधुर्यस्य कूपः
(वर्तते) ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

मैं चौड़े कदमों वाले इस विष्णु के उस प्यारे
स्थान को प्राप्त होऊं जहाँ देवताओं को प्यार करने
वाले मनुष्य सोद करते हैं, वही बन्धु (है) यह सत्य है,
विष्णु के परम पद में मिठास का कूआ (है) ॥ ५ ॥

विष्णुर्देवता, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

तावांवास्तून् युष्मसि गमध्वै

य गावो भूरिशृङ्गा अयासः । पचाह

(४१३५) क्र०मं०१सू०१५४ मं०१

तदुरुगायस्यवृष्णः परमंपदमवभा-
तिभूरि। ६ ।

ता	तानि	उन को
वाम्	युवयोः	तुम दोनों के
वास्तूनि	स्थानानि	स्थानों को
उग्रममि	कामयामहे	हम कामना करते हैं
गमध्वै	गमनाय	जाने के लिये
यत्र	यत्र	जहाँ
गावः	गावः	गौँएँ
भूरिऽशृङ्गाः	बहुशृङ्गाः	बहुत सींगों वाली

क्र०सं०१ सू०१५४ सं०६ (४१३६)

अयासः	चपलाः (आ०को०)	चपल
अत्र	अत्र	यहां
अह	खलु	सचमुच
तत्	तत्	वह
उरुऽगायस्य	प्रभूतं गीतस्य	बहुत स्तुति किये हुए का
वृष्णः	वीरस्य	बीर का
परमम्	उच्चम्	उच्च
पदम्	पदम्	पद
अव	अव +	-
भाति	अव+भाति, प्रकाशते	चमकता है
भूवि	प्रभूतम्	बहुत !

(४१३७) अ०मं०१ सू०१५४ मं०६

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्राविष्णु ! (वयम्) युवयोः तानि स्थानानि
गमनाय कामयामहे, यत्र बहुशृङ्गाः चाला गावः
(सन्ति) अत्र खलु तस्य बहुस्तुतस्य वीरस्य उच्चं प !
प्रभूतं प्रकाशते ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र और विष्णु ! हम आपके उन स्थानों को
प्राप्त होने के लिये कामना करते हैं जहाँ बहुत सींगों
वाली, चपल गौएँ (हैं) सचमुच यहाँ बहुत स्तुति
किये गए वीर का उच्च पद खूब चमकता है ॥ ६ ॥

इति चतुःपञ्चाशदधिकशततमं सूक्तम् ।

म०म०१सू०१५५

(४१३८)

अ०म० १ सू० १५५

आद्यस्यतृचस्य-इन्द्राविष्णुदेवते,
शिष्टाणां विष्णुदेवता, दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः--

१-१ । एतत्सूक्तम् आभिप्लविकेषु उषथ्येषु रतोमातिशंसने विनि-
युक्तम् (आ०७।१।४)

२ । 'स्वेषमित्या-' इत्येषा सोमातिरेके तृतीयसप्तनेवैकल्पि-
कीयान्या च (आ०६।७।९)

सूक्तका भावार्थ ।

हे मनुष्यो ! स्तुति को कामना करने वाले महान और शूर-
वीर इन्द्र और विष्णु के लिये अपने रक्षक सोम को तैयार करो,
जो धोखे में न माने वाले पर्दतों के शिखरों पर सवार हुआ की
भ्याई आकाश में विराजमान हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र और विष्णु ! कर्म
के मालिक आप दोनों को सोम को पीने वाला भक्त प्रकाश के
द्विये इकट्ठे रखता है, जो आप मनुष्य की ओर लक्ष्य किये हुए
कुशानु के तीर से भक्त की रक्षा करते हो ॥ २ ॥ वे सोम का
आहुतियां विष्णु के बल को बढ़ाती हैं, और वह उस बल को भोगने
और वीर कर्मों के लिये द्यौ और पृथिवी को प्रदान करता है,
वही द्यौ का पुत्र नीचे रहने वाले अग्नि और प्रकाशमान द्यौ में
रहने वाले उत्तम तीसरे सूर्यनाम को धारण करता है ॥ ३ ॥ इस

* कुशानु वह गन्धर्व है जो आकाश में सोम की रक्षा करता
है और जिसने सोम को लेकर उबती हुई गायत्री की पांखों को
सीर से काट दिया था ।

(४११९) क्र०मं०१७०१५५मं०१७

स्वामी, रक्षक वाग्म्य रहित धीर विष्णु के उस उस बल की हम स्तुति करते हैं, जिसने स्तुति योग्य जीवन के लिये तीन चौड़े कदमों से पृथिवी आदि लोकों को उल्लांघा है ॥ ४ ॥ ऊपर से ज्योति को देखने वाले विष्णु के दो कदमों को जानने के लिये मनुष्य की प्राप्ति है, इस के तीखरे कदम को पहुँचने का कोई साहस नहीं कर सकता, पांखों से युक्त आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ जो कुमारभयस्या से रहित होने पर भी युवा है और जो बड़े शरीर वाला है ऐसा विष्णु चार क्रतुओं को जिनके नब्बे नब्बे दिन रूपी भरे हैं गोल पहिये की न्याई घुमाता है, वह स्तोत्राओं से खोजा जाकर बुलाने से आकर प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

इन्द्राविष्णुदेवते, निचृजगतीछन्दः ११११२१२१२२

प्रवःपान्तमन्धसोधियायत

महेशूरायविष्णवेचार्चत । यासा-

नुनिपर्वतानामदाभ्या महस्तस्थ-

तुरर्वतेवसाधुना । १ ।

प्र

प्र+

-

वः

युष्मान्

तुमको

सं० सं० १४०१५५ सं० १ (४१४०)

पान्तम्	रक्षन्तम्	रक्षा करते हुए क.
अन्धसः	अन्नम् (कर्मणिषण्ठी)	अन्न को
धियाऽयते	स्तुतीरिच्छते	स्तुतियों की का- मनावाले के लिये
महे	महते	महान के लिये
शूराय	शूराय	शूरवीर के लिये
विष्णवे	विष्णवे	विष्णु के लिये
च	च	और
प्रचर्त	प्र+अर्चत, सम्पादयत	तैयार करो
या	यौ	जो दोनों
सानुनि	शिखरे	शिखर, में
पर्वतानाम्	पर्वतानाम्	पर्वतों के

(४१४१) ऋ० सं० १ सू० १५५ सं० १

अ॒दा॒भ्या	अद॒भनी॒यौ	न ठगे जाने वाले
म॒हः	उ॒च्चम्	उंचे
त॒स्थतुः	स्थि॒तव॒न्तौ॒स्तः	ठैरे हुए हैं
प॒र्व॒ताऽ॒व	अश्वे॒नेव	घोड़े से जैसे
सा॒धुना॑	सु॒न्दरेण	सुन्दर से

संस्कृतार्थः ।

(हे मनुष्याः !) युष्मान् रक्षन्तम् (सोमरूपम्)
 अन्नं स्तुतीःकामयमानाय महते शूराय (इन्द्राय)
 विष्णवे च सम्पादयत, अदम्भनीयौ यौ सुन्दरेण
 अश्वेनेव पर्वतानां शिखरे उच्चं स्थितवन्तौस्तः॥१॥

भावार्थः ।

(हे मनुष्यो !) तुम्हारी रक्षा करने वाले (सोम-
 रूप) अन्नको स्तुतियों की कामनावाले महान् शू-
 रवीर (इन्द्र) और विष्णु के लिये तैयार करो, न ठगे
 जाने वाले जो दोनों पर्वतों के शिखर पर उंचे ठैरे
 हुए हैं मानों सुन्दर घोड़ों पर (सवार हैं) ॥ १ ॥

क्र०सं०१ सू०१५५मं०२ (४१४२)

इन्द्राविष्णुदेवते, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

त॒वेष॑मि॒त्यास॑म॒रणं॑ शिमी॒वतो॑

रिन्द्रा॑विष्णु॒सुत॒पावा॑मु॒रुष्य॑ति । या

म॒र्त्याय॑प्रति॒धीय॑मान॒मि॒त् कृ॒णानो॑-

रस्तु॑रस॒नामु॒रुष्य॑थः । २ ।

त॒वेष॑म्	दी॒प्तम्	प्रकाश॑ वाले को
इ॒त्या	इति॑सत्यम्	यह सत्य॑ है
सम्॑ऽअ॒रणम्	सङ्ग॑मनम्	संगम॑ को
शिमी॑ऽवतोः	कर्म॑स्वामिनोः	कर्म॑के स्वामियों के
इन्द्रा॑विष्णू॒	हे इन्द्रा॑विष्णू !	हे इन्द्र॑ और विष्णु

(४१४३) क्र०मं० १६०१५५ मं० १

सुतऽपाः	सुतस्यनिष्पीडि- तस्य(सोमस्य) पाता	निचोडेहुप्(सोम) के पीने वाला
वाम्	युवयोः	दुम सेतों के
उरुष्यति	रक्षति	रक्षा करता है
या	यौ	जो दोनों
मर्त्याय	मनुष्याय	मनुष्य के लिये
{ प्रतिऽधी- यमानम्	लक्षीकृतम्	लक्ष्य किये हुप् को
इत्	(पूरणः)	-
कृशानोः	कृशानोः	कृशानु से
अस्तुः	क्षेप्तुः	फैंकने वाले से
असनाम्	बाणान्	बाण को

श्री०मं०१ सू०१५५मं०३ (४१४४)

उ॒रु॒ष्यथः । रक्षथः । बचाते हो

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्राविष्णू ! कर्मस्वामिनोर्युवयोर्दीप्तं सङ्ग-
मनं निष्पीडितस्य (सोमस्य) पाता रक्षतीतिसत्यम्,
यौ (युवाम्) मनुष्याय लक्षीकृतं क्षेप्तुःकृशानोःबाणं
रक्षथः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र और विष्णु ! कर्मों के स्वामी आपकी
प्रकाशमय सङ्गति को निचोड़े हुए (सोम) के पीने
वाला रक्षित करता है, जो आप मनुष्य के लिये लक्ष्य
किये हुए फैंकने वाले कृशानु के बाणको बचाते हो ॥२॥

इन्द्राविष्णूदेवते, जगतीछन्दः। १२।१२।१२।१२

ता॒र्द्ध॒वर्ध॑न्ति॒म॒ह्यस्य॑पौ॒स्यं नि॒-
मा॒तरा॑नयति॒रेत॑सेभुजे । दधाति
पु॒त्रोऽव॑रं॒प॒रं॒पितु॑ न॒मि॒तृता॑य॒मधि॑रो-
चने॒दिवः॑ ॥ ३ ॥

(४१४५) मा०सं०१-पृ०१५५-अ०३

ताः	ताः	वे
ईम्	(पूरणः)	-
वर्धन्ति	वर्धयन्ति	बढ़ाती हैं
महि	महत्	महान् को
अस्य	अस्य	इस के
पौंस्यम्	बलम्	बल को
नि	नि+	-
मातरा	मातरौ	दोनों माताओं को
नयति	नि+नयति, प्राप- यति	पहुँचाता है
रेतसे	वीर्याय	वीर्य के लिये
भुजे	भोगाय	भोग के लिये

संस्कृत-सूत्र-संग्रह (४१४१)

दधाति	धारयति	धारण करता है
पुत्रः	पुत्रः	पुत्र
अवरम्	निकृष्टम्	निकृष्ट को
परम्	उत्कृष्टम्	उच्च को
पितुः	पितः	पिता के
नाम	नाम	नाम को
तृतीयम्	तृतीयम्	तीसरे को
अधि	अधि+	-
रोचने	अधि+रोचने, प्रकाशमाने	प्रकाशमान में
दिवः	दिवः	द्यौ के

संस्कृतार्थः ।

ताः(सोमाहुतयः) अस्य (विष्णोः) महद् बलं वर्ध-

(४१४७) क्र०मं०१ सू०१५५मं०४

यन्ति, (स च विष्णुस्तत्) मातरौ (प्रति) वीर्याय भो-
गाय (च) प्रापयति, पुत्रः (अग्निरूपम्) निकृष्टं दिवः-
प्रकाशमाने (स्थाने च सूर्यरूपम्) पितुस्तृष्टं तृतीयं
नाम धारयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

वे (सोम की आहुतियाँ) इस (विष्णु) के महान्
बल को बढ़ाती हैं, (और वह उस बल को) दोनों
माताओं की ओर वीर्य (और) भोगके लिये पहुंचाता
है, पुत्र (अग्निरूप) निकृष्ट और दुलोक के प्रकाश-
मान (स्थान) में (सूर्यरूप पिता के उत्कृष्ट तीसरे नाम
को धारण करता है ॥ ३ ॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

तत्तदिदस्यपौंस्यंगृणीमसीन-

स्यचातुरवकस्यमोळ्हुषः । यःपा-

र्थिवानिन्निभिरिद्विगामभिरुक्कमि-

ष्टोरुगायायजीवसे ॥ ४ ॥

१५५०४ (४१४८)

तत्॑ऽतत्	तत्तत्	उस २ को
इत्	(पूरणः)	-
अस्य	अस्य	इस के
पौ॑स्यम्	बलम्	बल को
गृ॒णीम॑सि	स्तुमः	हम स्तुति करते हैं
इ॒नस्य	स्वामिनः	स्वामी के
चा॒तुः	रक्षकस्य	रक्षा करने वाले के
अ॒वृ॒कस्य	शत्रुरहितस्य	शत्रु से रहित के
मी॒ळ्हु॑षः	वीरस्य	वीर के
यः	यः	जिस ने
पा॒र्थि॒वानि	पृथिवीसम्बन्धिनः (लोकान्)	पृथिवी संबंधी (लोकों) को

(४१४९) क्र०सं०१स०१५५म०४

चि॒ऽभिः	त्रिभिः	तीनों से
इत्	(पूरणः)	—
वि॒गा॒मऽभिः	विक्रमणैः	कदमों से
उ॒रु	विस्तीर्णं यथा-	विस्तार के साथ
क्र॒मि॒ष्ट	स्यात्तथा	
	क्रान्तवान्	उल्लाघा
उ॒रु॒ऽगा॒याय	बहुस्तुताय	बहुत स्तुति किये
जी॒व॒से	जीवनाय	हुए के लिये
		जीवन के लिये

संस्कृतार्थः ।

अस्य स्वामिनो रक्षकस्य शत्रुरहितस्य वीरस्य
(च॒वि॒ष्णोः) तत्तद्बलम् (वयम्) स्तुमः यो बहुस्तु-
ताय जीवनाय त्रिभिर्विक्रमणैः पार्थिवान् (लोकान्)
विस्तृततया क्रान्तवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

इस स्वामी, रक्षा करने वाले, शत्रु से रहित

श्री०मं०१ स०१५५ मं०५ (४१५०)

(और) वीर (विष्णु) के उस २ बलकी हम स्तुति करते हैं जिसने बहुत स्तुतियोग्य जीवन के लिये तीन कदमों से पृथिवी सम्बन्धी (लोकों) को विस्तार के साथ उल्लाघा ॥ ४ ॥

विष्णुदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

द्वे॒ इ॒द॒स्य॒ क्तम॑णे॒ स्व॒र्दृ॒शो॑ ऽभि॒ख्या-
य॒म॒त॒र्यो॑भुर॒ण॒यति॑ । तृ॒तीय॑म॒स्य॒न-
कि॒रा॒द॒ध॒र्षति॑ व॒य॒प्र॒च॒न॒प॒त॒य॒न्तः॑प-
त॒त्रि॒णः॑ ॥ ५ ॥

द्वे०

द्वे

दोनों को

इत्

एव

ही

अस्य

अस्य

इस के

(४१५१) अ०सं०१ वृ०१५५ सं०५

क्रम०	पदे	पदों को
स्वःऽह्रः	ज्योतिर्दशः	ज्योति के देखने वाले के
अभिऽख्याय	प्रज्ञातुम् (निघं० ३१९)	जानने के लिये
मर्त्यः	मनुष्यः	मनुष्य
भुरगयति	प्राप्नोति (निघं० २१४)	प्राप्त होता है
तृतीयम्	तृतीयम्	तीसरे को
अस्य	अस्य	इस के
नकिः	नकोऽपि	न कोई
आ	आ +	—
दधर्षति	आ + दधर्षति प्राप्तुं धृष्णोति	पहुँचने का साहस करता है

क०८०१ सू०१५५ म०१ (४१५२)

वयः	पक्षिणः	पक्षी
चम	अपि न	भी नहीं
पतयन्तः	उड्डीयमानाः	उड़ते हुए
पतत्रिणः	पतत्रिणः	पांखों वाले

संस्कृतार्थः ।

उद्योतिर्दृशोऽस्य (विष्णोः) द्वे एव पदे प्रज्ञातुं मनुष्यः प्राप्नोति, अस्य तृतीयम् (पदम्) प्राप्तुं न कोऽपि धृष्णोति, उड्डीयमानाः पतत्रिणः पक्षिणोऽपि न ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

उद्योति के देखने वाले इस (विष्णु) के दो ही पदों को जानने के लिये मनुष्य पहुंच सकता है, इसके तीसरे (पद) को कोई भी पहुंचने का साहस नहीं कर सकता, उड़ते हुए पांखों वाले पक्षी भी नहीं ॥ ५ ॥

विष्णुदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

चतुर्भिः साकं न वतिं च नामभिः

(४१५३) क्र०सं०१७०१५५ सं०१

प्रचक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत् । वृद्ध-
 चकरीरोविमिमानचक्रवभि र्युवाङ्कु-
 मारः प्रत्येतयाह्वम् ॥ ६ ॥

चतुःऽभिः	चतुर्भिः	चारों से
साकम्	साकम्	साथ
नवतिम्	नवतिम्	नव्वे को
च	(पूरणः)	-
नामऽभिः	नामभिः	नामों से
चक्रम्	चक्रम्	पहिया
न	इव	की ग्याई

क्र०सं० १ कु० १५५ सं० ५ (४१५४)

वृत्तम्	वृत्तम्	गोल
व्यतीन्	कालावयवान्	समय के अंगों को
अवीविपत्	भ्रामितवान्	घुमाया है
वृद्धत्ऽशरीरः	बृहच्छरीरः	बड़े शरीर वाला
विऽमिमानः	अन्विष्यमाणः	ढूँढा जाकर
वृत्तवऽभिः	स्तोतृभिः	स्तोताओं से
युवा	युवा	जवान
अकुमारः	कुमारावस्था रहितः	कुमार अवस्था से रहित
प्रति	प्रति	की ओर
एति	प्राप्नोति	प्राप्त होता है
आऽहवम्	आह्वानम्	पकार को

(४१५५) मा०मं०१ सू०१५५मं०१

संस्कृतार्थः।

(यः) कुमारावस्थारहितो बृहच्छरीरो युवा (विष्णुः)
चतुर्भिर्नामभिः सह नवतिसङ्ख्याकान् कालावय-
वान् वृत्तचक्रमिव भ्रामितवान्, (सः) स्तोतृभिर-
न्विष्यमाणः (सन्) आह्वानं प्रति प्राप्नोति ॥ ६ ॥

भाषार्थः।

जिस कुमारावस्था, से रहित बड़े शरीर वाले
युवा (विष्णु) ने चार नामों सहित काल के नव्वे अंगों
को गोल पहिये की न्याई घुमाया है, (वह) स्तोताओं
से खोजा जाकर पुकार की ओर प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

इति पञ्चपञ्चादधिकशततमं सूक्तम् ।

मं० सं० १ सू० १५६

(४१५६)

मं० सं० १ सू० १५६ ।

विष्णुदेवता, दीर्घतमाश्रुषिः ।

त्रिनियोगः—

१-५ । एतत्सूक्तम् उक्थ्ये तृतीयसवने भृच्छावाकशस्त्रे विनियुक्तम्
(भा० ६।१।१)१ । "सौम्यचरोऽभयवो धृतेन यष्ट्यं तत्रोपरितनेधृतयाने 'उद-
विष्णोविक्रमस्वेति' प्राकृतायाज्याभवति" द्वामेऽहमित्तुतस्याः
स्थाने 'भवामिभ्रः-' इत्येवा प्रयोक्तव्या, (भा० ८।१२।७)

४ । 'तमस्यराजा-' इत्येवाभनीषोमप्रणयने प्रयोक्तव्या (भा० ४।१०।४)

सूक्त का भावार्थ ।

हे विष्णु ! जलों के उत्पन्न करने वाले, बड़े यश वाले, रक्षा के प्राप्त कराने वाले और अत्यन्त विस्तार वाले आप मित्र की न्याईं कुलके देने वाले हैं, इसलिये आप विद्वान् से भी स्तुति करने योग्य हैं और इति देनेवाले से पूजा करने योग्य हैं ॥ १ ॥ जो प्राचीन और स्वयं उत्पन्न सृष्टिकर्ता विष्णु के लिये देता है और जो इस महान की पूजनीय जन्मकथा को कहता है, वह बराबर वालों में यज्ञ से बढ़ जाता है ॥ २ ॥ हे स्तोतृगण ! जो जन्म से ही सृष्टिनियम का बीजरूप है उस प्राचीन विष्णु को उसे जानते हो ऐसे प्रसन्न करो, उस के नाम मात्र को जानने वाले उस का नाम ही बखानें, हे विष्णु ! हम आपकी दयावृद्धि का भागी बनाओ ॥ ३ ॥ मदों के प्रेरक उस विष्णु की आज्ञा को राजा वरुण और उसी को भविष्य सेवन करते हैं, विष्णु ही अपने साथी इन्द्र से युक्त हो कर उस उत्तम बल को धारण करते हैं जिस के द्वारा वे

(४१५७) ऋ०मं०१सू०१५१ मं०१

प्रकाश के गोष्ठ को खोलते हैं और मनुष्यों के लिये महीनों लम्बी रात्रिके पश्चात् दिन को प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥ जो अत्यन्त दुःख करने वाले विष्णु सुकर्मा इन्द्र की सहायता के लिये आते हैं वही मिलोकी में रहने वाले जगत के उत्पादक, आर्य को विजय के लिये प्रेरण करते हैं और भक्त को ऋतके मार्ग का भागी बनाते हैं ॥ ५ ॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

भवामि॒त्रो॒न॒श्रे॒व्यो॒घृ॒ता॒सु॒ति॒ वि॒-
भू॒त॒द्यु॒म्न॒ए॒व॒या॒उ॒स॒प्र॒थाः । अ॒धा॒ते
वि॒ष्णो॒वि॒दु॒षा॒चि॒द॒ध॒र्यः॒ स्तो॒मो॒य॒ज्ञ-
प्र॒च॒रा॒ध॒यो॒ह॒वि॒ष्म॒ता ॥ १ ॥

भव	भव	तू हो
मित्रः	मित्रम्	मित्र
न	इव	की न्याई
श्रेष्ठः	सुखप्रदः	सुखदेनेवाला

क०मं०१ सू०१५१ मं०१ (४१५८)

{ घृतऽआ सुतिः	जलस्योत्पादकः	जलके उत्पन्न करने वाला
{ विभूतऽ दुःस्मः	महायशः	बड़े यश वाला
एवऽयाः	रक्षणस्य प्रापयिता	रक्षा के प्राप्त कराने वाला
ऊम्	(पूरणः)	—
सुऽप्रथाः	सुविस्तृतः	अत्यन्त विस्तार वाला
अध	अतः	इसलिये
ते	तव	तेरा
विष्णो०	हे विष्णो !	हे विष्णु
विदुषा	विदुषा	विद्वान् से
चित्	अपि	भी

(४१५९) क्र०सं०१ पृ०१५१ म०१

षष्ठ्यः	प्रवर्धनार्हः	बढ़ाने योग्य
स्तोमः	स्तोमः	स्तोत्र
यज्ञः	यज्ञः	यज्ञ
च	च	और
राष्ठयः	आराधनीयः	सिद्धकरनेयोग्य
हविष्मता	हविर्युक्तेन	हविवाले से

संस्कृतार्थः ।

हे विष्णो ! जलस्योत्पादको महायशः रक्षण-
स्य प्रापयिता सुविस्तृतः (च त्वम्) मित्रमिव सुख-
प्रदोभव, अतः तव स्तोमो विदुषाऽपि प्रवर्धनार्हः (तव)
यज्ञः (च) हविर्युक्तेन समाराधनीयः ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हेविष्णु ! जल के उत्पन्न करने वाले, बढ़ेयश
वाले, रक्षा के प्राप्त कराने वाले (और) अत्यन्त
विस्तार वाले (आप) मित्र की न्याईं सुख के देने

क्र० सं० १ अ० १५१ सं० २ (४११०)

वाले हैं, इसीलिये आप का स्तोत्र विद्वान से भी
बढ़ाने योग्य है (और आप का) यज्ञ हवि वाले से
सिद्ध करने योग्य है ॥ १ ॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

यः पू० र्या० य० वे० ध० से० न० वी० य० से० सु० म० ज० जा०
न० य० वि० ष्ण० वे० द० दा० श० ति० । यो० जा० त० म० स्य०
म० ह० तो० म० हि० ब्र० व० त्० से० दु० श्र० वो० भि० र्यु० ज्य०
चि० द० भ्य० स० त्० ॥ २ ॥

यः	यः	जो
पू० र्या० य०	पुरातनाय	प्राचीन के लिये
वे० ध० से०	सृष्टिकर्त्रे	सृष्टिकर्ता के लिये
न० वी० य० से०	स्तुत्याय	स्तुतिके योग्य के लिये

(४१११) क्र०मं०१ प्र०१५१ नं०२

{ समत् जानये	स्वतउत्पन्नाय (सुमत् स्वयमिति यास्कः, नि०१।२२)	अपने आपसे उत्पन्न हुए के लिये
विष्णवे	विष्णवे	विष्णुके लिये
ददाति	ददाति	देता है
यः	यः	जो
जातम्	जन्म	जन्म को
अस्य	अस्य	इस के
महतः	महतः	महान के
महि	पूज्यम्	पूजनीय को
ब्रवत्	ब्रवीति (छेदपदान्तः)	कहता है
सः	सः	वह

क्र०सं०१७०१५६सं०२ (४१६२)

इत्	खलु	सचमुच
ऊम्०	(पूरणः)	-
श्रवःऽभिः	यशोभिः	यशों से
युज्यम्	समानम्	बराबर वाले को
चित्	अपि	भी
अभि	अभि+	-
असत्	अभि+असत्, अभिभवति	जीतता है

संस्कृतार्थः ।

यः पुरातनाय सृष्टिकर्त्रे स्तुत्याय स्वतउत्पन्नाय
(च) विष्णवे ददाति, यः (च) अस्य महतः पूज-
नीयं जन्म ब्रवीति, स खलु समानमपि यशोभिरभि-
भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जो प्राचीन सृष्टिकर्ता स्तुति के योग्य (भौर)

(४१६३) क्र०मं०१ ए०१५१ मं०१

अपने आप उत्पन्न हुए २ विष्णु के लिये देता है
(और) जो इस महान के पूजनीय जन्म को कथन
करता है, वह सचमुच बराबर वाले को भी यशों द्वारा
जीत लेता है ॥ २ ॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

तमुस्तोतारः पूर्य्यथाविद ऋ-
तस्यगर्भजनुषापिपर्तन । आऽस्य
जानन्तीनामचिद्विवक्तन महस्ते
विष्णोसुमतिंभजाम ॥ ३ ॥

तम्	तम्	उस को
जम्०	एव	ही
स्तोतारः	हे स्तोतारः !	हे स्तोता लोगो

क्र०सं०१ क्र०१५३ पृ०३ (४१३४)

पू॒र्व्यम्	पुरातनम्	प्राचीन को
यथा	यथा	जैसे
वि॒द	जानीथ	जानते हो
ऋ॒तस्य	ऋतस्य	ऋत के
गर्भ॑म्	गर्भम्	गर्भ को
ज॒नुषा	जन्मना	जन्म से
पि॒प॒र्त॒न	प्रीणयत	प्रसन्न करो
षा	आ+	-
अ॒स्य	अस्य	इस के
जा॒नन्तः	जानन्तः	जानते हुए
ना॒म	नाम	नाम को

(४११५) अ०मं०१ सू०१५३ मं०३

चित्	अपि	भी
विवक्तान्	आ+विवक्तन, सर्वतोवर्णयत	बखानो
महः	महतः	महान की
ते	तव	तेरी
विष्णो०	हे विष्णो !	हे विष्णु
सुदमतिम्	दयात्मिकांबुद्धिम्	दयाबुद्धि को
भजामहे	भजेमहि (लिट्थेंलट्)	हम भागी हों

संस्कृतार्थः ।

हेस्तोतार ! जन्मनाः ऋतस्य गर्भरूपं तमेव
पुरातनम् (विष्णुम्) यथाजानीथ (तथा) प्रीणयत,
अस्य (च) नामाऽपि जानन्तः (यूयम्) सर्वतोवर्णयत,
हेविष्णो ! (वयम्) महतस्तव दयात्मिकां बुद्धिं
भजेमहि ॥ ३ ॥

क्र०सं०१ सु०१५६ सं०४ (४१६६)

भाषार्थः ।

हे स्तोतालोगो ! जन्म से ऋत के गर्भरूप उसी प्राचीन (विष्णु) को जैसे जानते हो (वैसे) प्रसन्न करो (और) इस के नाम को भी जानते हुए चारों-ओर से बखानो, हे विष्णु ! हम महान आपकी दया-बुद्धि के भागी बनें ॥ ३ ॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

तमस्यराजावरुणस्तमश्चिवना
 क्रतुंसचन्तमारुतस्यवेधसः । दा-
 धारदक्षमत्तममहर्विदं व्रजंचविष्णुः
 सखिवाँअपोर्णुते ॥ ४ ॥

तम्

तम्

उस को

अस्य

अस्य

इस के

(४११७) न०मं०१ सू०१५६ मं०४

राजा	राजा	राजा
वरुणः	वरुणः	वरुण
तम्	तम्	उस को
अश्विना	अश्विनौ	अश्विदेव
क्रातुम्	इच्छाम् (आ० को०)	इच्छा को
सचन्त	सेवन्ते	सेवन करते हैं
मारुतस्य	मारुद्गणस्य	मारुद्गण के
वेधसः	प्रचोदकस्य	प्रेरण करने वाले की
दाधार	धारयति	धारण करता है
दक्षम्	बलम्	बल को
उत्तमम्	उत्तमम्	उत्तम को

क्र०सं०१ सू०१५१ सं०४ (५१३८)

अ॒हः॒ऽवि॒दम्	दि॒नस्य ल॒ब्ध॒ारम्	दि॒नके प्रा॒प्त कर॒ने वा॒ले को
ब्र॒जम्	गो॒ष्ठम्	गो॒ष्ठ को
च	च	औ॒र
वि॒ष्णुः	वि॒ष्णुः	वि॒ष्णु
सखि॒ऽवा॒न्	मि॒त्रेण यु॒क्तः	मि॒त्र से यु॒क्त
अ॒प॒ऽऊ॒र्णु॒ते	उद्घा॒टय॒ति	खो॒ल दे॒ता है

संस्कृतार्थः ।

मरुतां प्रचोदकस्याऽस्य (विष्णोः) ताम्
इच्छां राजावरुणः ताम् एव (च) अश्विनौ सेवन्ते,
विष्णुः(एव) मित्रेण युक्तः (सन्) दिवसस्य लब्धारम्
उत्तमं धूलं धारयति[उयोतिषः] गोष्ठं चोद्घाटयति । ४।

भाषार्थः ।

मरुतों के प्रेरण करने वाले इस (विष्णु) की उस
इच्छा को राजा वरुण (और) उसी को अश्विदेव

(४१९९) ऋ०मं०१७०१५१ मं०५

सेवन करते हैं, विष्णु (हा) मित्र से युक्त होकर
दिन को प्राप्त करने वाले उत्तम बल को धारण
करते हैं और (ज्योति के) गोष्ठ को खोलते हैं ॥४॥

विष्णुर्देवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

आयोविवायसुचथायदैव्य इन्द्रा-
यविष्णुःसुक्कतेसुक्कत्तरः । वेधाअजि-
न्वत्त्रिषधस्थआर्यमृतस्यभागेयज--
मानमाभजत् ॥ ५ ॥

आ	आ+	-
यः	यः	जो
विवाय	आ+विवाय, आगच्छति	आता है
सुचथाय	साहाय्यार्थम्	सहायता के लिये

क्र० सं० १ सू० १५६ सं० ५ (४१७०)

दै॒व्यः	दिवि॒भवः	द्यौ॒ में होने वाला
इन्द्रा॒य	इन्द्रा॒य	इन्द्र के लिये
विष्णाः	विष्णुः	विष्णु
सु॒कृ॒तैः	सुक॒र्म॒णो	सुक॒र्मा के लिये
सु॒कृ॒त॒ऽ॒तरः	अ॒ति॒सु॒कर्मा	अत्यन्त सु॒कर्मा
वे॒धाः	जगदु॒त्पा॒दकः	जगत के उत्पन्न करने वाला
अ॒जि॒न्व॒त्	प्रेरय॒ति	प्रेरण करता है
त्रि॒ऽस॒ध॒स्यः	त्रि॒लोक॒स्था॒यी	त्रि॒लोकी में रहने वाला
आ॒र्य॑म्	आ॒र्य॑म्	आर्य को
ऋ॒त॒स्य	ऋ॒त॒स्य	ऋत के
भा॒गे	भा॒गे	भाग में

(४१०१) तमं०१ सू०१५६ मं०५

यजमानम्	यजमानम्	यजमान को
आ	आ+	-
अभजत्	आ+अभजत्, भागिनं करोति	भागी बनाता है

संस्कृतार्थः ।

योऽतिसुकर्मा दिविभवो विष्णुः सुकर्मणे इन्द्राय-
साहाय्यार्थम् आगच्छति (सः) त्रिलोकस्थायी जग
दुत्पादकः आर्यं प्रेरयति, ऋतस्य भागे (च) यजमान
भागिनं करोति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

जो अत्यन्त सुकर्मा द्यौ में होने वाले विष्णु
सुकर्मा इन्द्र की सहायता के लिये आते हैं वह
त्रिलोकी में रहने वाले जगत् के उत्पादक, आर्य
को प्रेरण करते हैं (और) ऋत के भाग में यजमान
को भागी बनाते हैं ॥ ५ ॥

इति षट्पञ्चाशवृत्तरशततमं सूक्तम् ।

क्र०मं०१सू०१५७

(४१७२)

ऋ० मं०१ सू० १५७

अश्विनौदेवते, दीर्घतमाश्विः ।

विनियोगः-

१-६ । एतत्सूक्तं प्रातरनुवाकाऽऽश्विनशस्त्रयोर्जागतेछन्दसि विनि-
युक्तम् (आ०४।१५।३)

सूक्त का भावार्थ ।

अग्नि प्रदीप्त हैं होगए हैं सूर्य भगवान पृथिवी से उदय हो रहे हैं, आनन्द देने वाली महती उषा ज्योति के साथ प्रकट होगई है, अश्विनो ने चलने के लिये रथ को जोड़ लिया है सविता ने पृथक् पृथक् जगत को अपने २ काम में प्रेरण किया है ॥ १ ॥ हे अश्विनो ! आप जो अपने वीर रथ को जोड़ते हो, सो हमारे राज्य-बल को घी से और मधु से साँचो, आप हमारी स्तुति को युद्धों में प्रेरण करो जिस से हम संग्राम में धनों के भागी हों ॥ २ ॥ तीब्र पहियों वाला, मिठास के ढोने वाला, शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त, आगे पीछे तीन सारथियों के बैठने योग्य तीन खम वाला, धन से पूर्ण, सब प्रकार के सौभाग्य से युक्त और स्तुति किया हुआ अश्विनो का रथ हमारे सामने आवे, और हमारे मनुष्य तथा पशुओं के लिये सुख को लावे ॥ ३ ॥ हे अश्विनो ! आप हमारे लिये बल को लावें और हमें अपने मिठास से भरे हुए चाबुक से साँचें, आप हमारी आयु को बढ़ावें और पापों को छिजावें, द्वेष करने वालों को हटावें और हमारे सहायक बनें ॥ ४ ॥ हे वीर अश्विनो ! आप गौओं में और आपही सब लोकोंमें जीव के बीज की स्थापन करते हैं, आप ही अग्निको, जलों को और वनस्पतिओं को प्रेरण करते हैं ॥ ५ ॥ हे तेजस्वी अश्विनो ! आप औषधों सहित वैद्य हो, आप घोड़ों सहित रथवाले हो, जो आप को हवि से युक्त हो कर मन से देता है उसके लिये आप राज्यबल को धारण करते हो ॥ ६ ॥

(४१७३) क्र०मं०१ सू०१५७ मं०१

अश्विनौदेवते, निचृज्जगतीछन्दः । ११।१२।१२।१२

अ॒बो॒ध॒य॒ग्नि॒ज्म॒उ॒दे॒ति॒सू॒र्यो॒ व्यु॒-
 १॒षा॒प्र॒च॒न्द्रा॒म॒ह्या॒वो॒अ॒र्चि॒षा । अ॒यु॒-
 क्षा॒ता॒म॒श्वि॒वना॒या॒तवे॒रथं॒ प्रा॒सा॒वी॒-
 हे॒वः॒स॒वि॒ता॒ज॒गत्पृ॒थक् ॥ १ ॥

अ॒बो॒धि	प्रदीप्तोऽभूत्	प्रदीप्त हुआ है
अ॒ग्निः	अग्निः	अग्नि
ज्मः	ज्मायाः, पृथिव्याः (ज्मेति पृथिवीनाम निघं० १।१)	पृथिवी से
उ॒त्	उत्+	-
ए॒ति	उत्+एति	उबय होता है

क्र०सं०१ सू०१५७ सं०१ (४१७४)

सूर्यः	सूर्यः	सूर्य
वि	वि+	-
उषाः	उषाः	उषा
चन्द्रा	आल्हादिनी	आनन्द के देने वाली
मही	महती	बड़ी
आवः	वि+आवः, प्रकटितवती	प्रकट हुई है
अर्चिषा	ज्योतिषा	प्रकाश के साथ
पयुक्षाताम्	योजितवन्तौ	जोड़ा है
अश्विना	अश्विनौ	अश्विनों ने
यातवे	गन्तुम्	चलने के लिये
रथम्	रथम्	रथ को

(४१७५) क्र०मं०१ सू०१५७ मं०१

प्र	प्र +	-
असावीत्	प्र + असावीत्, प्रेरितवान्	प्रेरण किया है
देवः	देवः	देव
सविता	सविता	सविता ने
जगत्	जगत्	जगत् को
पृथक्	पृथक्	अलग २

संस्कृतार्थः ।

अग्निः प्रदीप्तोऽभूत्, पृथिव्याः सूर्योदयेति,
महती आल्हादिनी उषाः ज्योतिषा सह प्रकटित-
वती, अश्विनौ गन्तुं रथं योजितवन्तौ, सवितृदेवः
(च) जगत् पृथक् प्रेरितवान् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

अग्नि प्रदीप्त हुआ है, पृथिवी से सूर्योदय होता
है, आनन्द के देने वाली महती उषा प्रकाश के साथ
प्रकट हुई है, अश्विनों ने चलने के लिये रथ को
जोड़ा है. (और) सविता देव ने जगत् को अलग २
प्रेरण किया है ॥ १ ॥

कर्म०१ सू०१५७वे०२ (४१७१)

अश्विनौदेवते, जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२

यद्युञ्जाथेवृषणमश्विनारथं
घृतेननोमधुनाक्षत्रमुक्षतम्। अस्मा-
कंब्रह्मपृतनासुजिन्वतं वयंधनाशूर-
साताभजेमहि ॥२॥

यत्

युञ्जाथे०

वृषणम्

अश्विना

रथम्

घृतेन

यत्

योजयथः

बलवन्तम्

हे अश्विनौ !

रथम्

घृतेन

जो

जोड़ते हो

बलवान को

हे अश्विनो

रथ को

घी से

(४१७७) क्र०मं०१ सू०१५७ पं०२

नः	अस्माकम्	हमारे
मधुना	मधुना	मधु से
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्यबल को]
उच्चतम्	सिञ्चतम्	सींचो
अस्माकम्	अस्माकम्	हमारी
ब्रह्म	स्तुतिम्	स्तुति को
पृतनासु	सङ्ग्रामेषु	युद्धों में
जिन्वतम्	प्रेरयतम्	प्रेरण करो
वयम्	वयम्	हम
धना	धनानि	धनों को
शूरऽसाता	सङ्ग्रामे	युद्ध में

क्र०मं०१ सू०१५७ मं०३ (४१७८)

भजेमहि

भजेमहि

भागी हों

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनौ ! यत् (युवाम्) बलवन्तं रथं योजयथः
(तत्) अस्माकं राज्यबलं मधुना घृतेन (च) सिञ्चतम्,
अस्माकं स्तुतिं युद्धेषु प्रेरयतम् (येन) वयं सङ्ग्रामे
धनानि भजेमहि ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्विनौ ! जो आप बलवान रथ को जोड़ते
हो (सो) हमारे राज्यबल को मधु (और) घी से सींचो,
आप हमारी स्तुति को युद्धों में प्रेरण करो (जिस से)
हम युद्ध में धनों के भागी हों ॥२॥

अश्विनौ देवते, जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

अर्वाङ्चिचक्रोमधुवाहनोरथो

जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।

शिवन्धुरो मधवा विप्रवसौ भगः शन्न

(४१७९) अ० प्र० १ सू० १५ अ० ३

पाव॑क्षद् द्वि॒पदे॑ चतु॒ष्टपदे॑ ॥ ३ ॥

प॒वाङ्	अस्मदभिमुखम्	हमारे सामने
त्रि॒ऽचक्रः	चक्रत्रयोपेतः	तीन पहियों वाला
मधु॒ऽवाहनः	माधुर्यस्य वोढा	मिठास के ढोने वाला
रथः	रथः	रथ
जी॒र॒ऽअप्रवः	शीघ्रगामिभि- रद्वैर्युक्तः	शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त
अ॒श्विनोः	अश्विनोः	अश्विनों का
या॒तु	प्राप्नोतु	प्राप्त हो
सु॒ऽस्तुतः	अत्यन्तंस्तुतः	अत्यन्त स्तुति किया हुआ
त्रि॒ऽवन्धुरः	वन्धुरत्रयोपेतः	तीन खम वाला
मघ॒ऽवा	धनेनपूर्णः	धन से भरा हुआ

क्र०सं०१ सू०१५७ सं०३ (४१७८)

भजेमहि

भजेमहि

भागी हों

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो ! यत् (युवाम्) बलवन्तं रथं योजयथः
(तत्) अस्माकं राज्यबलं मधुना घृतेन (च) सिञ्चतम्,
अस्माकं स्तुतिं युद्धेषु प्रेरयतम् (येन) वयं सङ्ग्रामे
धनानि भजेमहि ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्विनो ! जो आप बलवान रथ को जोड़ते
हो (तो) हमारे राज्यबल को मधु (और) घी से सींचो,
आप हमारी स्तुति को युद्धों में प्रेरण करो (जिस से)
हम युद्ध में धनों के भागी हों ॥२॥

अश्विनो देवते, जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

अ॒र्वा॒ङ् चि॒च॒क्रो॒म॒धु॒वा॒ह॒नो॒रथो॑

जी॒रा॒श्र॒वो॑ अ॒श्वि॒नो॒र्या॒तु॒सु॒ष्टु॒तः ।

षि॒व॒न्धु॒रो॒म॒ध॒वा॒वि॒श्व॒सौ॒भ॒गः॑ शं॒न

(४१७९) क्र०मं०१ सू०१५अं०३

आवक्षद् द्विपदेचतुष्पदे ॥ ३॥

अर्वाङ्	अस्मदभिमुखम्	हमारे सामने
त्रिचक्रः	चक्रत्रयोपेतः	तीन पहियों वाला
मधुवाहनः	माधुर्यस्य वोढा	मिठास के ढोने वाला
रथः	रथः	रथ
जीरअश्वः	शीघ्रगामिभि- रश्वैर्युक्तः	शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त
अश्विनोः	अश्विनोः	अश्विनों का
यातु	प्राप्नोतु	प्राप्त हो
सुस्तुतः	अत्यन्तंस्तुतः	अत्यन्त स्तुति किया हुआ
त्रिवन्धुरः	वन्धुरत्रयोपेतः	तीन खम वाला
मघवा	धनेनपूर्णः	धन से भरा हुआ

सं० सं० १ सू० १५७ सं० ३ (४१८०)

विप्रवऽसौ	सर्वसौभाग्यसहि-	सम्पूर्ण सौभाग्यों
भगः	तः	वाला
शम्	सुखम्	सुख को
नः	अस्माकम्	हमारे
चा	आ +	-
वक्षत्	आ+वक्षत्,	लावे
द्विऽपदे	आवहतु	
	पादद्वयोपेताय	दुपाए के लिये
चतुऽपदे	पादचतुष्टयो	चौपाए के लिये
	पेताय	

संस्कृतार्थः ।

चक्रत्रयोपेतः, माधुर्यस्य वोढा, शीघ्रगामिभिर-
 श्वैर्युक्तः अत्यन्तं स्तुतः, बन्धुरत्रययुक्तः धनेन पूर्णः
 सर्वसौभाग्यसहितः (च) अश्विनोरथः अस्मदभि-
 मुखं प्राप्नोतु, अस्माकं द्विपदे (पुत्रादये) चतुष्पदे
 (मवादे च) सुखमावहतु ॥ ३ ॥

(४१८१) अ०मं०१ अ०१५मं०४

भाषार्थः ।

तीन पहियों वाला, मिठास के बरसाने वाला,
शीघ्र चलने वाले घोड़ों से युक्त, अत्यन्त स्तुति किया
हुआ, तीन खम वाला, धन से भरा हुआ (और)
सम्पूर्ण सौभाग्यों वाला अश्विनों का रथ हमारे
सामने आवे (और) हमारे (पुत्र आदि) दुपाए (और
गौ आदि) चौपाए के लिये सुख को लावे ॥ ३ ॥

अश्विनौदेवते, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

आन॒ऊर्ज॑व॒हत॑म॒श्वि॒वना॒यु॒वं म॒ध-
म॒त॒यानः॑ क॒श्या॑मि॒मि॒क्षत॑म् । प्रा॒यु-
स्तारि॑ष्ट॒टं नी॒रपांसि॑मृ॒क्षतं॑ से॒धतं॑ द्वे-
षो॒भव॑तं स॒चा॒मुवा॑ ॥ ४ ॥

आ	आ +	-
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये

क्र०सं०१ सू०१५७सं०४ (४१८२)

ऊर्जम्	बलम्	बल को
वहतम्	आ+वहतम्	लाओ
अश्विना	हेअश्विनौ !	हे अश्विनो
युवम्	युवाम्	तुम दोनों
मधुऽमत्या	माधुर्योपेतया	मिठास वाले से
नः	अस्मान्	हम को
कश्या	कश्या	चाबुक से
मिमिक्षतम्	सम्यक्सिञ्जतम्	खब सींचो
प्र	प्र+	-
आयुः	आयुः	आयु को
तारिष्टम्	प्र+तारिष्टम्, प्रवर्धयतम्	बढ़ाओ

(४१८३) क्र०मं०१ सू०१५७ मं०४

निः	निः +	-
रपांसि	पापानि (निघं०४।२१)	पापों को
मृच्छतम्	निः+मृश्चतम्, नाशयतम्	नाश करो
सेधतम्	अपसारयतम्	हटाओ
द्वेषः	द्विषः	द्वेषकरने वालों को
भवतम्	भवतम्	हैं
सचाऽभुवा	सहायकौ	सहायक

संस्कृतार्थः ।

हेअश्विनौ ! युवामस्मभ्यं बलमावहतम्,
अस्मान् माधुर्योपेतया कशया सम्यक् सिञ्चतम्,
(अस्माकम्) आयुः प्रवर्धयतम्, पापानि (च) विनाश-
यतम्, द्विषोऽपसारयतम्, सहायकौ(च) भवतम् ॥४॥

भाषार्थः ।

हे अश्विनो ! आप हमारे लिये बल को लावें,

क्र०सं०१ सू०१५७सं०५ (४१८४)

(और) हमें (अपने) मिठास वाले चाबुक से खूष
सीचें (हमारी) आयु को बढ़ा (और) पापों को नाश
करें, द्वेष करने वालों को हटावें (अर हमारे) सहा-
यक बनें ॥ ४ ॥

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुच्छन्दः । ११११११११११

युव॑ं ह॒ग॒र्भं॑ ज॒गती॑ षु॒ध॒तथो॑ यु॒वं
वि॒प्रवे॑षु॒भुव॑ने॒ष्वन्तः॑ । य॒वम॒ग्निं॑ च॒वृ-
ष॒णाव॒पश्च॑ व॒नस्प॑ती॒रि॒श्वि॒वना॒वैर॑ये-
याम् ॥ ५ ॥

यु॒वम्	यु॒वाम्	तु॒म दो॑नों
हृ	ख॒लु	स॒चमु॑च
ग॒र्भम्	ग॒र्भम्	ग॒र्भ को॑
ज॒गती॑ष	गो॒ष	गौ॒ओं में॑
	(निघं० २।११)	

(४१८५) क्र०मं०१ सू०१५७ मं०५

ध॒त्थः

धा॒रय॒थः

धा॒रण॒ कर॒ते हो

यु॒वम्

यु॒वाम्

तुम॒ दो॒नों

वि॒श्वे॑षु

सर्वे॑षु

सब॒ में

भु॒वने॑षु

लो॒केषु

लो॒कों में

अ॒न्तः०

म॒ध्ये

बी॒च

यु॒वम्

यु॒वाम्

तुम॒ दो॒नों

अ॒ग्नि॒म्

अ॒ग्नि॒म्

अ॒ग्नि॒ को

च

च

औ॒र

वृ॒ष॒णौ

हे॒ वी॒रौ !

हे॒ वी॒रौ

अ॒पः

अ॒पः

ज॒लों को

च

च

औ॒र

क्र०मं०१स०१५७ मं०१ (४१८१)

वनस्पतीन्	वनस्पतीन्	वनस्पतियों को
अश्विनौ	हे अश्विनौ !	हे अश्विनो
ऐरयेधाम्	प्रेरयथः (लहयेंलोट्)	प्रेरण करते हो

सस्कृतार्थः।

हेवीरौ ! अश्विनौ ! युवां खलु गोषु गर्भं धार-
यथः, युवां सर्वेषु भुवनेषु मध्ये (गर्भधारयथः) युवा-
मग्निमपोवनस्पतींश्च प्रेरयथः ॥ ५ ॥

भाषार्थः।

हे वीर अश्विनो ! आप सचमुच गौओं में गर्भ
को धारण करते हो, आप सब लोगों के बीच गर्भ को
धारण करते हो, आप अग्नि को जलों को और
वनस्पतियों को प्रेरण करते हो ॥ ५ ॥

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुपञ्चदः ११११११११११

युवं हस्थोभिषजाभिषजेभि रथो-
हस्थोरथ्याश्चरथ्येभिः । यथोहक्षच-

(४१८७) क्र०सं० १६०१५७ सं०१

मधि॑ध॒त॒थ॒उ॒र॒ । यो॒वां॑ह॒वि॒ष्ट॒मा॒न्म॒न॒-
सा॒द॒दा॒श॒ ॥ ६ ॥

य॒व॒म्

ह

स्थः

भि॒ष॒जा

भे॒ष॒जे॒भिः

अ॒थो॒

ह

स्थः

यु॒वा॒म्

ख॒लु

स्थः

भि॒ष॒जौ

औ॒ष॒धैः

पुनः

ए॒व

स्थः

तुम॑ दो॒नों

स॒च॒ मु॒च

हो

वै॒द्य

औ॒ष॒धों से

फि॒र

ही

हो

क०सं० १स० १५७मं०६ (४१८८)

रथ्या	रथवन्तौ	रथ वाले
रथ्येभिः०	रथयोग्यैः (अइवैः)	रथ के योग्य (घोड़ों) से
पथो०	आपच	अ र
ह	खलु	सचमच
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्यबल को
अधि	अधि +	-
धत्थः	अधि + धत्थः, धारयथः	धारण करते हो
उग्रा	हेउग्रौ !	हे भयान क
यः	यः	जो
वाम्	युवाभ्याम्	तुम्हारे लिये
हविष्मान्	हविर्युक्तः	हविसे युक्त

(४१८९) ऋ०मं०१ सू०१५७ मं०१

मनसा	मनसा	मन लगाकर
ददाति	ददाति (कडपें लिट्)	देता है

संस्कृतार्थः ।

हेउग्रौ ! अश्विनौ ! युवां खलु औषधैः सह भिष-
जौस्थः पुनारथयोग्यैः (अश्वैः) सह रथवन्तौ स्थः
अपिच यो, युवाभ्यां हविर्युक्तः (सन्) मनसा ददाति
(तस्मै) खलु राज्यबलं धारयथः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे भयानक (अश्विनो !) आप सचमुच औषधों
के सहितवैद्य हो, आप रथ के योग्य (घोड़ों) के सहित
रथवाले हो, और जो आप के लिये हविसे युक्त
(होकर) मन लगाकर देता है उस के लिये आप
राज्यबल को धारण करते हो ॥ ६ ॥

इति सप्तपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम् ।

क्र०सं०१ सू०१५८

(४१९०)

ऋ०सं०१सू०१५८

अश्विनौदेवते, दीर्घतमाश्रुषिः ।

विनियोगोलैङ्गिकः ।

सूक्त का भावार्थ ।

हे जगत के बसाने वाले और घोर रूप वीरो ! जब आप सहायताओं के साथ हमारे पास आते तब हमें यज्ञ में उस धन को दें जो उच्य का पुत्र दीर्घतमा आप से मांगता है ॥ १ ॥ हे धन वाले अश्विनो ! जो आप वेदि के स्थान में नमस्कार किये जाकर भक्त पर कृपा करते हैं उस के बदले में आपको कोई कथा दे सकता है, आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करने की इच्छा से आते हुए हमारी धन उत्पन्न करने वाली बुद्धियों को चेतन करें ॥ २ ॥ हे अश्विनो ! जिन आप का समुद्र को पार करने वाला बलवान रथ तुम के पुत्र राजर्षिभृज्यु की रक्षा के लिये समुद्र में डाला गया, ऐसे आप की रक्षा और शरण को मैं प्राप्त करूँ जैसे शूरवीर तेज घोड़ों द्वारा संग्राम को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विनो ! आप के समीप जाकर को हुई स्तुति मुझे उच्य के पुत्र की रक्षा करे, ये उड़ने वाले दिन और रात्रि मुझे क्षीण न करें, इस तरह लगाया हुआ ईधन का ढेर इस आप के भक्त को न जला सका, बरन वही दस्यु जिसने मुझे बांधा था अब पृथिवी पर लेट रहा है ॥ ४ ॥ जब दस्युओं ने मुझे बांधकर नदी में फेंक दिया तो माता से भी अधिक प्रेम करने वाले जलों ने मुझे नहीं निगला जब त्रैतन दस्यु ने मेरा सिर काटना चाहा तो आप ही छाती और कंधों में घायक हुआ ॥ ५ ॥ मैं ममताका पुत्र दीर्घतमा दसवें दहाके में (मर्षात् १० वर्ष के पश्चात्) पड़ा हुआ हूँ, मैं स्तुति करने वाला

(४१२.१) न०मं०१६०१५८ मं०१

ब्राह्मण चलते हुए नदी के जलों का मानो सातवें बन गया (जब दस्युओं ने दीर्घतमा को नदी में गिराया था तब वह नदी के प्रवाह से बहाया जाकर अंग देश में जा निकला वहां पर राजा की उशिज् नामी बांदी से उसका विवाह हुआ और उससे कभी-काल कृषि उत्पन्न हुआ। (देखो बृहद्देवता, ४१२ से २५ तक)।

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११

वसू॒रु॒द्रा॒पु॒रु॒मन्त॒वृ॒धन्ता॒ दश॒-
स्य॒त॒नो॒वृ॒षणा॒व॒भि॒ष्टौ । द॒स्रा॒ह्य॒-
द्रे॒क॒ण॒भौ॒च॒ष्ट्यो॒वा॒ प्र॒यत्स॒स्त्रा॒थे॒अ॒क॒-
वा॒भि॒रु॒ती ॥ १ ॥

वसू०	वसुरुपौ	वसरूप
रुद्रा	रुद्ररूपौ	रुद्ररूप
पुरु०मन्तू०	बहुज्ञानवन्तौ	बहुत जानने वाले

क्र०सं०१६०१५८ सं०१ (४१९२)

वृधन्ता	वर्धमानौ	बढ़ते हुए
दशस्यतम्	दत्तम्	आप दें
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
वृषणौ	हे वीरौ !	हे बीरो
चभिष्टौ	यज्ञे (भा०को०)	यज्ञ में
दस्त्रा	उग्रौ	तेजस्वी
ह	खल	सचमुच
यत्	यत्	जिस को
रेक्णाः	धनम् (निब०२।१०)	धन को
पौचष्टयः	उचथस्य पुत्रः	उचथ का पुत्र
वाम्	यु० वाम्	तुम दोनों को

(४१९३) क्र०सं०१ पृ०१५८ पं०१

प्र	प्र +	-
यत्	यदा	जब
सखाये०	प्र+सखाये,अभि	सामने आते हो
।	मुखं प्राप्नुयः	
अकस्मिन्	अकुस्मिताभिः	बहुतों से
कृती	रक्षाभिः	रक्षाओं से
	(सुपान्तिपूर्वसवर्ण- दीर्घः)	

संस्कृतार्थः ।

हे वीरो ! (अश्विनो !) वसुरूपो रुद्ररूपो बहुज्ञान-
वन्तो वर्धमानौ उग्रौ (च युवाम्) अस्मभ्यं यज्ञे
(तद् धनम्) दत्तं यद् धनम् उचथस्य पुत्रः (दीर्घतमाः)
युवाम् (याचते) खलु, यदा (युवाम्) अकुस्मिताभी-
रक्षाभिरभिमुखमागच्छथः ॥ १ ॥

भावार्थः ।

हे वीर (अश्विनो !) वरु रूप, रुद्ररूप, बहुत ज्ञान
वाले, बढ़ते हुए, (और) तेजस्वी आप यज्ञ में हमारे
लिए (उक्त धन को) हैं जिस धन को उचथ का पुत्र

क्र०मं०१ सू०१५८ मं०२ (४१९४)

(दीर्घतमा) सचमुच आप से(मांगता है)जब आप बहुत रक्षाओं के साथ सामने आते हो ॥ १ ॥

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

को॒वां॑दा॒शत्सु॒म॒तये॑चि॒द॒स्यै
वस॒य॒द्वे॒थेन॑मसा॒प॒दे॒गोः । जि॒गृ॒तम॒-
स्मे॒रे॒व॒तीःपु॒रन्धीः । का॒म॒प्रे॒णिव॒मन॑-
सा॒च॒रन्ता ॥ २ ॥

कः

कः

कौन

वा॒म्

यु॒वयोः

तुम दोनों की

दा॒श॒त्

द॒या॒त्

दे

सु॒म॒तये॑

द॒या॒बु॒द्धये॑

दयाबुद्धि के लिये

(४१९५) क्र०मं०१ सू०१५८ मं०१

चित्	(पूरणः)	-
अस्यै	अस्यै	इस के लिये
वसू०	हे धनवन्तौ !	हे धनवानो
यत्	याम् (विभक्तैर्लुक्)	जिस को
धेयै०	धारयथः (विकरणस्यलुक्)	धारण करते हो
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कार से
पदे	स्थाने	स्थान में
गोः	वेदिरूपपृथिव्याः	वेदिरूप पृथिवी के
जिगतम्	जागरयन्तम् (छान्दसं रूपम्)	जगाओ
अस्मे०	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
वेवतीः	धनवतीः	धन वालियों को

क्र०मं०१ सू०१५८ मं०२ (४१९६)

पुरम्ऽद्योः	बुद्धीः (क्र०११२३६)	बुद्धियों को
{ कामप्रेषा- ऽद्वय	कामपूरकेनेव	कामना के पूर्ण करने वाले से मानों
मनसा	मनसा	मन से
चरन्ता	चरन्तौ	विचरते हुए

संस्कृतार्थः ।

हे धनवन्तौ ! (अश्विनौ !) युवयोः अस्य दया-
बुद्ध्यै को दातुं शक्नोति याम् (युवाम्) वेदेः स्थाने
(अस्मदीयेन) नमस्कारेण धारयथः, कामपूरके-
नेव मनसाचरन्तौ (युवाम्) अस्मभ्यं धनवतीर्बुद्धीः
जागरयतम् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे धनवाले (अश्विनौ !) आप की इस दयाबुद्धि
के लिये कौन दे सकता है जिस को आप वेद के
स्थान में (हमारे) नमस्कार करने से धारण करते
हो, आप कामना के पूर्ण करने वाले मनसे आते हुए
हमारे लिये धनवाली बुद्धियों को जगावें ॥ २ ॥

(४१९७) अ० सं० १ सू० १५८ मं० १

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

यु॒क्तो॒ह्यद॒र्वा॒तौ॒ग्र॒या॒य॒पे॒रु॒ वि॒म-

ध्ये॒अ॒र्ग॒सो॒धा॒यि॒प॒जः । उ॒प॒वा॒म॒वः

श॒र॒गां॒ग॒मे॒यं श॒रो॒नाऽ॒ज्म॒प॒त॒य॒द्भि॒रे॒वैः

॥ ३ ॥

यु॒क्तः

यु॒क्तः

जुड़ा हुआ

ह

खलु

सचमुच

यत्

यत्

जा

वा॒म्

पुत्रयोः

तम दोनों का

तौ॒ग्र॒या॒य

तुमपुत्राय

तुमके पुत्रके लिये

पे॒रुः

पारण कुशलः

पार उतारने वाला

(रथः)

(रथः)

अ०मं०२ सू०१५८ मं०३ (४१९८)

वि	वि+	-
मध्ये	मध्ये	बीच
अर्णसः	समुद्रस्य (भा०को०)	समुद्र के
धायि	वि+धायि, स्थापितः	स्थापन किया गया
पजः	बलयुक्तः (भा०को०)	बल से युक्त
उप	उप+	-
वाम्	युवयोः	तुम दोनों की
अवः	रक्षणम्	रक्षा को
शरणम्	शरणम्	शरण को
गमेयम्	उप + गमेयम्, प्राप्नुयाम्	मैं प्राप्त होऊँ
शूरः	शूरः	शूरवीर

(४१९९) क्र०मं०१ स०१५८मं०३

न	इव	जैसे
पञ्चम	सङ्ग्रामम्	युद्ध को
पतयत्सभिः	शीघ्रगामिभिः	शीघ्र चलन वालों से
एवैः	अश्वः (आ०को०)	घोड़ों से

संस्कृतार्थः ।

(हेअश्विनौ!) यद्युवयोर्बलयुक्तः पारणकुशलः
(स्थः)तुमपुत्राय युक्तः(सन्) समुद्रस्य मध्ये खलुस्था-
पितोऽभूत् (तद्) युवयोरक्षणं शरणम् (चाऽहम्)
प्राप्नुयां यथा शूरः शीघ्रगामिभिरश्वैः सङ्ग्रामम्
(प्राप्नोति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

(हेअश्विनो! जो आप का बल युक्त पारउतारने
वाला (स्थ) तुम के पुत्र के लिये जोड़ा (जाकर)
समुद्र के बीच में डाला गया, (उस) आप की रक्षा
और शरण को मैं प्राप्त होऊं जैसे शूरवीर शीघ्र
चलने वाले घोड़ों से युद्ध को (प्राप्त होता है) ॥ ३ ॥

सं० ११५८ (४२००)

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुप् छन्दः ॥ ११।. १।१११११

उपस्तुतिगैचथमुकष्येन् माः
मामिमेपतत्रिणीविदुग्धाम् । मामा
मेधोदशतयप्रिचतोधाक् प्रयद्वां
बद्धस्तमनिखादतिक्षाम् ॥ ४ ॥

उपऽस्तुतिः	मा ऽप्येन स्तुतिः	पास जा कर की हुई स्तुति
औचथम्	उचथस्य पुत्रम्	उचथ के पुत्र को
उकष्येत्	रक्षेत्	रक्षा करे
मा	मा	मत
माम्	माम्	सुश को
दुमे	इमे	ये दोनों

(४००१) क्र०सं०१ पृ०१५४ पं०४

पतचिणी०	पतनशीले (अहो रात्रे, (सा०भा०)	उड़ने वाले (दिन और रात)
वि	वि +	-
दुग्धाम्	वि+दुग्धाम्, श्रीणीकुरुताम्	क्षी ग करें
मा	मा	मत
माम्	माम्	मुझ को
एधः	प्रज्वालितेन्धन- सङ्घः (मा०मा०)	जलता हुआ ईन्धन का ढेर
दशऽतयः	दशवारम् (मा०भा०)	दस बार
चितः	चितः	चुना हुआ
धाक्	दग्धवान्	जला सका
प्र	प्र +	-
यत्	येन	जिस से

क०मं०१ स०१५८मं०४ (४१०२)

वाम	युवयोः	आपका
बद्धः	बद्धः	बाँधा गया
तमनि	आरमनि	अपने आप में
खादति	खादति	खाता है
क्षाम्	पृथिवीम्	पृथिवी को

संस्कृतार्थः ।

(हेअश्विनो!) सामीप्येन कृता स्तुतिः उच्यते।
पुत्रं रक्षेत्, इमे पतनशीले अहारात्रे मां न क्षीणी-
कुरुताम्, दशवारं चितः प्रज्वालितेन्धनसङ्घः मां न
दग्धवान् येन युवयोः (भक्तोऽहम्) बद्धः, ('सः')
स्वयम् (एव) पृथिवीं खादति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्विनो!) पास जाकर की हुई स्तुति उच्य
के पुत्रको बचावे, ये उड़नेवाले दिन रात मुझ को
क्षीण न करें, दस तहलगाया हुआ जलता हुआ ईंधन
का ढेर मुझको न जला सका, जिससे आपका (भक्त)
(मैं) बाँधा गया, (वह) आप (ही) पृथिवी को खारहा है। ४।

(४२०३) क्र०सं०१सू०१५८म०५

अश्विनौदेवते, त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

न॒मा॒ग॒र॒न् न॒द्यो॒मा॒तृ॒त॒मा दा॒सा-
 य॒दो॒सु॒स॒मु॒ब्ध॒म॒वा॒धुः । शि॒रो॒य॒द॒स्य
 चै॒त॒नो॒वि॒त॒क्षत् स्व॒यं दा॒स॒उ॒रो॒अं॒सा-
 व॒पि॒ग्ध ॥ ५ ॥

न
 मा
 गरन्

न
 माम्
 अगिरन्
 (ग॒नि॒गर॒जे॒ले॒टि
 इत्य॒त्ये॒न॒नाप्)

नहीं
 मुझ को
 निगला

नद्यः

नद्यः

नदियों ने

मातृ॒त॒माः

मातृ॒भ्योऽप्य॒-
 धिकाः

मात॒ओं से भी
 अधिक

क०मं०१ स०१५८ सं०५ (४२०४)

दासाः	दस्यवः	दस्युओं ने
यत्	यदा	जब
इम्	एनम्	इस को
सुऽसमुद्धम्	सुवद्धम्	खूब बंधे हुए को
अवऽअधुः	नीचैः पातितवन्तः	नीचे गिराया
शिरः	शिरः	सिर को
यत्	यदा	जब
अस्य	अस्य	इस के
चैतनः	चैतनः	चैतन ने
विऽतच्छत्	अच्छिदत्	काटा
स्वयम्	स्वयम्	अपने आप

(४२०५) अ० सं० १५८ सं० ५

दासः

दस्युः

दस्यु ने

उरः

उरः

छाती को

अंसौ

स्कन्धौ

मोंढों को

अपि

अपि

भी

गध०

हतवान्

घायल किया

(हन्तेर्लङ्ङा-दसं
रूपम्)

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्विनौ !) मातृभ्योऽपि अधिकाः नद्यो मां
नाऽगितुं यदा एनम् सुवद्धम् (माम्) दस्यवोनीचैः
पातितवन्तः, यदा त्रैतनोदस्युरस्य मम शिरोऽच्छिदत्
(तदा सः) इदम् (एव) उरः स्कन्धौ (च) अपि
हतवान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्विनौ !) माताओं से भी अधिक नदियों
ने मुझे नहीं निगला जब इस खूब बंधे हुए (मुझ)
को दस्युओं ने नीचे डाल दिया, जब त्रैतन दस्यु ने

क०मं०१५०१५८मं०१ (४२०६)

इस (मेरे) सिरको काटा (तब वह) आप ही छाती
(और) कन्धों में भी घायल हुआ ॥ ५ ॥

अश्विनौदेवते, निचृद्नुष्टुप्छन्दः ८।८।७।८

दीर्घतमामामतेयो जुजुर्वान्द-
शमेयुगे । अपामर्थयतीनां ब्रह्माभव-
तिसारथिः ॥ ६ ॥

दीर्घऽतमाः	दीर्घतमाः	दीर्घतमा
मामतेयः	ममतायाःपुत्रः	ममता का पुत्र
जुजुर्वान्	वृद्धोवभूव	बूढ़ा होगया
दशमे	दशमे	दसवें में
युगे	युगे	युग में
अपाम्	अपाम्	जलों के

(४२०७) क्र०मं०१ स०१५८ सं०६

चर्थम्	अर्थम्	के लिये
यतीनाम्	गच्छन्तीनाम्	चलने वालों के
ब्रह्मा	स्तोता ब्राह्मणः	स्तुति करने वाला ब्राह्मण
भवति	अभवत् (लङ्घ्ये लट्)	हुआ
सारथिः	सारथिः	सारथि

संस्कृतार्थः ।

ममतायाः पुत्रोदीर्घतमा दशमेयुगे वृद्धोऽभवत्,
गच्छन्तीनामपामर्थं स्तोता ब्राह्मणः सारथिरभवत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

ममता का पुत्र दीर्घतमा दशवें युग में वृद्ध
हुआ, चलने वाले जलों के लिये स्तोता ब्राह्मण
सारथि हुआ ॥ ६ ॥

इत्यष्टपञ्चाशदुत्तरशततम् सूक्तम् ।

क० सं० १५८ सं० १ (४२०६)

इस (मेरे) सिरको काटा (तब वह) आप ही छाती
(और) कन्धों में भी घायल हुआ ॥ ५ ॥

अश्विनौदेवते, निचृद्नुष्टुप्छन्दः ८।८।७।८

दीर्घतमामामतेयो जुजुर्वान्द-
शमेयुगे । अपामर्थं यतीनां ब्रह्माभव-
तिसारथिः ॥ ६ ॥

दीर्घऽतमाः	दीर्घतमाः	दीर्घतमा
मामतेयः	ममतायाः पुत्रः	ममता का पुत्र
जुजुर्वान्	वृद्धो बभूव	बूढ़ा होगया
दशमे	दशमे	दसवें में
युगे	युगे	युग में
अपाम्	अपाम्	जलों के

(४२०७) क्र०मं०१ स०१५८ मं०६

चर्थम्	अर्थम्	के लिये
यतीनाम्	गच्छन्तीनाम्	चलने वालों के
ब्रह्मा	स्तोता ब्राह्मणः	स्तुति करने वाला ब्राह्मण
भवति	अभवत् (लङ्ग्ये लट्)	हुआ
सारथिः	सारथिः	सारथि

संस्कृतार्थः ।

ममतायाः पुत्रो दीर्घतमा दशमेयुगे वृद्धो बभूव,
गच्छन्तीनामपामर्थं स्तोता ब्राह्मणः सारथिरभवत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

ममता का पुत्र दीर्घतमा दसवें युग में वृद्धा
हुआ, चलने वाले जलों के लिये स्तोता ब्राह्मण
सारथि हुआ ॥ ६ ॥

इत्यष्टपञ्चाशदुत्तरशततम् सूक्तम् ।

क्र० मं० १ सू० १५९

(४२०८)

क्र० मं० १ सू० १५८ ।

द्यावापृथिव्यौदेवते, दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः—

१-५। एतत्सूक्तम् अग्निष्टोमे पृष्ठस्य षष्ठेऽहनि द्यावापृथिव्यनिधिः
ज्ञानम् (भा० ५।१८।१)

१ । 'प्रद्यावा-' इत्येषा द्यावापृथिव्येषशौ हविषोयाज्या च (भा० ३६।१)

सूक्त का भावार्थ ।

ऋत (अर्थात् सर्व हितकारी सृष्टिनियम) को बढ़ाने वाली और मनुष्यों की न्याईं चेतन और ज्ञान वाली महती द्यौ और पृथिवी की मैं स्तुति करता हूं, जो देवताओं की माताएँ अपने पुत्र देवताओं के साथ बुद्धिपूर्वक इस प्रकार जगत में नाना सुन्दर पदार्थों को सजाती हैं ॥ १ ॥ जब मैं द्यौ और पृथिवी का आह्वान करता हूं तब पिता द्यौ के छल रहित मन को और माता पृथिवी के महत्त्व और निजबल को चिन्तन करता हूं, इन बहुत वीर्य वाले माता पिता ने जीवसमूह को उत्पन्न करके उनके लिये बहुत प्रकार से पुष्कल अन्न को रचा है ॥ २ ॥ हे द्यौ और पृथिवी ! आपके इन शुभकर्मा और चतुर पुत्रों ने पहले चेतन आप दोनों को उत्पन्न किया, आप दोनों स्थावर और जंगम के सत्य की रक्षा करने के लिये आकाश में छलरहित सूर्य को (जो सत्य का आदर्श है) धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उन सुन्दर मनवाले और बुद्धिमान पुत्रों ने एक स्थान से उत्पन्न होने वाली और एकट्ठी रहने वाली इन जोड़ली बहनों को माप लिया है, ये प्रकाश वाले बुद्धिमान पुत्र ऊपर के आकाश और अन्तरिक्ष में नित्य नपुताओं को बुनते हैं (अर्थात् नित्य

(४२०९) क्र०सं०१सू०१५९ मं०१

नई सृष्टियां बनाने हैं)॥४॥ हे द्यौ और पृथिवी ! हम आज सखिता
देवकी प्रेरणा में वर्तमान होकर आप से उस उत्तम धन अर्थात्
आन्तरिक प्रकाश को मांगते हैं, आप द्वारा वाले मन के साथ
हमारे लिये सुन्दर निवासस्थान और संजड़ी गाँवों से युक्त धन
को देंगे ॥ ५ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते, निचृज्जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

प्र॒द्या॒वा॒य॒ज्ञैः॑ पृ॒थि॒वी॒ ऋ॒ता॒व॒धा॒

म॒ही॒स्तु॒षे॒वि॒द॒धे॒षु॒प्र॒चे॒त॒सा॒ । दे॒वे-

भि॒र्ये॒दे॒व॒पु॒त्रे॒सु॒दं॒स॒से॒त॒था॒धि॒या॒वा॒र्या-

णि॒प्र॒भू॒ष॒तः॑ ॥ १ ॥

प्र	प्र+	--
द्यावा	द्यावा+	-
यज्ञैः	यज्ञैः	यज्ञों से
पृथिवी०	द्यावा+पृथिवी, द्यावापृथिव्यौ	द्यौ और पृथिवी को

क्र०सं०१ स०१५९सं०१ (४२१०)

ऋतऽवधा	ऋतस्य वर्धयिष्यौ	ऋत के बढ़ाने वालिओं को
मही०	महत्यौ	बड़ियों को
स्तुषे	प्र+स्तुषे, प्रस्तौमि (पुनश्चव्यस्ययः)	मैं खूब स्तुति करता हूँ
विदथेषु	विद्वत्सु (भा०को०)	विद्वानों में
प्रचेतसा	ज्ञानवत्यौ	ज्ञानवालिओं को
देवेभिः	देवैः	देवताओं के साथ
ये०	ये	जो दोनों
देवऽपुत्रे०	देवाः पुत्राययोस्ता दृश्यौ, देवमातरा वित्यर्थः	देवताओं की माताएँ
सुदंससा	शोभनकर्मोपेते	सुन्दर कर्मों वाली
इत्था	एवम्	इस तरह

(४२११) क्र०सं०१ स०१५९ मं०१

धिया

बुद्ध्या

बुद्धि से

वार्याणि

वरणीयानि

वरने योग्यों को

प्रभूषतः

प्रकर्षेण भूषयतः

खूब सजाती हैं

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) ऋतस्य वर्धयिष्यो विद्वत्तु ज्ञानवत्यौ महत्यौ द्यावापृथिव्यौ यज्ञैः प्रस्तौमि, शोभनकर्मोपेते ये देवमातरौ देवैः (सह) एवं बुद्ध्या वरणीयानि (वस्तुनि) प्रकर्षेण भूषयतः ॥ १ ॥ ;

भाषार्थः ।

मैं ऋत के बढ़ाने वाली (और) विद्वानों में ज्ञान वाली महती द्यौ और पृथिवी को यज्ञों द्वारा स्तुति करता हूँ जो सुन्दर, कर्मोंवाली देवमाताएँ देवताओं के साथ इस प्रकार बुद्धि से बरने योग्य वस्तुओं को खूब सजाती हैं ॥ १ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते, जगती उन्दः १२।१२।१२।१२

उतमन्ये पितरद्रुहो मनो मात-

क्र०सं०१ सू०१५९सं०२ (४२१२)

महि॒स्वत॒व॒स्तद्वी॒मभिः॑ । सु॒रेत॑-
सा॒पित॒राभू॑मचक्रतु रु॒रुप्र॒जायाअ॑-
मृतं॒वरी॑मभिः ॥ २ ॥

उ॒त

अपिच

और भी

म॒न्ये

चिन्तयामि

मैं चिन्तन करता हूँ

पि॒तुः

पितुः

पिता के

अ॒द्रु॒हः

द्रोहरहितम्
(द्वियातीर्थेष्वष्टौ)

द्रोह से रहित को

म॒नः

मनः

मन को

मा॒तुः

मातुः

माता के

महि॒

महत्त्वम्

महत्त्व को

(४२१३) क्र०म०१ सू०१५९म०२

स्वऽलवः	निजबलम्	निज बल को
तत्	तयोः (सुलुक्)	उन के
हवीमऽभिः	आह्वानैः	आह्वानों से
सुऽरेतसा	बहुवीर्योपेतौ	बहुत वीर्य वाले
पितरा	पितरौ	माता और पिताने
भूम	जीवसमूहम्	जीवसमूह को
चक्रतुः	चक्रतुः	क्रिया है
उक्त	विस्तृतम्	फैले हुए को
प्रऽजायाः	प्रजायाः	प्रजा के
अमृतम्	अन्नम् (आ०को०)	अन्न को
वरीमऽभिः	बहुप्रकारः	बहुत प्रकारों से

म०मं० १६०१५९ सं० ३ (४२१४)

संस्कृतार्थः ।

(अहं द्युरूपस्य) पितुर्द्रोहरहितं मनः(पृथिवीरूपा-
याः) मातुश्च महत्त्वं निजबलम् (च) तयोराह्वानैः
चिन्तयामि, बहुवीर्योपेतौ पितरौ जीवसमूहं (उत्पा-
दितवन्तौ) बहुप्रकारैः प्रजायाः(अर्थम्) विस्तृतमन्नम्
(च) सम्पादितवन्तौः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

मैं (द्यूरूप) पिता के द्रोहरहित मन को और
(पृथिवी रूप) माता के महत्त्व (और) निज बल को
उन दोनों के आह्वानों के साथ चिन्तन करता हूँ,
बहुत वीर्यवाले माता और पिता ने जीवसमूह को
(उत्पन्न किया है) (और) बहुत प्रकारों से प्रजाओं के
(लिये) विस्तृत अन्न को बनाया है ॥ २ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते, जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

ते॒सू॒नवः॒ स्व॒प॒सः॒ सु॒दं॒स॒सो॒ म॒ही
ज॒ज्ञु॒र्मा॒तरा॒पूर्व॒चित्तये॑ । स्था॒तु॒प्र॒च
स॒त्यं॒ ज॒ग॒त॒प्र॒च॒ध॒र्म॒णि॒ पु॒त्र॒स्य॒पा॒थः
प॒द॒म॒द्व॒या॒वि॒नः॑ ॥ ३ ॥

(४२१५) अ० सं० १५१ म० ३

ते	ते	वे
सूनवः	पुत्राः	पुत्र
सुऽअपसः	कर्मकुशलाः	कर्म में चतुर
सुऽदंससः	शुभकर्माणः	शुभ कर्म वाले
मही०	महत्यौ	बड़ियों को
अक्षुः	उत्पादितवन्तः	उत्पन्न किया
मातरा	मातरौ	दोनों माताओं को
पूर्वऽचित्तये	पूर्व चेतनतार्थम्	पहले चेतनताके लिये
स्थातुः	स्थावरस्य	स्थावर के
च	(पूरणः)	—
सत्यम्	सत्यम्	सत्य को

क०मं०१ सू०१५९ मं०३ (४२१६)

जगत्:	जङ्गमस्य	जंगम के
च	च	और
धर्मणि	धारणे	धारण करने में
पुत्रस्य	पुत्रसमूहस्य (जातवेकवचनम्)	पुत्रों के
पाथः	रक्षथः	रक्षा करती हो
पदम्	स्थानम्	स्थान को
अद्वयाविनः	छलरहितस्य	छल से रहित के

संस्कृतार्थः ।

(हे द्यावापृथिव्यौ !) शुभकर्मणः कर्मकुशलाः (च)
ते पुत्रा महत्यौ मातरौ (युवाम्), पूर्वचेतनतार्थमुत्पादि-
तवन्तौ, (युवाम्) स्थावरस्य जङ्गमस्य च सत्यं धारणार्थं
छलरहितस्य (सूर्यरूपस्य) पुत्रस्य स्थानं रक्षथः ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

(हे द्यौ और पृथिवी !) शुभ कर्म करने वाले (और)
कर्म में कुशल उन पुत्रों ने महती माता रूप आप को

(४२१७) अ० सं० १५९ पं० ४

पहिले चेतनता के लिये उत्पन्न किया (आप दोनों)
 स्थावर और जंगम के सत्य को धारण करने के लिये
 छल रहित (सूर्यरूप) पुत्र के स्थान की रक्षा करती
 हो ॥ ३ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते, जगती छन्दः १२२१२२१२२१२

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो

जामी सद्यो नीमिथुना समोकसा । न-

व्यं न व्यंतन्तु मातन्वते दिवि समुद्रे

अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥

ते

ते

उन्होंने

मायिनः

प्रज्ञावन्तः

बुद्धिमानों ने

ममिरे

मितवन्तः

साप लिया है

सुप्रचेतसः

समनस्विनः

सुन्दर मन वालों ने

अ०सं०१क०१५९ सं०४ (४२१८)

जामी०	भगिन्यौ	दोनों बहिनों को
सऽयोनी०	एकस्थानादुत्पन्ने	एक स्थान से उत्पन्न हुआओं को
मिथुना	मिथुनभूते	जोड़लियों को
{ समऽपो- केसा	समानस्थाने	समान स्थान वालों को
{ नव्यम् ऽनव्यम्	नित्यनवीनम्	नित्य नए को
तन्तुम्	तन्तुम्	तन्तु को
आ	आ+	-
तन्वते	आ+तन्वते, वयन्ति (भा०को०)	बुनते हैं
दिवि	दिवि	धौ में

(४२१९) क०भं०१ स०१५९ मं०३

समुद्रे	अन्तरिक्षे (निघं १।३)	अन्नरिक्ष में
चान्तः०	मध्ये	बीच
कवयः	मेधाविनः	बुद्धिमान
सुदीप्तयः	सुष्टुद्योतमानाः	खूब प्रकाश वाले

हंस्कृतार्थः ।

ते सुमनस्विनः प्रज्ञावन्तः (च पुत्राः) एकस्थाना-
दुत्पन्ने समानस्थाने (च) मिथुनभूते भगिन्यौ
मितवन्तः (ये) सुष्टुद्योतमाना मेधाविनो दिवि सन्त-
रिक्षस्य मध्ये (च) नित्यनवीनं तन्तुं वयन्ति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

उन सुन्दर मन वाले (और) बुद्धिमान (पुत्रों) ने एक
स्थानसे उत्पन्न हुई (और) एक स्थान में रहने वाली
जोड़ली बहनों को माप लिया है (जो) खूब प्रकाश
वाले मेधावी यौ में (और) अन्तरिक्ष के बीच में नित
नए तन्तुओं को बुनते हैं ॥ ४ ॥

क्र०सं० १ स० १५९१:०५ (४२३०)

द्यावापृथिव्यौदेवते, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

तद्वाधोअद्यसवितुर्वरेण्यं वयं

देवस्यप्रसवेमनामहे । अस्मभ्यंद्या-

वापृथिवीसुचेतुना रयिंधत्तं वसुमन्तं

शतग्विनम ॥ ५ ॥

तत्	तत्	उस को
राधः	धनम्	धन को
अद्य	अद्य	आज
सवितुः	सवितुः	सविता के
वरेण्यम्	श्रेष्ठतमम्	सब से श्रेष्ठ को
वयम्	वयम्	हम

(४२२१) अ० १०१ सू० १५९ पं० ५

देवस्य	देवस्य	देव के
प्रऽसवे	प्रेरणे	प्रेरणा में
मनामहे	याचामहे (निघं० ३।१९)	हम माँगते हैं
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
{ द्यावापृ- थिवी०	हे द्यावापृथिव्यौ !	हे द्यौ और पृथिवी
सुऽचेतुना	दयामयेन चेतसा	दयालु चित्त से
रयिम्	धनम्	धन को
धत्तम्	धारयतम्	धारण करो
वसुऽमन्तम्	निवास योग्य- स्थानोपेतम्	निवास के योग्य स्थान वाले को
शतऽग्विनम्	शतेन गोभिर्युक्तम्	सौ गौओं वाले को

का०घं०१ सू०१५९ मं०५ (४२२२)

संस्कृतार्थः ।

हे द्यावापृथिव्यौ ! अद्य देवस्य सवितुः प्रेरणे
(संस्थिताः) वयं तत् श्रेष्ठतमं धनं याचामहे (युवाम्)
अस्मभ्यं दयामयेन चेतसा निवासयोग्यस्थानोपेतं
शतेन गोभिर्युक्तम् (च) धनं धारयतम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे द्यौ और पृथिवी ! आज सवितादेवकी प्रेरणा
में (ठैरे हुए) हम आप से उस अत्यन्त श्रेष्ठ धन
को माँगते हैं, आप हमारे लिये दयालु चित्त से निवास
योग्य स्थान से युक्त (और) सौ गौओं वाले (धन)
को धारण करें ॥ ५ ॥

इत्येकोनषष्ट्यधिकशततमं सूक्तम् ।

(४२२३)

अ०मं०१सू०१६०

अ०मं०१ सू० १६० ।

उच्यपुत्रोदीर्घतमाश्रुषिः, द्यावापृथिव्यौदेवते ।

विनियोगः-

१-५ । एतत्सूक्तं चतुर्विंशोऽहनि वैश्वदेवशस्त्रे द्यावापृथिव्यनि-
विद्धानम् (आ०७।४)१-५ । एतत्सूक्तं पृष्ठद्यामिप्लवषडहयोद्वितीयेऽहनि वैश्वदेवे
द्यावापृथिव्यं निविद्धानीयम् (आ०७।६)१-५ । एतत्सूक्तं आमिप्लविकाद्वितीयादङ्गः पृष्ठत्रयस्य द्वितीये
ऽहनि च विनियुक्तम् (आ०७।१०)१ । 'तेहि द्यावापृथिवी'-इति आद्या आश्विनशस्त्रे विनियुक्ता ।
(आ० ६।५)

भावार्थ ।

ये दोनों द्यौ और पृथिवी जो अन्तरिक्ष संबंधी लोकों को ज्ञानपूर्वक धारण करती हैं जो उच्च जन्म वाली हैं और जो प्राणियों की निवासस्थान हैं, सचमुच सब को सुख देने वाली हैं, इन दोनों के बीच में पवित्र सूर्य नियम से चलता है ॥ १ ॥ अत्यन्त विस्तार वाले किसी से न जोते जाने वाले, अत्यन्त निडर सुन्दर रूप वाले महान द्यौ और पृथिवी माता पिता बन कर प्राणियों की रक्षा करते हैं और पिता द्यौ सब को रंग और रूप से आच्छादन करता है ॥ २ ॥ द्यौ और पृथिवी को धारण करने वाला उनका पुत्र सूर्य जो पवित्र करने की शक्ति वाला और बुद्धिमान है अपनी शक्ति से सब प्राणियों को पवित्र करता है वह अनेक रंगों वाली धेनु पृथिवी को और बहुत बीस बाले बैल

क्र०मं०१ क्र०११०मं०१ (४२२४)

द्यौ को भी पवित्र करता है और सब दिन इस द्यौ से चमकते हुए दिन रूप दूध को दोहन करता है ॥ ३ ॥ कर्मकुशल देवताओं के बीच में वह सबसे अधिक कर्मकुशल है जिसने द्यौ और पृथिवी को बनाया है जिसने बहुत बुद्धि से इन लोकों को नापलिया है और जीर्ण न होने वाले खंभोंसे अच्छी तरह थांभा है ॥ ४ ॥ हे द्यौ और पृथिवी ! आप हम से स्तुति किये जाकर बहुत कीर्ति और महान राज्यबल को दें जिस से हम सदा चारों ओर प्रजाको फैलावें, आप हम में सराहने योग्य शारीरिक बल को प्रेरण करें ॥ ५ ॥

द्यावापृथिव्यौदेवते, जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२

तेहिद्यावापृथिवीविश्वशंभुव ऋता-
वरीरजसोधायत्कवी । सुजन्मनी
धिषणेअन्तरीयते देवोदेवीधर्मणा
सूर्यःशुचिः ॥ १ ॥

ते०

ते

वे दोनों

हि

खल

सचमुच

(४२२५) क्र०मं०१ सू०११० मं०१

{ द्यावा पृथिवी०	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ और पृथिवी
{ विप्रवऽग्रं- भुवा	विश्वस्यसुख- यिज्ञ्यौ	सब की सुख देने वालीं
ऋतऽवरी	ऋतवत्यौ	नियम पर चलने वालीं
रजसः	रजसः +	-
{ धारयत् ऽकवी	रजसः + धारय- त्कवी, अन्तरिक्ष- स्य ज्ञानपूर्वकं धारयिज्ञ्यौ	अन्तरिक्ष को ज्ञान- पूर्वक धारण करने वालीं
सुऽजन्मनी	उच्चजन्मवत्यौ	ऊंचे जन्म वालीं
धिषणो०	निवासस्थाने	निवास स्थान
अन्तः०	अन्तर्गले	बीच में

क०सं०१क०१६० सं०१ (४२२६)

ई॒य॒ते	गच्छति	चलता है
दे॒वः	दे॒वः	दे॒व
दे॒वी०	द्योतमानयोः	प्रकाशवालियों के
धर्म॑णा	नियमेन	नियम से
सूर्यः॑	सूर्यः	सूर्य
शुचिः॑	पवित्रः	पवित्र

संस्कृतार्थः ।

ते अन्तरिक्षस्य ज्ञानपूर्वकं धारयिष्यौ उच्चजन्म-
वत्यौ (जीवानाम्) निवासस्थाने (च) द्यावापृथिव्यौ
विश्वस्य सुखयिष्यौ खलु (स्तः, तयोः) द्योतमानयो-
रन्तराले पवित्रः सूर्यदेवः नियमेन सञ्चरति ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

वे दोनों अन्तरिक्ष को ज्ञान पूर्वक धारण करने
वाली उच्चजन्मवाली (और जीवोंके) निवास स्थान

(४२२७) क्र०मं०१ अ०११०.सं०२

द्यौ और पृथिवी सचमुच सब को सुख देने वाली
(हैं,उन) प्रकाश वालियों के बीच में पवित्र सूर्यक्षेप
नियम से चलते हैं ॥ १ ॥

द्यावापृथिव्योदेवते, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

उ॒रु॒व्य॒च॒सा॒म॒हि॒नी॒अ॒स॒प्र॒च॒ता॒

पि॒ता॒मा॒ता॒च॒भु॒व॒ना॒नि॒र॒क्ष॒तः । सु॒धृ॒-

ष्ट॒मे॒व॒पु॒ष्ये॒न॒रो॒द॒सी॒ पि॒ता॒य॒त्सी॒-

म॒भि॒रु॒पै॒र॒वा॒स॒य॒त् ॥ २ ॥

{ उ॒रु॒व्य॒- च॒सा	अतिविस्तीर्णं	अत्यन्त विस्तीर्ण
म॒हि॒नी॒०	महत्यौ	महान
अ॒स॒प्र॒च॒ता॒	अभिभवितुम- शक्ये (आ०को०)	न जीते जाने वाले

क्र०सं०१२०१६० सं० २ (४२२८)

पि॒ता

पिता

पिता

मा॒ता

माता

माता

च

च

और

भुव॑नानि

भुवनानि

भुवनों को

रक्ष॑तः

रक्षतः

रक्षा करते हैं

सु॒धृष्ट॑मे

अतिप्रगल्भे

अत्यन्त निडर

व॒पु॒ष्ये॑३०

सुरूपे
(भा०को०)

सुन्दर रूप वाली

न

इव

की न्याई

रो॒द॑सी०

द्यावापृथिव्यौ

द्यौ और पृथिवी

पि॒ता

पिता

पिता

यत्

यत्

जो

(४२२९) क्र०म०१सू०१६ ०म०३

सीम्	सर्वम्	सब को
अभि	अभि +	-
रूपैः	रूपैः	रूपों से
अवासयत्	अभि + अवासयत् आच्छादयति	ढकता है

संस्कृतार्थः ।

अतिविस्तीर्णे अभिभवितुमशक्ये अतिप्रगल्भे
महत्तयौसुरूपेइव द्यावापृथिव्यौ पितामाता च (भूत्वा)
भुवनानि रक्षतः, पिता (च) सर्वं रूपैराच्छादयति । १।

भाषार्थः ।

अत्यन्त विस्तीर्ण, न जीते जाने वाले अत्यन्त
निडर (और) मानो सुन्दर रूप वाले महान द्यौ और
पृथिवी पिता और माता (बनकर) भुवनों की रक्षा करते
हैं, पिता सब को रूपों से आच्छादन करता है ॥ २ ॥

द्यावापृथिव्यो देवते, जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२

सवक्त्रिः पुचः पिचोः पुविचवान्

अ०सं०१ सू०१६० मं०३ (४२१०)

पुनाति॑धीरो॒भुवनानि॑मायया॑ । धेनुं
च॒ष्टिनिं॑ष्टप्र॒भंसुरे॑तसं वि॒प्रवा॑हाशु॒क्रं
पयो॑अस्यधु॒क्षत ॥ ३ ॥

सः

सः

वह

व॒क्त्रिः

बो॒ढा

ढोने वाला

पु॒त्रः

पु॒त्रः

प॒त्र

पि॒त्रोः

मा॒तापि॒त्रोः

मा॒ताऔरपि॒ताका

प्रवि॒त्रऽवा॒न्

पा॒वनशक्ति॑यु॒क्तः

पवि॒त्रकर॑ने की
शक्ति॑ वाला

पु॒नाति॑

पा॒वय॑ति

पवि॒त्रकर॑ता है

धी॒रः

धी॒मान्

बु॒द्धिमा॑न

(४२३१) क्र०सं०१सू०११० सं०३

भुवनानि	भूतजातानि	सब प्राणियों को
मायया	शक्त्या	शक्ति से
धेनुम्	धेनुम्	गौ को
च	च	और
पृश्निम्	बहुवर्णम्	बहुतरंगवाली को
वृषभम्	वलीवर्दम्	बैल को
सुरेतसम्	बहुवीर्योपेतम्	बहुत वीर्य वाले को
विप्रवाहा	सर्वाणि अहानि	सब दिन
शुक्रम्	प्रदीप्तम्	चमकते हुए को
पयः	दुग्धम्	दूध को
अस्य	अस्य	इस के

अ० सं० १ सू० १६० मं० ४ (४२३२)

धुक्षत

दोग्धि

दोहन करता है

संस्कृतार्थः ।

स पावनशक्तियुक्तोर्ध्वमान् मातापित्रोर्वोढा
(च सूर्यरूपः) पुत्रः (स्व-) शक्त्या भूतजातानि पाव-
यति, बहुवर्णाम् (पृथिवीरूपाम्) धेनुं बहुवीर्योपेतम्
(च द्युरूपम्) बलीवर्दम् पावयति) (सः) अस्य प्रदीप्तं
दग्धं सर्वाण्यहानि दोग्धि ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

वह पवित्र करने की शक्ति वाला, बुद्धिमान
और माता और पिता के ढोने वाला (सूर्य रूप) पुत्र
(अपनी) शक्ति से सब प्राणियों को पवित्र करता है,
(और) बहुत रंगों वाली (पृथिवी रूप) गौ को (और)
बहुत वीर्य वाले (द्यौ रूप) बैल को (पवित्र करता
है, वह) इसके चमकते हुए दूध को सब दिन दोहन
कहता है ॥ ३ ॥

आवापृथिव्यौदेवते, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

अयं देवानामपसामपस्तमो यो

जजानरोदसीविश्वशम्भुवा । वियो-

(४२३३) अ०मं०१सू०१६०मं०४

म॒मे॒र॒ज॒सी॒सु॒क्र॒तू॒य॒या ॥ ज॒रे॒भिः॒रु॒क्-
 म॒भ॒ने॒भिः॒स॒मा॒नृ॒चे ॥ ४ ॥

अ॒य॒म्	अ॒य॒म्	य॒ह
दे॒वा॒ना॒म्	दे॒वा॒ना॒म् (म॒ध्ये)	दे॒व॒ता॒ओं के (बी॒च में)
अ॒प॒सा॒म्	क॒र्म॒कु॒श॒ला॒ना॒म्	क॒र्म में च॒तु॒रों के
अ॒पः॒ऽत॒मः	प्र॒कृ॒ष्ट॒क॒र्मा	स॒ब से ब॒ड़ा क॒र्म कर॒ने व॒ला
यः	यः	जि॒स ने
ज॒जा॒न	उ॒त्पा॒दि॒त॒वा॒न्	उ॒त्प॒न्न कि॒या
रो॒द॒सी०	द्या॒वा॒पृ॒थि॒व्यौ	धौ औ॒र पृ॒थि॒वी को
वि॒श्व॒ऽश-	स॒र्व॒स्य॒सु॒ख॒यि॒त्र्यौ	स॒त्र के सु॒ख दे॒ने
म॒भु॒वा		वा॒लियों को

क्र०सं०१ सू०१९० प्र०४ (४२३४)

वि	वि+	-
यः	यः	जिस ने
ममे	वि+ममे, मितवान्	नाप लिया
रजसी०	लोकौ	दोनों लोकों को
सुक्रतुऽयथा	बहुबुद्ध्या	बहुत बुद्धि से
अजरेभिः	अजीर्णैः	न जीर्ण होने
स्तम्भनेभिः	स्तम्भैः	वालों से
सम्	सम्यक्	अच्छी प्रकार
आनुचे	स्थापितवान्	स्थापन किया

संस्कृतार्थः ।

अयं कर्मकुशलानां देवानाम् (मध्ये) प्रकृष्ट-
कर्मा यः सर्वस्य सुखयित्रीं यावापृथिव्यो उत्पादित-

(४२१५) न०सं०१ ख०११० सं०५

वान्, यो बहुबुद्ध्या (इमौ) लोकौ मितवान्, अजीर्णैः
स्तम्भैः (च) सम्यक् स्थापितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

यह कर्मकुशल देवताओं के (बीच में) सब से
बड़ा कर्म करने वाला है जिसने द्यौ और पृथिवी
को उत्पन्न किया है, जिसने बहुत बुद्धि से (इन)
दोनों लोकों को नाप लिया है (और) जीर्ण न होने
वाले खंभों से अच्छी प्रकार थाँभा है ॥ ४ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते, जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२

तेनो॑ गु॒णाने॑महि॒नीमहि॒श्रवः॑

क्ष॒त्रं द्या॒वापृ॒थिवी॒धास॒थो बृ॒हत् । ये-

नाभि॒क्कृ॒ष्टीस्त॒तना॑मवि॒प्रव॒हा प-

ना॒ट्यमो॒जो अ॒स्मेसमि॑न्वतम् ॥ ५ ॥

क्र०सं०१ अ०१६० सं०५ (४२३३)

ते०	ते	वे दोनों
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
गणाने	स्तूयमाने (कर्मणिकर्तृप्रत्ययः)	स्तुति किये जाकर
महिनी०	हे महत्यौ !	हे महान
महि	प्रभूताम्	बड़ी को
श्रवः	कीर्तिम्	कीर्ति को
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्यबल को
{ द्यावापृ- थिवी	हे द्यावापृथिव्यौ !	हे द्यौ और पृथिवी
धासथः	धत्तम् (लेट्यडागमः)	धारण करो
बृहत्	महत्	महान को

(४२३७) म०प्र०१ सू०१३० मं०५

येन	येन	जिस से
अभि	अभितः	चारों ओर से
कृष्टीः	प्रजाः	प्रजाओं को
ततनाम	विस्तारयाम	हम फैलावें
विश्वहा	सर्वाणि दिनानि	सब दिन
पनाटयम्	स्तुत्यम्	स्तुति के योग्य को
भोजः	शरीरबलम्	शरीर के बल को
अस्मे०	अस्मासु	हम में
सम्	सम्	-
इन्वतम्	सम् + इन्वतम्, प्रेरयतम्	प्रेरण करो

संस्कृतार्थः ।

हे महर्ष्यो ! यावापृथिव्यौ ! स्तूयमाने ते (युवाम्)

क०मं०१ सू०१६०मं०५ (४९३८)

अस्मभ्यं प्रभूतां कीर्तिं महत् क्षत्रबलम् (च) धत्तं येन
(वयम्) सर्वाणि दिनानि अभितः प्रजा विस्तारयाम
(युवाम्) अस्मासु स्तुत्यं शरीरबलं प्रेरयतम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे महान द्यौ और पृथिवी ! स्तुति किगयेष वे
(आप) हमारे लिये बहुत कीर्ति और महान राज्य
बल को धारण करें जिससे हम सब दिन चारों ओर
प्रजाओं को फैलावें, आप दोनों हम में स्तुति के
योग्य शरीरबल को प्रेरण करें ॥ ५ ॥

इति षष्ट्यधिकशततमं सूक्तम् ।

(४२३९)

क्र०मं० १ सू० १६१

क्र०मं० १ सू० १६१।

ऋभुदेवता, दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोग :--

१-१३। “व्यूल्हे दशरात्रे षष्ठेऽहनि वैश्वदेवशस्त्रे आर्भवंनिविद्धानं
द्विप्रतीकम्” तत्र ‘किमुश्रेष्ठः-’ इत्येतदन्त्यवर्जं प्रतीकम्
(आ० ८।८।८) ॥

सूक्त का भावार्थ ।

सब से श्रेष्ठ और सब से जवान अग्निदेव किस लिये हमारे पास आए हैं ? क्या दूत कर्म के लिये देवताओं ने इन को भेजा है ? हे आता ! अग्नि ! हमने बड़े कुल से उत्पन्न चन्द्रमा रूपी चमस की निन्दा नहीं की है, हमने तो काष्ठ के बने हुए की विभूति को कथन किया है ॥ १ ॥ अग्नि ने उत्तर दिया, हे सुधन्वा के पुत्रो ! मुझे देवताओं ने यह कहने के लिये तुम्हारे पास भेजा है कि एक चमस के चार बनादो ऐसा करने से तुम्हें देवताओं के साथ यज्ञ में भाग मिलेगा ॥ २ ॥ ऋभुओं ने देवताओं से कहा कि आपने जो अपने दूत अग्नि के द्वारा कहा है कि घोड़ा बनाओ रथ बनाओ और गौ को बनाओ और माता पिता को जवान करो, ये सब कर्म करके पीछे हम आपके पास आएंगे ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ ! जब आप ये सब कर चुके तब आपने पूछा कि वह दूत कहां है जो हमारे पास आया था, जब जगत के निर्माणकर्त्ता त्वष्टा ने चार किये हुए चमस को देखा तो देवपत्नियों के सामने अत्यन्त लज्जित हुए कि जो कर्म मुझ से न बन पड़ा वह ऋभुओं ने कर दिया ॥ ४ ॥ जब त्वष्टा ने कहा कि जिन ऋभुओं ने देवताओं के पीने के चमस की निन्दा की है उनको हम मारें तब सोम

ऋ०मं०१ सू०१६१

(४२४०)

निष्पीडन के समय ऋभुओं ने अपना नाम बदल कर ऋतु रख लिया, तब त्वष्टा की कन्या ने इनको बर लिया ॥ ५ ॥ जब इन्द्र ने ऋभुओं के बनाए हुए घोड़ों को और अश्विनों ने रथ को जोड़ा और बृहस्पति ने सब रूपों वाली गौ को हांका, तब ऋभु-विश्व और वाज ये दोनों पुण्यकर्मा ऋभु देवताओं के प्रति गए और यज्ञ में भागको प्राप्त किया ॥ ६ ॥ हे सधन्वा के पुत्रो ! आपने कर्म करके चर्म से गौ को उत्पन्न किया, बड़े माता पिता (द्यौ और पृथिवी) को जवान बनाया, और घोड़े से घोड़े को उत्पन्न किया, तब रथ पर चढ़ कर देवताओं के समीप गए ॥ ७ ॥ देवताओं ने कहा कि हे सधन्वा के पुत्रो ! यह जलपान करो अथवा इस मूँज से निकले हुए रस को पीओ, यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है तो तृतीय सवन में तो अवश्य सोम से मद युक्त होना ॥ ८ ॥ एक ने कहा जल सब से महान है, दूसरे ने कहा अग्नि सब से महान है, तीसरे ने कहा सब दुःखों को सहने वाली पृथिवीदेवी सब से बड़ी है, ऐसे सत्य संभाषण करते हुए आपने चर्मसों को बनाया ॥ ९ ॥ एक ऋभु लंगड़ी गौ को जल के प्रति हांकता है, एक छुरे से काट कर मांस को तैयार करता है, एक सूर्यास्त होने से पहले कूड़े को दूर फक आता है, इन कर्मों में माता पिता ने पुत्रों को क्या सहायता दी ॥ १० ॥ हे वीर ऋभुओ ! आपने प्राणियों के कल्याण की इच्छा से ऊँचे स्थलों में घास को और नीचे स्थानों में जलों को उत्पन्न किया, जिस को कोई नहीं छिपा सकता ऐसे सूर्य के घर में आप सोए, इन सब कर्मों को पहले की समान अब क्यों नहीं करते ॥ ११ ॥ हे ऋभुओ ! जब आप सारे लोकों को छिपा कर चारों ओर फिर गए तब पजनीय माता पिता (द्यौ और पृथिवी) कहाँ थे, जिसने आप का हाथ पकड़ा है उसको आपने शरण देने का वचन दिया है, जिसने आप का नाम प्रख्यात किया है, उसको आपने सबका मुखिया बनाया है ॥ १२ ॥ हे ऋभुओ !

(४२४१) ऋ०मं०१सू०१६१मं०१

जब सूर्यमें सोकर उठे हुए आपने पूछा कि हे किसी से न छिपाये जाने वाले ! हम को किस ने जगाया तब बकरे ने इवान को जगाने वाला बताया, आपने साल भर में उस दिन को सबसे मुखिया बनाया ॥ १३ ॥ हे बलवान ऋभुओं ! आप की कामना करते हुए मरुत द्यौ के रस्ते चलते हैं, अग्नि पृथिवी पर वायु अन्तरिक्ष में और वरुणदेव जलरूप समुद्रों के रस्ते चलते हैं ॥ १४ ॥

ऋभवोदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

किमु॒श्रेष्ठः॑ किं॒यवि॑ष्ठो॒नआ॑जगन्
किमी॑यते॒दूत॑यं॒१क॑द्यदू॒चिम॑ । ननि॑-
न्दिम॑च॒मसं॑योम॒हाकु॑लोऽग्ने॒भ्रात॑-
र्द्रु॒णइ॒द्भ॒तिमू॑दिम ॥ १ ॥

किम्	किम् (अर्थम्)	किस (लिये)
ऊम्	(पूरणः)	-
श्रेष्ठः	श्रेष्ठः	श्रेष्ठ

प्र०मं०१ सू०१११मं०१ (४२४२)

किम्	किम् (अर्थम्)	किस (लिये)
यविष्ठः	युवतमः	सब से जवान
नः	अस्माकम्	हमारे
आ	आ +	-
अजगन्	आ+अजगन्, समापमागतवान्	पास आया है
किम्	किम्	क्या
इयते	आगच्छति	आता है
दूतयम्	दूतकर्म	दूत कर्म को
कत्	किम्	क्या
यत्	यत्	जो
ऊचिम	उक्तवन्तः स्मः	हमने कहा है
न	न	नहीं

(४२४३) क्र०मं०१ सू०१६१ मं०१

नि॒न्दि॒म	नि॒न्दि॒तव॒न्तः॒स्मः	हमने निन्दा की है
च॒म॒सम्	चमसम्	चमस को
यः	यः	जो
म॒हाऽकु॒लः	महाकुलोत्पन्नः	बड़े घराने का
अ॒ग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
भ्रा॒तः	हे भ्रातः !	हे भाई
द्रु॒णः	दारुनिर्मितस्य	काष्ठ के बने हुए की
इ॒त्	एव	हा
भू॒तिम्	विभूतिम्	विभूति को
ऊ॒दि॒म	उक्तवन्तः स्मः	हमने कहा है

संस्कृतार्थः ।

किम् (अर्थम्) श्रेष्ठो युवतमः (चाग्निः) भवन्त-

ऋ०मं० १ सू० १६१ मं० २ (४२४४)

समीपमागतवान्, किं दूतकर्मणे आगच्छति, यद्
(वयम्) उक्तवन्तःस्मः (तत्) किम्, हे भ्रातरग्ने! यो
महाकुलः (तम्) चमसं निन्दितवन्तः स्मः (वयं तु)
दारुनिमित्तस्य (तस्य) विभूतिमेव कथितवन्तः
स्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

किस (लिये) श्रेष्ठ (और) सब से जवान (अग्नि)
हमारे पास आए हैं, क्या दूत कर्म के लिये आए
हैं, जो हमने कहा है (वह) क्या (है,) हे भ्राता अग्नि!
जो उच्च कुल वाला है (उस) चमस की हमने निन्दा
नहीं की है हमने (तो उस) काष्ठ के बने हुए की विभूति
को ही कथन किया है ॥ १ ॥ (देखो पृ० ४०४-४०५)

ऋभवो देवताः जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

एकं चमसं चतरस्कणोतन तद्
वो देवा अभ्रवन्त तद्वागमम् । सौध-
न्वनाय दोषाकरिष्यथ साकं देवैर्यज्ञि-
या सोमविष्यथ ॥ २ ॥

(४२४५) क्र०मं०१ सू०१६१ मं०२

एकम्	एकम्	एक को
चमसम्	चमसम्	चमस को
चतुरः	चतुरः	चार को
कृणोतन	कुरुत	करो
तत्	एतत्	यह
वः	युष्मभ्यम्	आपके लिये
देवाः	देवाः	देवताओं ने
प्रवृत्तः	कथितवन्तः	कहा है
तत्	एतत् (अर्थम्)	इस (लिये)
वः	युष्मान्	आपको
पा	आ +	-

अ०सं०१ सू०१६१ सं०२ (४२४१)

अगमम्	आ+अगमम्, आगतोऽस्मि	आया हूं
सौधन्वनाः	हे सुधन्वनः पुत्राः!	हे सुधन्वा के पुत्रो
यदि	यदि	यदि
एव	एवम्	इस प्रकार
करिष्यथ	करिष्यथ	करोगे
साकम्	सह	साथ
देवैः	देवैः	देवताओं से
यज्ञियासः	यज्ञार्हाः	यज्ञ के योग्य
भविष्यथ	भविष्यथ	होगे

संस्कृतार्थः ।

हे सुधन्वनः पुत्राः ! एकंचमसं चतुरः कुरुत, एतद्
पुष्पभ्यं देवाः कथितवन्तः, (अहम्) एतत्- (अर्थम्)

(४२४७) अ०मं०१ सू०१६१मं०३

युष्मत-(समोपम्) आगतोऽस्मि, यद्येवं करिष्यथ
(तर्हि)देवैः सह यज्ञार्हाभविष्यथ ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे सुधन्वा के पुत्रो ! एक चमस के चार बना दो
यह तुम्हारे लिये देवताओं ने कहा है, मैं इस (लिये)
आपके पास आया हूँ, यदि इस प्रकार करोगे (तो)
देवताओं के साथ यज्ञ के योग्य बनोगे ॥ २ ॥

(देखो पृ० १०४)

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीत नाश्रवः
कतर्वोरथ उतेह कतर्वः । धेनुः कतर्वा
युवशा कतर्वाद्वा तानि भ्रातरनुवः क-
त्वेमसि ॥ ३ ॥

अग्निम्

अग्निम्

अग्नि को

दूतम्

दूतम्

दूत को

क्र०मं० १ स० २६१ मं० ३ (४२४८)

प्रति	प्रति	की ओर
यत्	यत्	जो
अब्रवीतन	यूयंकथितवन्तः	आपने कहा है
अश्वः	अश्वः	घोड़ा
कर्तव्यः	कर्तव्यः (कृत्यार्थे त्वन्प्रत्ययः)	करने योग्य
रथः	रथः	रथ
उत	च	और
इह	इह	यहाँ
कर्तव्यः	कर्तव्यः	करने योग्य
धेनुः	गौः	गौ
कर्त्वा	कर्तव्या	करने योग्य
युवशा	युवानौ	जवान

(४२४९) क०पं०१ ख०१६१पं०३

क॒र्त्त॒वा'	क॒र्त्त॒व्यौ	करने योग्य
द्वा	द्वौ	दोनों
तानि'	तानि	उन को
भ्रा॒तः	हे भ्रातरः ! (विमर्केःसुः)	हे भाइयो
ध॒नुः	पश्चात्	पीछे
वः	युष्मान्	आप को
क॒र्त्त॒वी	कर्माणि	कर्मों को
आ	आ +	-
इ॒म॒सि	आ+इमसि, आग मिष्यामः	हम आएंगे

संस्कृतार्थः ।

हे भ्रातरः ! (देवाः !) यद् यूयं दूतमग्निं प्रति
कथितवन्तः, इह अश्वः कर्तव्योरथश्च कर्तव्यः, धेनुः
कर्तव्या द्वौ (पितरौ च) युवानौ कर्तव्यौ (इति) एतानि

क्र०मं०१ स०१११मं०४ (४२५०)

कर्माणि (कृत्वा) पश्चात् (वयम्) युष्मान् (प्रति)
आगमिष्यामः ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे भाई (देवताओ) ! जो आपने दूत अग्नि को
कहा है कि यहाँ घोड़ा बनाना चाहिये और रथ
बनाना चाहिये, गौ बनानी चाहिये (और दोनों
माता पिताओं को) जवान बनाना चाहिये, इन
कर्मों को (करके) पीछे हम आपके (पास) आवेंगे ॥३॥

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

च॒क्ष॒वांस॑ । स॒च॒ष्ट॒भ॒व॒स्तद॑पृ॒च्छ॒त॒ क॒वे-
द॒म॒द्यः॑ स्यो॒दू॒ती॒न॒आ॒ज॒गन् । य॒दा
वा॒ख्य॒च॒च॒म॒सा॒ञ्च॒तुरः॑ कृ॒ता॒नादि॑-
क्व॒ष्टा॒ग्ना॒स्व॒न्त॒न्या॑निजे ॥ ४ ॥

च॒क्ष॒वांसः॑	कृत॑वन्तः	किया है
--------------	-----------	---------

(४२५१) क्र० सं० १. ए० १६१ सं० ४

ऋभ॒वः

हे ऋभ॒वः !

हे ऋभुओ

तत्

तदा

तव

अ॒पृ॒च्छ॒त

अ॒पृ॒च्छ॒त

तुमने पूछा

क॒व

क॒व

कहाँ

इ॒त्

(पूरणः)

—

अ॒भू॒त्अ॒स्ति
(लडर्थेलुङ्)

है

यः

यः

जो

स्यः

सः

वह

दू॒तः

दू॒तः

दू॒त

नः

अ॒स्मा॒न्

हम को

आ

आ +

—

अ॒ज॒ग॒न्

आ+अ॒ज॒ग॒न्,
आगच्छत्

आया था

क्र०सं०१ सू०१६१सं०४ (४२५२)

यदा	यदा	जब
अवऽअख्यत्	दृष्टवान्	देखा
चमसान्	चमसान्	चमसों को
चतुरः	चतुरः	चारों को
कृतान्	कृतान्	किये हुआों को
आत्	तदा	तब
इत्	(पूरणः)	-
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
गनासु	स्त्रीषु	स्त्रियों में
अन्तः	मध्ये	बीच
नि	नि +	-

(४२५३) क्र०मं०१७०१३१ मं०५

पानजे

नि+आनजे,
लज्जितोबभूव
(छान्दसोऽनुनासिक-
लोपः)

लज्जित हुआ

संस्कृतार्थः ।

हे ऋभवः ! (यदा यूयम्) कृतवन्तस्तदाऽपृच्छत,
क्ववर्ततेसदूतोयोऽस्मान् प्राप्तवानाऽसीत्, यदात्वष्टा
चतुरः कृतान् चमसान् दृष्टवान् तदा स्त्रीषु मध्ये
लज्जितोबभूव ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे ऋभुओ ! (जब आप)कर चुके तब पूछा (कि)
कहाँ है वह दूत जो हमारे पास आया था, जब त्वष्टा
ने चमसों को चार बनाए हुए देखा तब (वह) स्त्रियों
के बीच में लज्जित हुए ॥ ४ ॥

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

इनामैनाद्वतित्वष्टायदब्रवीच्च-

ससंयेदेवपानमनिन्दिषुः । अन्या

क्र०सं०१ सू०१६१सं०५ (४२५४)

नामानि॑ कृणवते॒ सुते॑ सचा॒ अन्यैरे॑ना-
न॒क॒न्या॒॑इ॒नाम॑भिः॒स्परत् ॥ ५ ॥

ह॒नाम॑	ह॒नाम॑ (पू॒जार्थं बहु वचनम्)	हम॑ मारें
ए॒ना॒न्	ए॒ता॒न्	इन॑ को
इ॒ति	इ॒ति	ऐसा
त॒व॒ष्टा	त॒व॒ष्टा	त्वष्टा॑ ने
यत्	यदा	जब
अ॒ब्रवी॑त्	उ॒क्त॒वा॒न्	कहा
च॒म॒सम्	च॒म॒सम्	चमस॑ को
ये	ये	जिन्होंने
दे॒वऽपान॑म्	दे॒वा॒नां॑पा॒नसाध॑- नम	दे॒वताओं॑ के पीने के पात्र को

(४२५५) क्र०मं०१/सं०१६१मं०५

अनिन्दिषुः	निन्दितवन्तः	निन्दा की है
अन्या	अन्यानि	अन्यों को
नामानि	नामानि	नामों को
कृतवते	कृतवन्तः	किया है
सते	निष्पीडिते	निचोड़े जाने पर
सचा	सह	मिलकर
अन्यैः	अन्यैः	अन्यों से
एनान्	एतान्	इन को
कन्या	कन्या	कन्याने
नामभिः	नामभिः	नामों से
स्परत्	प्रीतवती	प्रसन्न किया

कर्म०१ सू०१६१ म०६ (४२५६)

संस्कृतार्थः।

“हनामैतान् ये देवानां पानसाधनं चमसंनिन्दित
वन्तः” इति यदा त्वष्टा उक्तवान् (तदा ऋभवः) सह
(भूत्वा सोमे) निष्पीडिते (सति) अन्यानि नामानि
कृतवन्तः, कन्या (अपि) एतान् अन्यैर्नामाभः
प्रीतवती ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

“हम मारें इन को जिन्होंने देवताओं के पीने के
चमस की निन्दा की है” ऐसा जब त्वष्टाने कहा
(तब से ऋभुओं ने) (सोम के) इकट्ठा होकर निचोड़ने
पर दूसरे नामों को धारण किया, (त्वष्टा की) कन्याने
(भी) इनको (इन) दूसरे नामों से प्रसन्न किया ॥ ५ ॥

ऋभु का दूसरा नाम ऋतु है ॥

ऋभवो देवताः, जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

इन्द्रो हरीयुजेष्वि व नारथं बृह-
स्पतिर्विप्रवरूपामुपाजत । ऋभुर्वि-
भवावाजी देवा अगच्छत स्वपसीय-
न्निर्य भागमैतन ॥ ६ ॥

(४२५७) १५०मं० १ सू० ११, मं० १

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
हरी०	अश्वौ	घोड़ों को
युयुजे	योजितवान्	जोड़ा है
अश्विना	अश्विनौ	अश्विनों ने
रथम्	रथम्	रथ को
बृहस्पतिः	बृहस्पतिः	बृहस्पति ने
{ विश्व- रूपाम्	विश्वरूपाम्	सब रूपों वाली को
उप	उप+	-
आजत	उप+आजत, प्ररितवान्	हाँका है
ऋभुः	ऋभुः	ऋभु

संस्कृत-शब्द-कोश (४२५८)

वि॒भ्वा	वि॒भ्वा	वि॒भ्वा
वा॒जः	वा॒जः	वा॒ज
दे॒वान्	दे॒वान्	दे॒वताओं को
अ॒ग॒च॒कृत	यू॒यं॒ग॒त॒व॒न्तः	तुम गए
सु॒अ॒प॒सः	सु॒क॒र्मा॒णः	शु॒भ क॒र्म करने वाले
य॒ज्ञि॒यम्	य॒ज्ञ॒स॒म्ब॒न्धि॒नम्	य॒ज्ञ॒स॒म्ब॒न्धी को
भा॒गम्	भा॒गम्	भाग को
ए॒त॒न	यू॒यं॒प्रा॒प्त॒व॒न्तः	तुमने प्राप्त किया

संस्कृतार्थः ।

इन्द्रोऽश्वौ योजितवान्, अश्विनौ रथम् (योजित-
वन्तौ), बृहस्पतिः च विश्वरूपाम् (गाम्) प्रेरितवान्,
ऋभुर्विभ्वा वाजः (श्चैतौ) सुकर्माणः (यूयम्) देवान्
प्रति) गतवन्तः, यज्ञसम्बन्धिनं भागम् (च) प्राप्त-
वन्तः ॥ ६ ॥

(४१५९) अ०सं०१ सू०१११ पं०७

भाषार्थः ।

इन्द्र ने घोड़ों को जोड़ा है, अश्विनों ने रथ को (जोड़ा है) (और) बृहस्पति ने सब रूपों वाली (गौ) को हाँका है, ऋभु, विभ्वा (और) वाज (ये) शुभ कर्म करने वाले आप देवताओं (की ओर) गए (और) यज्ञ के भाग को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

(देखो पृ० १९१, १९८, २८००)

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

नि॒प्र॒च॒र्म॒णो॒गाम॑रिणी॒त॒धी॒तिभि॒-
 र्या॑निर॒न्तायु॑वशा॒ता॒क्र॒णो॒तन॑ । सौ॒ध-
 न्वना॒ग्र॒वा॒द॒ग्र॒व॒मत॑क्षत यु॒क्त॒वार॒थ-
 मु॒प॒दे॒वाँच॑यातन ॥ ७ ॥

निः

निः+

-

चर्म॑णः

चर्म॑णः

चर्म॑ से

गाम्

गाम्

गौ॑ की

क०सं०१स०१११सं०७ (४२६०)

अरिणीत	निः+अरिणीत, निरगमयत	तुमने निकाला
धीतिऽभिः	कर्मभिः	कर्मों के द्वारा
या	यौ	जो दोनों
जरन्ता	जरन्तौ	बूढ़े होते हुए
युवशा	युवानौ	जवान
ता	तौ	उन को
अकृणीतन	यूयं कृतवन्तः	तुमने किया
सौधन्वनाः	हे सुधन्वपुत्राः !	हे सुधन्वा के पुत्रो
अश्ववात्	अश्ववात्	घोड़े से
अश्वम्	अश्वम्	घोड़े को
अतच्छत	यूयं निर्मितवन्तः	तुमने बनाया
युक्तवा	योजयित्वा	जोड़ कर

(४३११) मा०सं०१सू०१६१ मं०७

रथम्	रथम्	रथ को
उप	उप+	-
देवान्	देवान्	देवताओं को
अयातन	उप+अयातन, यूयं प्राप्तवन्तः	तुम प्राप्त हुए

संस्कृतार्थः ।

हे सुधन्वपुत्राः ! यूयं कर्मजिश्चर्मणोगामुत्या-
दितवन्तः, यौ (पितरौ) जरन्तौ (आस्ताम्) तौ यूयं-
युवानौ कृतवन्तः, यूयमश्वादश्वनिर्मितवन्तः, यूयं
रथं योजयित्वा देवान् प्राप्तवन्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे सुधन्वा के पुत्रो ! तुमने कर्मोंद्वारा चर्म से गौ
को उत्पन्न किया, जो (मातापिता) बूढ़े हो रहे थे तुमने
उनको जवान किया, तुमने घोड़े से घोड़ा बनाया, तुम
रथ को जोड़ कर देवताओं के पास पहुंचे ॥ ७ ॥

(देवी पृ० २८००, ४००, ३९५)

क०सं० १ अ० १११ पं० ८ (४२११)

ऋभगोदेवता, भुरिग् जगतीछन्दः । १३।१२।१२।१२।

इ॒दमु॒द॒कं पि॒ब॒ते॒त्य॒ब्रवी॒तने॒दं॒वा॒

घा॒पि॒ब॒तामु॒ञ्ज॒ने॒ज॒नम् । सौ॒ध॒न्व॒-

ना॒य॒दि॒त॒न्ने॒व॒ह॒र्य॑थ॒ तृ॒ती॒ये॒घा॒स॒व॒ने॒

मा॒द॒या॒ध॒वै ॥ ८ ॥

इ॒दम्

इ॒दम्

इ॒स को

उ॒द॒कम्

उ॒द॒कम्

ज॒ल को

पि॒ब॒त

पि॒ब॒त

पी॒ओ

इ॒ति

इ॒ति

ऐ॒से

अ॒ब्र॒वी॒त॒न

यू॒य॒मु॒क्त्व॒न्तः

तु॒म॒ ने॒ क॒हा

इ॒दम्

इ॒दम्

इ॒स को

वा

वा

म॒थ॒वा

(४२६३) अ० सं० १ अ० १११ पृ० ८

घ	खलु	सचमुच
पिबत	पिबत	पीओ
{ मुञ्जने जनम् }	मुञ्जेन निःसृतम् (रसम्)	मूँज से निकले हुए (रस) को
सौधन्वनाः	हे सुधन्वपुत्राः !	हे सुधन्वा के पुत्रो
यदि	यदि	यदि
तत्	तत्	उस को
नऽद्व	नैव	नहीं
हर्यथ	वाञ्छथ	चाहते हो
तृतीये	तृतीये	तीसरे में
घ	एव	अवश्य

क्र०सं०१ सू०१६१ मं०९ (४२६४)

स॒व॒ने	स॒व॒ने	स॒व॒न में
मा॒द॒या॒ध॒वै	मा॒द्य॒त	म॒द से यु॒क्त हो

संस्कृतार्थः ।

(हे देवाः ! यूयम्) इत्युक्तवन्तः(यत्) हे सुधन्व-
पुत्राः ! इदमुदकं खलु पिबत, इदं वा मुञ्जेन
निःसृतम् (रसम्) पिबत, यदि एतद् (द्वयम्)
नैव वाञ्छथ तृतीये सवने (तु) माद्यत एव ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे देवताओ !) आपने यह कहा (कि) हे
सुधन्वा के पुत्रो ! सचमुच इस जल को पीओ, या
इस मूंज से निकले हुए (रस) को पीओ, यदि इन
(दोनों) को तुम नहीं चाहते हो (तो) तीसरे सवन
में अवश्य सोमके मद से युक्त होना ॥ ८ ॥

ऋभवो देवताः, जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

आ॒पो॒भू॒यि॒ष्ठ॒ा॒इ॒त्ये॒को॒अ॒ब्र॒वी॒द-

ग्नि॒र्भू॒यि॒ष्ठ॒ा॒इ॒त्यन्यो॒अ॒ब्र॒वी॒त् । व-

(४२१५) अ०मं०१ सू०१६१मं०९

ध॒र्यन्ती॑ व॒हुभ्यः॑ प्रै॒को अ॒ब्रवी॑त॒ताव॒--
दन्त॑श्च म॒साँ अपि॑ शत । ६ ।

आपः	आपः	जल
भूयिष्ठाः	भूयिष्ठाः	सबसे बड़े
इति	इति	ऐसे
एकः	एकः	एक ने
अब्रवीत्	उक्तवान्	कहा
अग्निः	अग्निः	अग्नि
भूयिष्ठः	भूयिष्ठः	सब से बड़ा
इति	इति	ऐसे
अन्यः	अन्यः	दूसरे ने

क्र०सं०१ सू०१११ सं०९ (४३१६)

अब्रवीत्	उक्तवान्	कहा
वधः५यन्तीम्	वधमात्मन इच्छन्तीम्, दुःखंसहमानामित्यर्थः	दुःख के सहन करने वाली को
बहु५भ्यः	बहुभ्यः	बहुतों के लिये
प्र	प्र +	-
एकः	एकः	एक ने
अब्रवीत्	प्र + उक्तवान्	कहा
ऋता	सत्यम्	सत्य को
वदन्तः	वदन्तः	कहते हुए
चमसान्	चमसान्	चमसों को
अपिंशत	रचितवन्तः	रचा

(४२१७) क्र०सं०१स०१५१सं०१०

संस्कृतार्थः ।

आपोभूयिष्ठा इत्येक उक्तवान्, अग्निर्भूयिष्ठ
इति द्वितीय उक्तवान्, तृतीयो बहुभ्यः दुखं सहमा-
नाम् (पृथिवीं भूयिष्ठाम्) प्रोक्तवान्, (इत्थम्) सत्यं
वदन्तः (ऋभवः) चममान् रचितवन्तः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

एक ने जलों को सब से बड़ा बताया, दूसरे ने
अग्नि को सबसे बड़ा बताया, तीसरे ने बहुतों के
लिये दुःख के सहने वाली (पृथिवी) को (सब से
बड़ा) बताया, (ऐसे) सत्य कहते हुए (ऋभुओं)
ने चमसों को रचा ॥ ९ ॥

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

श्री॒णामे॒क॒उ॒द॒कं॒ग॒मा॒वा॒ज॒ति॒ मां-
समे॒कः॒पिं॒श॒ति॒सू॒न॒या॒भृ॒तम् । आ॒नि-
म्बु॒चः॒श॒क्र॒दे॒को॒अ॒पा॒भ॒र॒त् किं॒स्वि॒त॒पु-
त्रे॒भ्यः॒पि॒त॒रा॒उ॒पा॒व॒तुः ॥ १० ॥

क्र०मं००१ ए०१६१मं०१० (४२६८)

श्रोणाम्	पङ्कम्	लंगडी को
एकः	एकः	एक
उदकम्	उदकम्	जल को
गाम्	गाम्	गौ को
अव	अव+	-
अजति	अव+अजति, प्रेरयति	हांकता है
मांसम्	मांसम्	मांस को
एकः	एकः	एक
पिंशति	पिनष्टि	पीसता है
सनया	शस्त्रेण	शस्त्र से
आऽभृतम्	आहृतम्	लाए हुए को

(४२६९) क्र०सं०१सू०१६१मं०१०

आ	आ +	-
निऽमुचः	आ + निमुचः, अस्तमयादवाक्	सूर्यास्त होने से पहिले
शक्त	पुरीषम्	कूड़े को
एकः	एकः	एक
अप	अप +	-
अभरत्	अप + अभरत्, अपहरति (लडर्थे लङ्)	उठा ले जाता है
किम्	किम् +	-
स्वित्	किम् + स्वित्,	बच्चा
पुत्रेभ्यः	पुत्रेभ्यः	पुत्रों के लिये
पितरौ	पितरौ	माता पिता ने

॥ १० ॥ (१००)

उप	उप	
आवतः	उप+आवतुः, साहाय्यं कृतवन्तौ	सहायता की

संस्कृतार्थः ।

एकः पङ्गुं गां जलम् (प्रति) प्रेरयति, एक आहतं मांसं
शस्त्रेण पिनष्टि, एकोऽस्तमयादवाक् पुरीषमपहरति,
पितरौ पुत्रेभ्यः किं साहाय्यं खलु कृतवन्तौ ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

एक लंगड़ी गौ को जलकी (ओर) हांकता है, एक
लाए हुए मांस को शस्त्र से पीसता है, एक सूर्यास्त
होने से पहिले पुरीष को उठा लेजाता है, माता पिता
वे पुत्रों के लिये सचमुच क्या सहायता दी ॥ १० ॥

आशय यह है कि ऋभु किसी कर्म को नीच नहीं समझते थे,
उन्होंने अपने हाथों से करके नीच कर्म को भी उच्च बनाया ॥

ऋभवो देवता, जगती छन्दः । १२१२ । १२ । १२

उदत्स्वस्मा अक्षणीतनातृणं

निवत्स्वपः स्वपस्ययानरः । अगो-

(४५०१) म.प्र.सं.१५१३.११

ह्यस्ययदसस्तनागृहे तद्येदमृभ-
 वीनानुगच्छथ ॥ ११ ॥

उच्चत्सु	उन्नतेषु (प्रदेशेषु)	ऊँचे (प्रदेशों) में
अस्मै	अस्मै	इसके लिये
अकृणोतन	यूयं कृतवन्तः	तुमने किया
तृणम्	तृणम्	घास को
निवत्सु	प्रवणेषु (प्रदेशेषु)	नीचे (प्रदेशों) में
अपः	अपः	जलों को
सुऽअपश्यथा	शोभनकर्मैच्छया	शुभकर्म की इच्छा से
नरः	हे नरः !	हे नरो

क्र०सं०१ख०१११सं०११ (४२७२)

अगोह्यस्य	अगोपनीयस्य (सूर्यस्य)	न छिपसकनेवाले (सूर्य) के
यत्	यत्	जो
असस्तन	यूयंसुप्तवन्तः	तुम सोये थे
गृहे	गृहे	घर में
तत्	तत्	सो
अद्य	अद्य	आज
इदम्	इदम्	इस को
ऋभवः	हे ऋभवः !	हे ऋभुओ
न	न	नहीं
अनु	अनु +	-
यच्छथ	अनु+गच्छथ	अनुसार करते हो

(४२७३) क्र०सं०१७०१११मं०१२

संस्कृतार्थः ।

हे नरः ! ऋभवः ! यूयम् अस्मै (प्राणिजाताय)
शुभकर्मच्छया उन्नतेषु (प्रदेशेषु) तृणं प्रवणेषु (च)
प्रदेशेषु) अयः कृतवन्तः, यद् यूयं सूर्यस्य गृहे
सुप्तवन्तः तदद्येदं (सर्वं कर्म किमर्थम्) नानु-
गच्छथ ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हेवीरऋभुओ ! आपने इन (प्राणियों) के लिये
शुभकर्मकी इच्छासे ऊंचे (स्थानों) में घास को (और)
नीचे (स्थानों) में जलोंको उत्पन्न किया, जो आप सूर्य
के घर में सोए थे, वह (सब कर्म) पूर्व की न्याईं आज
क्यों नहीं करते ॥ ११ ॥ (देखो पृ० २७८)

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

संमो॒ल्य॒यद्भु॒वना॒पर्य॑स॒र्पत॑

क्व॒स्वि॒त्ता॒त्यापि॒तरा॑व॒आस॑तुः ।

अ॒श॒प॒तयः॑ क॒र॒स्नं॑व॒आद॒दे यः॑ प्रा॒ब्र॒-

वी॒त॒प्रोत॑स्मा॒अब्र॑वी॒तन॑ ॥ १२ ॥

सं० १००११११०१२ (७५७७)

सम्मील्य	प्रच्छाद्य	छिपा कर
यत्	यदा	जब
भुवना	भुवनानि	भुवनों को
परिऽअसर्पत	यूयं परिगतवन्तः	तुमने घेर लिया
क्व	क्व +	-
स्वित्	क्व+स्वित्	कहाँ
ताह्या	पूज्यौ	पूज्य
पितरा	पितरौ	माता पिता
वः	युष्माकम्	तुम्हारे
आसतुः	आस्ताम् (इय-ययेनभू-भावाभावः)	थे
अशपत	वचनं दत्तवन्तः	वचन दिया

(४२७५) क्र०सं०१क०१५१ पृ०१२

यः	यः	जिस ने
कर॒स्नम्	हस्तम् (निघं० २।४)	हाथ को
वः	युष्माकम्	तुम्हारे
आ॒ऽद॒दे	ग्रहीतवान्	पकड़ा
यः	यः	जिसने
प्र	प्र+	-
अब्रवीत्	प्र+अब्रवीत्, घोषितवान्	प्रख्यात किया
प्रो०	अग्रे	आगे
तस्मै	तस्मै	उस के लिये
अब्रवीत॒न	प्र+अब्रवीत॒न यूयमग्निं कथितवन्तः	तुमने अगवैया कहा

क्र०सं०१७०११२०१२ (४२७६)

संस्कृतार्थः ।

(हे ऋभवः !) यदा यूयं भुवनानि प्रच्छाद्य परि-
गतवन्तः(तदा) पूज्यौ युष्माकं पितरौ कुत्राऽऽस्ताम्,
योयुष्माकं हस्तं गृहीतवान् (तस्मैयूयम्) वचनं
वक्तवन्तः, यो युष्मान् घोषितवान् तस्मै अग्निं
कथितवन्तः ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

(हे ऋभुओ !) जब आप भुवनों को छिपाकर
चारों ओर फिर गये (तब) पूजनीय आपके माता
पिता कहां थे, जिसने आपके हाथ को पकड़ा आपने
(उसके लिये) वचन दिया, जिसने आपको प्रख्यात
किया उस के लिये आपने अगवैया (होने का) वर
दिया ॥ १२ ॥

ऋभवोदेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

सु॒प्त॒र्वा॒स॒ञ्ज॒ट॒भ॒व॒स्त॒द॒पृ॒च्छ॒ता-
ऽगो॒ह्य॒क॒इ॒दं॒नो॒भ॒वू॒ब॒ध॒त् । प्र॒वर्त्त॒न्
व॒स्तो॒बो॒ध॒यि॒तार॒म॒ब्र॒वीत् सं॒वत्स॒र-
इ॒द॒म॒द्या॒व्य॒ख्य॒त ॥ १३ ॥

(४१७७) क्र०मं०१ सू०१११मं०११

सुषप्त्वांसः	सुप्तवन्तः	सोकर उठे हुए
ऋभवः	हे ऋभवः !	हे ऋभुओ
तत्	एतत्	यह
अपृच्छत्	यूयं पृष्टवन्तः	तुमने पूछा
अगोह्य	हे अगोपनीय !	हे किसीसे न छिपाये जानेवाले
कः	कः	किसने
इदम्	इदानीम्	अब
नः	अस्मान्	हमको
अवबुधत्	बोधितवान्	जगाया
प्रवानम्	श्वानम्	श्वान को
वस्तः	अजः	बकरे ने

अ० अ० १५०० १११५०१२ (४२७६)

संस्कृतार्थः ।

(हे ऋभवः !) यदा यूयं भुवनानि प्रच्छाद्य परि-
गतवन्तः (तदा) पूज्यो युष्माकं पितरौ कुत्राऽऽस्ताम्,
यो युष्माकं हस्तं गृहीतवान् (तस्मै यूयम्) वचनं
दत्तवन्तः, यो युष्मान् घोषितवान् तस्मै अग्निं
कथितवन्तः ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

(हे ऋभुओ !) जब आप भुवनों को छिपाकर
चारों ओर फिर गये (तब) पूजनीय आपके माता
पिता कहां थे, जिसने आपके हाथ को पकड़ा आपने
(उसके लिये) वचन दिया, जिसने आपको प्रख्यात
किया उस के लिये आपने अगवैया (होने का) वर
दिया ॥ १२ ॥

ऋभवो देवताः, जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

सु॒षु॒र्वा॒स॒ ऋ॒भ॒व॒स्त॒द॒पृ॒च्छ॒ता-
ऽगो॒ह्य॒क॒द्व॒दं॒नो॒प॒ब॒बु॒धत् । प्र॒वा॒न्
व॒स्तो॒बो॒ध॒यि॒तार॒म॒ब्र॒वीत् सं॒वत्स॒र-
द्व॒द॒म॒द्या॒व्य॒ख्य॒त ॥ १३ ॥

(४२७७) क्र०मं०१क०११मं०११

सुषावांसः	सुप्तवन्तः	सोकर उठे हुए
ऋभवः	हे ऋभवः !	हे ऋभुओ
तत्	एतत्	यह
अपृच्छत	यूयं पृष्टवन्तः	तुमने पूछा
अगोह्य	हे अगोपनीय !	हे किसीसे न छिपाये जानेवाले
कः	कः	किसने
इदम्	इदानीम्	अब
नः	अस्मान्	हमको
अवबुधत्	बोधितवान्	जगाया
श्वानम्	श्वानम्	श्वान को
वस्तः	अलः	बकरे ने

क्र० सं० १११ मं० ११ (४९७८)

बोधयिता- रम्	बोधयितारम्	जगाने वाले को
अब्रवीत्	उक्तवान्	कहा
संवत्सरे	संवत्सरे	वर्ष में
इदम्	इदम्	यह
अद्य	अद्य	आज
वि	वि+	-
अख्यत	वि+अख्यत, यूयं प्रख्यापितवन्तः	आपने प्रख्यात किया

संस्कृतार्थः ।

हे ऋभवः ! (सूर्य मण्डले) सुप्तवन्तो यूयं तत्
पृष्टवन्तः (यत्) हे अगोपनीय ! (सूर्य !) कोऽस्मान्
इदानीं बोधितवान्, अजः श्वानं बोधयितारमुक्तवान्,
यूयं संवत्सरे अद्य इदम् (दिनम्) प्रख्यापितवन्तः । १३।

(४२७९) ऋ०मं०१९०१११मं०१४

भाषार्थः ।

हे ऋभुओ ! (सूर्य मण्डल में) सोकर उठे हुए
आपमे यह पूछा (कि) हे किसी से न छिप सकने
वाले(सूर्य!) किसने हमें अभी जगाया, बकरे ने श्वान
को जगाने वाला बतलाया, आपने वर्ष में आज इस
दिनको प्रख्यात किया ॥ १३ ॥

श्वान नक्षत्र विशेष है और वह दिन वर्ष का पहिला दिन है
जिसमें श्वान नक्षत्र उदय होता था, बकरा सूर्य है ॥

ऋभवोदेवताः, निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ११११११०११

दि॒वा॒या॒न्ति॒म॒रु॒तो॒भू॒म्या॒ग्नि॒-
र॒यं॒वा॒तो॒अ॒न्त॒रि॒क्षे॒ण॒या॒ति । अ॒ग्नि॒-
र्या॒ति॒व॒रु॒णः॒स॒मु॒द्रैर्यु॒ष्मा॒न् च॒क्र॒न्तः॒श॒-
व॒सी॒न॒पा॒तः ॥ १४ ॥

दि॒वा

दि॒वा

द्यौ॒ से

या॒न्ति॒

ग॒च्छ॒न्ति॒

च॒ल॒ते॒ हैं

म॒रु॒तः

म॒रु॒तः

म॒रु॒त

सं० ११ मं० १६१ मं० १४ (४२८०)

भूम्या	भूम्या	पृथिवी से
अग्निः	अग्निः	अग्नि
अयम्	अयम्	यह
वातः	वायुः	वायु
अन्तरिक्षेण	अन्तरिक्षेण	अन्तरिक्ष से
याति	गच्छति	चलता है
अत्भिः	जलैः	जलों से
याति	गच्छति	चलता है
वरुणः	वरुणः	वरुण
समुद्रैः	समुद्रैः	समुद्रों से
युष्मान्	युष्मान्	तुम को

(४२८१) ऋ० घं० सू० ११ मं० १५

इच्छन्तः	इच्छन्तः	चाहते हुए
वसः	बलस्य	बल के
नपातः	हे पुत्राः !	हे पुत्रो

संस्कृतार्थः ।

हेबलस्य पुत्राः ! (ऋभवः !) युष्मान् इच्छन्तो
मरुतो दिवायान्ति, अग्निर्भूम्ना (याति) अयं वायुरन्त
रिक्षेणयाति, वरुणः (च) जलरूपैः समुद्रैर्याति । १४ ।

भाषार्थः ।

हे बल के पुत्र (ऋभुओ !) आप को चाहते हुए
मरुत, गौ के रस्ते चलते हैं, अग्नि पृथिवी पर, यह
वायु अन्तरिक्ष के रस्ते चलता है (और) वरुण (देव)
जलरूप समुद्रों के रस्ते चलते हैं ॥ १४ ॥

इत्येकषष्ट्यधिकशततमं सूक्तम् ।

क्र०मं०१ सू०११२

(४२८२)

ऋ० मं०१ सू० १६२

अश्वोदेवता, दीर्घतमाशुषिः ।

विनियोगः -

१-२२ । अश्वमेधस्य मध्यमेऽहनि अभिगुप्तैवेऽभिगोशमोध्वमिति
शिष्ट्वा षड्विंशतिरस्यवंकयश्चस्मात्पुरस्तादेतत्सूक्त-
माघपेत् (आ० १०।८।७)

२२। 'सुगव्यंनो-' इत्येषा उपाकरणकाले भवप्राणावर्तने यद्यश्वो न
कुर्यात् तदा नैमिचित्की यजमानवाचनार्थो भवति (आ०
१०।८।४)

सूक्त का भावार्थ ।

मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, महान इन्द्र और मरुत हमारा निरा-
दर न करें, जब हम यज्ञ में अश्वमेध के घोड़े के बीरकर्मों का
वर्णन करते हैं १ जब चमकते हुए वस्त्र और सुवर्ण से आच्छादित
अश्व के आगे अज रूप बलि को पकड़ कर ले चलते हैं तब वह
अज इन्द्र और पूषा के प्रिय धाम को प्राप्त होने के लिये आगे
आगे मिमियाता हुआ चलता है । २। सब देवताओं का हित करने
वाला यह पूषा का भाग जब घेगवान् घोड़े के आगे लेजाया जाता
है तब स्वप्ता इस प्रथम बलि देने योग्य अज को घोड़े के सहित
अत्यन्त यशस्वी होने के लिये प्रेरण करते हैं । ३। जब नियत काल
में ऋत्विज लोग देवताओं को प्राप्त होने वाले अश्व की अग्नि
के चारों ओर ले जाते हैं तब उषा का भाग अज देवताओं के
लिये यज्ञ को ख्यापन करता हुआ आगे चलता है । ४। हे होता !
अश्वर्यु ! प्रतिप्रस्थाता ! अग्नीत ! प्रावस्तुत ! प्रशास्ता और ब्रह्मा !

(४२८३)

म.मं० १ सू० १३२

आप सब मिलकर खूब सजाए हुए और अच्छी तरह होमे हुए इस यज्ञ के द्वारा वृष्टि से नदियों को भरपूर करो । ५। जो यूप के काटने वाले हैं और जो बन से उसको यज्ञशाला में लाने वाले हैं, जो अश्व के बांधने के यूप का सिर घड़ने वाले हैं और जो अश्व के मांस को पकाने के लिये पात्र बनाने वाले हैं, इन सब का परिश्रम हमको उत्साहित करे । ६ । घमकती हुई पीठ वाला अश्व देवताओं की ओर जाने के लिये तैयार खड़ा है, मेरा स्तोत्र देवताओं ने अंगीकार कर लिया है और बुद्धिमान ऋषि इस स्तोत्र का अनुमोदन करते हैं, सचमुच हमने देवताओं की पुष्टि के लिये इस अश्वरूपी मित्र को तैयार किया है । ७। जो इस तेज घोड़े के गले की रस्सी है, जो पैरों की रस्सी, सिर की रस्सी और दूसरी जो रस्सियां हैं वे और जो इस घोड़े के मुख में घास है, हे अश्व ! ये सब तेरी वस्तुएँ देवताओं में जाकर प्राप्त हों । ८। जो अश्व के मांस को मक्खी ने खाया है, जो यूप के स्वयं और काटने के शस्त्र में लगा है, जो काटने वाले के हाथों और नखों में लगा है, हे अश्व ! ये सब तेरा देवताओं में जाकर प्राप्त हो । ९। जो अधो-कच्चा अन्न पेट में अधोवायु को प्रेरण करता है और जो कच्चे मांस का गन्ध है उसको काटने वाले ऋत्विज सुधरा करें और मांस को पवित्र और पूर्ण पाक वाला बनावें । १०। हे अश्व ! जो अग्नि से पकते समय और गूल पर सिकते हुए तेरे शरीर से रस टपकता है वह पृथिवी में और घास में न लगे, वह कामना करने वाले देवताओं को प्राप्त हो । ११। जो पकते हुए अश्व को सावधानी से देखते हैं और जो यह कहते हैं कि इसमें पके हुए की सुगन्धि आती है अब उतार लो, उनकी यह आज्ञा हमको उत्साहित करे । १२। जो काष्ठ की डोई मांस पकाने की स्थाली में पके हुए की परीक्षा के लिये डाली जाती है, जो सूप के सींचने के पात्र हैं, जो उष्णता को रखने वाले पात्रों के ढकने हैं, जो पकड़ने के कांटे और काटने

कामं०१ सू०११२

(४१८४)

के फलक हैं ये सब यज्ञ में अश्व की शोभा को बढ़ाते हैं ॥ १३ ॥
 जो घोड़ा दौड़ता है, वा बैठता है, वा लोटता है और जो उनके
 पैरों को बांधते हैं, जो इसने जल को पीआ है और जो घास को
 खाया है, हे अश्व ! यह सब तेरे कर्म देवताओं में भी तुझ को प्राप्त
 हों ॥ १४ ॥ हे अश्व ! तेरा मांस धूप की गन्ध वाला न हो, ताप से
 सुगन्धि देने वाली अत्यन्त तपी हुई पकाने की हँडी फट न जावे,
 देवता ऐसे अश्व को ग्रहण करते हैं जिसकी वर कामना करते हैं
 जिसकी उन्होंने वरा है, जिसकी ऋत्विजों ने प्रयत्न से पकाया है
 और जो वषट्कार से पवित्र किया गया है ॥ १५ ॥ जो घोड़े के
 लिये वस्त्र बिछाते हैं, जो इसको ऊपर से उढ़ाते हैं और जो सोने
 से सिंगारते हैं जो इसके गले और पैर में बांधने की रस्सी है, ये
 देवताओं की प्यारी सब वस्तुएं देवताओं को पहुंचाते हैं ॥ १६ ॥
 हे अश्व ! जो थकान से हांपते हुए तुझको किसी ने पड़ी से वा
 चाबुल से मारा है उस तेरे कण्ठ को मैं मंत्र द्वारा निवृत्त करता
 हूं, जैसे यज्ञ में हवि देकर कण्ठ को निवृत्त करते हैं ॥ १७ ॥
 देवप्रिय वेगवान अश्व की ३४ पसली की हड्डियों में छुरी घुसती
 है, हे काटने वालो ! तू म जानपूर्वक इसके निर्दोष अंगों को
 काटो, प्रत्येक जोड़ का नाम सुना कर काटो ॥ १८ ॥ त्वष्टा के
 रचे हुए इस अश्व का एक काटने वाला और दो पकड़ने वाले
 होने हैं, यह व्यवस्था है, हे अश्व ! जिन तेरे अंगों को मैं कम से
 काटता हूं, उनके अलग अलग पिण्ड बना कर भग्नि में होमता हूं
 ॥ १९ ॥ हे अश्व ! बध के लिये जाते हुए तेरी आत्मा पीडित न
 हो, छुरी तेरे अंगों में घुसी न रहे, केवल मांस का लोभी अनाडी
 काटने वाला जोड़ के स्थानों को छोड़कर व्यर्थ तेरे अंगों को न
 काटे ॥ २० ॥ हे अश्व ! यह तू मरता नहीं है और न दुःख पाता
 है, तू सुख से गमन करने वाले मार्गों से देवताओं को प्राप्त होता
 है, इन्द्र के घोड़े और मरुतों के घोड़े इसके साथी बनते हैं,

(४२८५) मा०पं०१ सू०११२ म०१

अद्विनों के रथ में जुड़े हुए रासभ के समीप यह ठहरता है ॥२१॥
 यह अद्वि सुन्दर गौओं से और सुन्दर घोड़ों से युक्त धन हमको
 देवे, जिससे हम सबका पोषण कर सकें, यह हमें भृत्य और पुत्रों
 की देवे, अद्वि हमको निष्ठाप करे और द्रवि के साथ होमा
 हुआ अद्वि हमको राज्यबल देवे ॥ २२॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्लुन्दः ॥ ११११११११११॥

मानो॑ मि॒त्रो॒व॒रु॒णो॑ अ॒र्य॒मा॒यु रि॒न्द्र-

ऋ॒भु॒क्षाम॒रुतः॑ परि॒ख्यन् । यद्वा-

जि॒नो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ स॒प्तैः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑

वि॒दथे॑ वि॒र्या॑णि ॥ १ ॥

मा

मा

मत

नः

अस्मान्

हम को

मित्रः

मित्रः

मित्र

पृ० सं० १ अ० ११२ सं० १ (४३६६)

वरुणः	वरुणः	वरुण
अर्थमा	अर्थमा	अर्थमा
वायुः	वायुः (भा०को०)	वायु
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
महामुखाः	महान् (निघ० ३१३)	महान्
मरुतः	मरुतः	मरुत
परि	परि +	-
ख्यन्	परि + ख्यन्, तिरस्कुर्वन्तु	तिरस्कुर्वन्तु
यत्	यत्	जो
वह्निः	वेगवत्तः	वेगवाले के
देवता	देवता	देवताओं के लिये उत्पन्न हुए के

(४२८७) क्र०मं० १२०१६२ म०२

सप्तैः	अश्वस्य	घोड़े के
प्रवक्ष्यामः	प्रवक्ष्यामः	हम वर्णन कर रहे हैं
विदधे	यज्ञे	यज्ञ में
वीर्याणि	वीरकर्माणि	वीरकर्मों को

संस्कृतार्थः ।

मित्रः, वरुणः, अर्यमा, वायुः, महानिन्द्रः, मरुतः
(च) अस्मान्तिरस्कुर्वन्तु, यद् (वयम्) देवेभ्योऽज्ञा-
तस्य वेगवतोऽश्वस्य वीरकर्माणि यज्ञे प्रवक्ष्यामः॥१

भाषार्थः ।

मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, महानिन्द्र (और) मरुत
हमको तिरस्कार न करें जो हम देवताओं के लिये
उत्पन्न हुए २ वेगवाले घोड़े के वीरकर्मों को यज्ञ
में वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

यन्निर्णिजारेकृणसाप्राप्तस्य

अ० सं० १७०११२ सं० २ (४२८८)

रा॒तिं॑गृ॒भी॒तां॑मु॒ख॒तो॒नय॑न्ति । सु॒प्रा॒ङ्-
जोमे॒भ्यद् वि॒प्र॒वरूप॑ इन्द्रा॒पू॒ष्णोः॑ प्रि-
यम॒प्येति॑ पाथः ॥ २ ॥

यत्

निः॒ऽनिजा॑

रे॒क॒णा॒सा

प्रा॒वृ॒तस्य॑

रा॒तिम्

गृ॒भी॒ताम्

मु॒ख॒तः

यदा

कान्ति॒यु॒क्तेन॑
वा॒स॒सा
(भा०को०)

सुव॒र्णेन॑
(भा०को०)

वे॒ष्टि॒तस्य॑

ब॒लिम्

गृही॒ताम्

पु॒रस्ता॑त्

जब

चम॒कते॑ हु॒ए
वस्त्र॑ से

सुव॒र्ण से

ढके॑ हु॒ए के

ब॒लि को

पक॒ड़ी हुई॑ को

आगे

(४२८९) क्र०मं०१ सू०१२२मं०२

नयन्ति	नयन्ति	ले जाते हैं
सुऽप्राङ्	सुष्टुपुरोगामी	खूब आगे चलने वाला
अजः	अजः	अज
मेम्यत्	मेमेइतिशब्दं कुर्वन्	में में शब्द करता हुआ
विप्रवऽरूपः	सर्वरूपोपेतः	सब रूपों वाला
इन्द्रापूष्णोः	इन्द्रापूष्णोः	इन्द्र और पूषा के
प्रियम्	प्रियम्	प्यारे को
अपि	अपि+	-
एति	अपि+एति, प्राप्नोति	प्राप्त होता है
पाथः	स्थानम्	स्थान को

संस्कृतार्थः ।

यदा कान्तियुक्तेन वाससा सुवर्णेन(च)वेष्टितस्य

ऋ०मं० १सू० १६२ मं० ३ (४२९०)

(अश्वस्य) पुरस्ताद्गृहीतंबलिं नयन्ति (तदा) सर्व-
रूपोपेतः (सः) अजो मेमे इति शब्दंकुर्वन् सुष्ठुपुरो-
गामी(भूत्वा) इन्द्रापूष्णोः प्रियंस्थानं प्राप्नोति ॥ २ ॥

संस्कृतार्थः ।

जब चमकते हुए वस्त्रों (और) सुवर्ण से ढके
हुए (अश्व) के आगे पकड़ी हुई बलि को लेजाते हैं
(तब) सब रूपों वाला (वह) अज में में शब्द करता
हुआ खूब आगे होकर इन्द्र और पूषा के प्रिय
स्थान को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अश्वोदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

एषच्छागः पुरो अश्वेन वाजिना
पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अ-
भिप्रियं यत्पुरोऽष्टमर्वता त्वष्टेदेनं
सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

(४२९१) सं०सं०१६०१६२ सं०३

एषः	एषः	यह
छागः	छागः	अज
पुरः	पुरस्तात्	आगे
अश्वेन	अश्वेन (सह)	अश्व के साथ
वाजिना	वेगवता	वेग वाले से
पूषः	पूषः	पूषा का
भागः	भागः	भाग
नीयते	नीयते	लेजाया जाता है
विश्वऽदेव्यः	सर्वदेवार्हः	सब देवताओं के योग्य
अभिऽप्रियम्	अभिप्रियम्	सब ओर से प्यारे को
यत्	यम्	जिस को

कर्म०१सू०११२ मं०१ (४१९२)

पुरो ^१ ळाशम्	पूर्वदातव्यम्	पहले देने योग्य को
अ ^१ वता	अश्वेन (सह)	अश्व के साथ
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा
इत्	(पूरणः)	-
एनम्	एनम्	इस को
सौश्रवसाय	सुयशस्वित्वाय	सुन्दर यशस्वी होने के लिये
जिन्वति	प्रेरयति	प्रेरण करता है

संस्कृतार्थः।

सर्वदेवार्ह एषः पूष्णोभागोऽजो वेगवता अश्वेन
(सह) पुरस्तान्नीयते, यमभिप्रियं पूर्वदातव्यमेनम्
(अजम्) त्वष्टा अश्वेन (सह) सुयशस्वित्वाय
प्रेरयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

सब देवताओं के योग्य यह पूषा का भाग

(४२१३) क्र०सं०१ सू०११२ सं०४

अज वेग वाले अश्व के साथ आगे ले जाया जाता है जिस सर्वप्रिय (और) पहिले देने योग्य इस (अज) को त्वष्टा अश्व के सहित खूब यशस्वी होने के लिये प्रेरण करता है ॥ ३ ॥

अश्वोदेवता, निचृज्जगतीछन्दः ११११२१२१२

य॒ज्ञवि॒ष्य॒मृ॒तु॒शो॒दे॒व॒यानं॒ चि॒र्मा-

नु॒षाः॒प॒र्य॒श्वं॒न॒य॒न्ति । अ॒त्रा॒पू॒षः

प्र॒थ॒मो॒भा॒ग॒ए॒ति॒ य॒ज्ञ॒दे॒वे॒भ्यः॒प्र॒ति॒वे॒द-

य॒न्न॒जः ॥ ४ ॥

यत्	यत्	जो
ह॒वि॒ष्य॒म्	हवियोंग्यम्	हवि के योग्य को
ऋ॒तु॒ऽशः	नियतकाले	नियत समय में

क०सं०१६०११२ प्र०४ (४२१४)

देवऽयानम्	देवानांप्रापणीयम्	देवताओं के प्राप्त कराने योग्य को
त्रिः	त्रिः	तीन बार
मानुषाः	मानुषाः	मनुष्य
परि	परि +	-
अश्वम्	अश्वम्	अश्व को
नयन्ति	परि+नयन्ति, परितःनयन्ति	चारों ओर ले जाते हैं
अत्र	तत्र (तलोपः)	वहां
पूषाः	पूषाः	पूषा का
प्रथमः	प्रथमम्	आगे
भागः	भागः	भाग
एति	गच्छति	जाता है

(४२५५) मन्त्रः १२०१२२ मन्त्र

यज्ञम्	यज्ञम्	यज्ञ को
देवेभ्यः	देवेभ्यः	देवताओं के लिये
प्रतिवेदयन्	प्रख्यापयन्	जितलाता हुआ
अजः	अजः	अज

संस्कृतार्थः ।

यद् मनुष्याः नियतकाले देवानां प्रापणीयं हविर्योग्यमश्वं त्रिवारं परितोनयन्ति तत्र पृष्णो भागोऽजो देवेभ्यो यज्ञं प्रख्यापयन् प्रथमं गच्छति । ४

भाषार्थः ।

जो मनुष्य नियतकाल में देवताओं के प्राप्त कराने योग्य हवि के योग्य अश्व को चारों ओर ले जाते हैं, वहाँ पृष्ण का भाग अज देवताओं के लिये यज्ञ को प्रख्यात करता हुआ आगे आगे चलता है ॥ ४ ॥

अश्वो देवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

होता ध्वर्युरावया अग्निमिन्धो

सं० सं० १२०१६२ सं० ५ (४२९६)

आव॒ग्रा॒भ॒उ॒त॒शं॒स्ता॒सु॒वि॒प्रः । ते॒न

य॒ज्ञे॒न॒स्व॒र॒ङ्क॒ते॒न॒ स्वि॒ष्टे॒न॒व॒क्ष॒णा

आ॒पृ॒ण॒ध॒व॒म् ॥ ५ ॥

हो॒ता	हो॒ता	हो॒ता
अ॒ध्व॒र्युः	अ॒ध्व॒र्युः	अ॒ध्व॒र्यु
आ॒व॒याः	आ॒भि॒मुख्ये॒नाऽव॒ य॒ष्टा (प्रतिप्रस्थाता)	प्रतिप्रस्थाता
{ अ॒ग्नि॒म्	अ॒ग्नी॒त्	अ॒ग्नी॒त्
{ इ॒न्धः		
आ॒व॒ऽग्रा॒भः	आ॒व॒स्तु॒त्	आ॒व॒स्तु॒त्
उ॒त	च	ओ॒र

(४२९७) क्र०मं० १९०११२ मं० ५

प्रंस्ता	प्रशास्ता	प्रशास्ता
सुऽविप्रः	ब्रह्मा	ब्रह्मा
तेन	तेन	उस से
यज्ञेन	यज्ञेन	यज्ञ से
{ सुऽअरङ् कृतेन	स्वलङ्कृतेन	खूब सजाए हुए से
सुऽदृष्टेन	स्विष्टेन	भली प्रकार होमे हुए से
वक्षणाः	नदीः (निघण्टु० १।१३)	नदियों को
आ	आ +	-
पृणध्वम्	आ + पृणध्वम्, सर्वतः पूरयत	सब ओर से पूर्ण करो

संस्कृतार्थः ।

(हे ऋत्विजः !) होता, अध्वर्युः, प्रतिप्रस्थाता,

अ०भ०१ सू०११सं०६ (४२९८)

अग्नीत्, ग्रावस्तुत्, प्रज्ञास्ता ब्रह्मा च (एते यूयम्)
स्वलङ्कृतेन सिवष्टेन (च) तेन यज्ञेन नदीः सर्वतः
पूरयत ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

(हे ऋत्विजो !) होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता,
अग्नीत्, ग्रावस्तुत्, प्रज्ञास्ता और ब्रह्मा ये (सब)
आप खूब सजाए हुए (और) भली प्रकार होमे हुए
उस यज्ञ से नदियों को सब ओर से पूर्ण करो ॥ ५ ॥

अश्वोदेवता, निचृजगतीछन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

यूप॒ब्र॒स्का॒उ॒तये॒यूप॒वा॒ह्य॒च॒षा॒
ल॒ये॒अ॒श्व॒यूप॒ाय॒त॒क्ष॒ति । ये॒चा॒र्व॒ते
प॒च॒नं॒स॒म्भ॒र॒न्त्यु॒तो॒तेषा॒म॒भि॒गूर्ति॑
न॒द्व॒न्व॒तु ॥ ६ ॥

यूप॒ब्र॒स्काः	यूप॒स्व॒च्छे॒त्तारः	यूप॒के का॒टने॒वाले
उ॒त	च	और

(४२९९) ऋ० मं० १ सू० १६२ मं० ६

ये	ये	जो
यूप॒वा॒हाः	यूप॒स्य वो॒ढारः	यूप के ढोने वाले
च॒षाल॒म्	च॒षाल॒म्	चषाल को
ये	ये	जो
अ॒श्व॒व॒यूपा॒य	अ॒श्व॒स्य यू॒पाय	अश्व के यूप के
तक्ष॑ति	तक्ष॑न्ति (वचन॒व्यत्ययः)	लिये घड़ते हैं
ये	ये	जो
च	च	और
अ॒व॒र्त॑	अ॒श्व॒वाय	अश्व के लिये
प॒च॒न॒म्	पा॒कभा॒ण्ड॒म् (कर॒णे ल्युट्)	पाक के वर्तन को
स॒म्भ॒र॒न्ति	स॒म्पा॒दय॑न्ति	तैयार करते हैं

क्र०मं०१ सू०१६२मं०६ (४३००)

उतो०	(पूरणः)	—
तेषाम्	तेषाम्	उन का
अभिऽगूर्तिः	प्रयत्नः (आ०को०)	प्रयत्न
नः	अस्मान्	हम को
द्वन्वत्	उत्साहयतु	उत्साहित करे

संस्कृतार्थः ।

(ये) यूपस्यच्छेत्तारो येच यूपस्यवोढारः (सन्ति)
येऽश्वस्य यूपाय चषालं तक्षन्ति ये चाऽश्वाय पाक-
भाण्डं सम्पादयन्ति तेषां प्रयत्नोऽस्मान् उत्साहयतु ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

(जो) यूप के काटने वाले और जो यूप के ढोने
वाले (हैं) जो अश्व के यूपके लिये चषाल को घड़ते
हैं और जो अश्व के लिये पाक के वर्तन को तैयार
करते हैं उनका प्रयत्न हमको उत्साहित करे ॥ ६ ॥

यूप की चोटी पर जो चक्र पहनाया जाता है उसको चषाल
कहते हैं ॥

(४३०१) ऋ०मं०१सू०१३२ मं०७

अ॒वोदे॒वता, त्रि॒ष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

उ॒प॒प्रा॒गात् सु॒मन्मे॒ऽधा॒यि॒मन्म॑

दे॒वा॒ना॒मा॒शा॒उ॒प॒वी॒तपृ॒ष्ठः । अ॒न्वे॒नं

वि॒प्रा॒ञ्च॒ष॒यो॒मद॑न्ति दे॒वा॒ना॒पु॒ष्टे

च॒क्ष॒मा॒सु॒बन्धु॑म् ॥ ७ ॥

उ॒प॑	उप॑+	-
प्रा॒	प्र॑+	-
अ॒गा॒त्	उप॑+प्र॑+अ॒गा॒त्, समीपंस्थितोऽस्ति	समीप ठैरा है
सु॒ऽम॒त्	सु॒मत्॑+	-
मे॒	मम	मेरा

अ० सं० १ सू० १६२ सं० ७ (४३०२)

अ॒धायि	सु॒मत्+अ॒धायि, अ॒भि॒नन्दि॒तम॒भूत्	प॒स॒न्द॒ कि॒या
म॒न्म	स्तो॒त्रम्	ग॒या
दे॒वाना॑म्	दे॒वाना॑म्	दे॒वता॑ओं की
आ॒शाः	दि॒शः	दि॒शाओं॑ को
उ॒प	प्र॒ति	की॑ ओ॒र
वी॒तऽपृ॒ष्ठः	का॒न्त॒पृ॒ष्ठो॒पेतः	च॒म॒कती॑ हुई
अ॒नु	अ॒नु+	पी॒ठ॒ वा॒ला
ए॒नम्	ए॒नम्	इ॒स को
वि॒प्राः	मे॒धा॒वि॒नः	बु॒द्धि॒मा॒म
ऋ॒षयः	ऋ॒षयः	ऋ॒षि
म॒द॒न्ति	अ॒मु+म॒द॒न्ति अ॒नु॒मो॒द॒न्ते	सा॒थ ह॑र्ष॒ करते॑ हैं

(४१०३) अ०सं०१ अ०१३२सं०७

देवानाम्	देवानाम्	देवताओं की
पुष्टे	पुष्ट्यै	पुष्टि के लिये
चक्षुम	कृतवन्तःस्मः	हमने किया है
सुवन्धुम्	शोभनं मित्रम्	सुन्दर मित्र को

संस्कृतार्थः ।

कान्तपुष्टः (अश्वः) देवानां दिशःप्रति (गन्तुम्)
समीपे स्थितोऽस्ति, मम स्तोत्रम् (च) अभिनन्दित-
मभूत् मेधाविन ऋषय एनमनुमोदन्ते (वचम्) देवानां
पुष्ट्यै शोभनं मित्रं कृतवन्तःस्मः, ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

चमकती हुई पीठवाला (अश्व) देवताओं की
दिशाओं की ओर (जानेके लिये) समीप में खड़ा है,
(और) मेरा स्तोत्र पसन्द किया गया है, बुद्धिमान
ऋषि इसका अनुमोदन करते हैं, हमने देवताओं की
पुष्टि के लिये सुन्दर मित्र को तैयार किया है ॥ ७ ॥

क.मं.०१ अ.११२मं.०८ (४९५३)

अश्वोदेवता, निचृज्जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।११।

यद्वाजिनोदामसंदानमर्वतो

याशीर्षण्यारश्नारच्चरस्य । यद्वा

घ्राऽस्यप्रभृतमास्येऽतृणं सर्वाताते

अपिदेवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

यत्

यत्

जो

वाजिनः

वेगवतः

वेगवाले की

दाम

(घीवा-)बन्धनम्

(गले की) रस्सी

समुदानम्

(पाद-) बन्धनम्

(पैरों की) रस्सी

अर्वतः

अश्वस्य

घोड़े की

या

॥

जो

(४१०५) क्र०सं०एल०११२सं०८

शीर्षयथा	शिरःसम्बन्धिनी	शिर की
रशना	रशना	रस्सी
रज्जुः	रज्जुः	रस्सी
अस्य	अस्य	इस की
यत्	यत्	जो
वा	च	और
घ	(पूरणः)	-
अस्य	अस्य	इस के
प्रभृतम्	प्रक्षिप्तम्	डाला हुआ
आस्ये	मखे	मुख में
तृणम्	तृणम्	घास

अ० सं० १ सू० १६२ सं० ८ (४३०६)

सर्वा	सर्वाणि	सब
ता	तानि	वे
ते	तव	तेरी
अपि	अपि	भी
देवेषु	देवेषु	देवताओं में
अस्तु	सन्तु (वचनव्यत्ययः)	हों

संस्कृतार्थः।

वेगवतोऽश्वस्य या (ग्रीवा-)रज्जुः, (पाद-)रज्जुः या
 ऽस्य शिरसः रज्जुः, (अन्या च या) रज्जुः, (अस्ति)
 यच्चाऽस्य मुखे तृणं प्रक्षिप्तम् (हे अश्व!) तानि
 सर्वाणि अपि तव (वस्तूनि) देवेषु सन्तु ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

वेगवान् अश्व की (गले की) रस्सी, (पैरों की)
 रस्सी, जो इसके शिर की (रस्सी), (और भी जो)
 रस्सी, (है) और जो इसके मुखमें डाला हुआ घास
 है (हे अश्व!) ये सब तेरी (वस्तुएँ) भी देवताओं
 में हों ॥ ८ ॥

(४३०७) क्र०मं०१५०१५२मं०९

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा

स्वरौ स्वधितौरिप्तमस्ति । यद्वस्त-

योः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा तातेऽपि

देवेष्वस्तु ॥ ६ ॥

यत्

अश्वस्य

क्रविषः

मक्षिका

आश

यत्

यत्

अश्वस्य

मांसम्

(कर्मणिषष्ठी)

मक्षिका

भक्षितवती

यत्

जिस को

अश्व के

मांस को

मक्खी ने

खाया है

जो

अ०मं०१ सू०१६२ मं०९ (४३०८)

वा	च	और
स्वरौ	यूपखण्डे	यूप के टुकड़े में
स्वऽधितौ	शस्त्रे	शस्त्र में
रिप्तम्	लिप्तम्	लगा हुआ
अस्ति	अस्ति	है
यत्	यत्	जो
हस्तयोः	हस्तयोः	हाथों में
शमितुः	शमितुः	काटने वाले के
यत्	यत्	जो
नखेषु	नखेषु	नखों में
सर्वा	सर्वाणि	सब

(४३०९) मां.सं.०१ कृ.११२०२२

ता	तानि	वे
ते	तव	तेरी
अपि	अपि	भी
देवेषु	देवेषु	देवताओं में
अस्तु	सन्तु (वस्तुव्यत्ययः)	हों

संस्कृतार्थः ।

अश्वस्य यन् मांसं मक्षिका भक्षितवती, यद्
यूपखण्डे शस्त्रे च लिप्तमस्ति, यच्छमितुर्हस्तयोर्यत्
(च) नखेषु (लिप्तमस्ति) हे अश्व ! तानि सर्वाण्य-
पि तव (वस्तूनि) देवेषु सन्तु ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

अश्व के जिस मांस को मक्खी ने खाया है,
जो यूप के टुकड़े में और शस्त्र में लगा है, जो
काटने वाले के हाथों में (और) जो नखों में (लगा
गया है) (हे अश्व !) वे सारी तेरी (वस्तुएँ) देवताओं
में हों ॥ ९ ॥

क्र०सं०१सू०१३२सं०१० (४३१०)

अधोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११११

यद्दू॒व॒ध॒य॒मु॒दर॒स्या॒प॒वा॒ति॒ य॒आ॒-
म॒स्य॒क्र॒वि॒षो॒ग॒न्धो॒अ॒स्ति॒ । सु॒कृ॒ता॒त-
च्छ॒मि॒तारः॑ कृ॒ण्वन्तू॒तमे॒धं॑ शृ॒त॒पाकं॑
प॒चन्तु॑ ॥ १० ॥

यत्

यत्

जो

ऊ॒व॒ध॒य॒म्

ई॒ष॒ज्जि॒र्णम्
(सा०भा०)

थोड़ा पका हुआ

उ॒दर॒स्य

उ॒दर॒स्य (म॒ध्ये)

पेट के (बीच)

अ॒प॒वा॒ति॒

अ॒धो॒वा॒यु॒ना
गच्छति

अ॒धो॒वा॒यु॒ द्वा॒रा
जाता है

यः

यः

जो

(४३११) क्र०मं०१सू०१६२मं०६०

आमस्य	अपक्वस्य	कच्चे का
क्रविषः	मांसस्य	मांस का
गन्धः	गन्धः	गन्ध
अस्ति	अस्ति	है
सुकृता	सुकृतम् (विमर्शेरात्वम्)	सुकृत को
तत्	तत्	उस को
शमितारः	शमितारः	काटने वाले
कृण्वन्तु	कुर्वन्तु	करें
उत	च	और
मेधम्	पवित्रम् (यलोपः)	पवित्र को
शृतपाकम्	पूर्णपाकोपेतम्	पूरे पाक वाले को

म.मं०१सू०१४२मं०११ (४३१२)

पचन्तु

पचन्तु

पकावें

संस्कृतार्थः ।

यदुदरस्य (मिथ्ये) ईषज्जीर्णम् (अन्नम्) अधोवायु-
ना गच्छति, यः (च) अपक्वस्य मांसस्य गन्धोऽस्ति,
तच्छमितारः सुकृतं कुर्वन्तु, पवित्रं पूर्णपाकोपेतं च
पचन्तु ॥ १० ॥

भाष्यार्थः ।

जो पेट के (बीच) थोड़ा पका हुआ (अन्न) अधो-
वायु के द्वारा जाता है (और) जो कच्चे मांस का
गन्ध है उसको काटने वाले लोग सुकृत करें और
पवित्र तथा पूर्णपाक वाला पकावें ॥ १० ॥

अश्वोदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

यत्त॑ गा॒त्राद्ग॒निना॑ प॒च्यम॑नाद्भि
शूलं॑ नि॒हत॑स्याव॒धाव॑ति । मात॑द्
भूम्या॑मा॒ग्निष॑न्मातृ॒णेषु॑ दे॒वेभ्य॑स्त-
दु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्त ॥ ११ ॥

(४२१३) मा०सं०१५०१५२सं०१९

यत्	यत्	जो
ते	तव	तेरे
गात्रात्	शरीरात्	अंग से
अग्निना	अग्निना	अग्नि से
पच्यमानात्	पच्यमानात्	पकायेजाते हुए से
अभि	उपरि	ऊपर
शूलम्	शूलम्	शूल को
निऽहृतस्य	स्थापितस्थ	रखे हुए के
अवऽधावति	स्त्वति	टपकना है
मा	मा	मत
तत्	तत्	वह

क्र०सं०१सू०१६२सं०११ (४३१४)

भूभ्याम्	पृथिव्याम्	पृथिवी में
आ	आ +	-
अप्रिषत्	आ + अप्रिषत्, आदिलिष्टं भवतु	लगे
मा	मा	मत
तृणेषु	तृणेषु	घास में
देवेभ्यः	देवेभ्यः	देवताओं के लिये
तत्	तत्	वह
उग्रत्भ्यः	कामयमानेभ्यः	कामना वालों के लिये
रातम्	दत्तम्	दिया हुआ
अस्तु	अस्तु	हो

(४३१५) क्र.०मं०१सू०११२मं०१२

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) अग्निना पच्यमानात् शूलोपरि
स्थापितस्य तव शरीरात् यत्स्त्रवति तद्मा भूम्यां
मा (च) तृणेषु आद्रिलष्टं भवतु, तत्कामयमानेभ्यो
देवेभ्यो दत्तमस्तु ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) अग्नि से पकते हुए शूल पर
रखे तेरे शरीर से जो कुछ टपकता है वह न
पृथिवी में (और) न घास में लगे, वह कामना
करने वाले देवताओं के लिये दिया जाए ॥ ११ ॥

अश्वोक्तेता, जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

ये॒का॒जि॒नं॑ परि॒प॒श्य॑न्ति॒प॒क्वं॑ य॒ज्ञ-
मा॒हुः॑ सु॒र॒भि॒र्नि॒र्ह॑रेति । ये॒चा॒ऽर्व॑तो॒मा-
स॒भि॒क्षामु॑पा॒स॒त॒ उ॒तो॒लै॒षाम॑भि॒गू-
र्ति॒र्न॒द्र॑न्वतु ॥ १२ ॥

क्र०सं० १सू० १६२ सं० १२ (४३१६)

ये	ये	जो
वाजिनम्	अश्वम्	अश्व को
{ परिऽप्- प्रयन्ति	परिपश्यन्ति	चारों ओर से देखते हैं
पक्वम्	पक्वम्	पके हुए को
ये	ये	जो
ईम्	(पूरणः)	-
आहुः	आहुः	कहते हैं
सुरभिः	शोभनगन्धः	सुन्दरगन्ध वाला
निः	निः+	-
हर	निः + हर, अपनय	हटाओ
इति	इति	ऐसे

(४३१७) म०सं०५सू०११२मं०१३

ये	ये	जो
च	च	और
अर्वतः	अश्वस्य	अश्व की
{ मांसऽभि क्षाम्	मांसभिक्षाम्	मांसकी भिक्षा को
उपऽआसते	प्रतीक्षन्ते	बाट देखते हैं
उबो०	अपि	भी
तेषाम्	तेषाम्	उन की
अभिऽगूर्तिः	अनुमतिः (मा०को०)	अनुमति
नः	अस्मान्	हम को
इन्वतु	उत्साहयतु	उत्साहित के

श्रु०मं०१सू०११२मं०१३ (४३१८)

संस्कृतार्थः ।

ये पक्कमश्वं परिपश्यन्ति, ये “शोभनगन्धः (अ-
यं षक्कः इदानीम्) अपनय” इत्याहुः, येचाऽश्वस्य
मांसमिक्षां प्रतीक्षन्ते, तेषामनुमतिरप्यस्मान् उत्सा-
हयतु ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

जो पके हुए अश्व को चारों ओर से देखते हैं,
जो ‘सुन्दर गन्ध वाला (यह पक गया है अब) हटालो’
ऐसे कहते हैं, और जो अश्व के मांस की भिक्षा की
बाट देखते हैं, उनकी अनुमति भी हमको उत्सा-
हित करे ॥ १२ ॥

अश्वोदेवता , त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

यन्नीक्षणं मांसपचन्या उखाया
यापात्राणियूष्णा आसेचनानि । ऊ-
ष्मण्याऽपिधाना चरुणामङ्गाः सूनाः
परिभूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

(४३१९) क्र०अ०१७०११२३०१३

यत्	यत्	जो
निऽर्द्धक्षणम्	पाकपरीक्षा- काष्ठम्	पाक की परीक्षा के लिये काष्ठ
मांसपचन्याः	मांसपचन्याः	मांस पकाने वाली की
उखायाः	स्थाल्याः	हांडी की
या	यानि	जो
पात्राणि	पात्राणि	पात्र
यूष्णः	सूपस्य	सूप के
{ चाऽसेच नानि	आसेचन- साधनानि	सींचने के साधन
ऊष्मण्या	ऊष्मरक्षकानि	उष्ण रखने वाले
अपिऽधाना	अपिधानानि	ढकने

क्र०सं० १सू० १६२मं० १३ (४३२०)

चरुणाम्	चरुपात्राणाम्	चरु के पात्रों के
अङ्काः	अङ्काः	कांटे
सूनाः	छेदनार्थफलकाः	काटने के तखते
परि	परि+	—
भूषन्ति	परि+भूषन्ति, सर्वतोभूषयन्ति	सब ओर से सजाते हैं
अश्वम्	अश्वम्	अश्व को

संस्कृतार्थः ।

यन्मांसपचन्याः स्थाव्याः पाकपरीक्षाकाष्ठं,
यानिसूपस्य आसेचनसाधनानिपात्राणि, उष्ण-
रक्षकानि चरुपात्राणामपिधानानि, अङ्काः, छेदन-
फलकाः (च)अश्वं परिभूषयन्ति ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

जो मांस पकाने की हांडी के पाक की परीक्षा
का काष्ठ है, सूप के सींचने के योग्य पात्र हैं,
उष्णता को रखने वाले चरुपात्रों के ढकने हैं,
कांटे (और) काटने के तखते (ये) अश्व को सब
ओर से सजाते हैं ॥ १३ ॥

(४३२१ क्र०मं०१७०११२ मं०१४

अश्वोदेवता, विराड्ज्योतिष्मतीछन्दः। १२।८।११।११

नि॒क्रम॑णं नि॒षद॑नं वि॒वर्त॑नं यच्च

पङ्क्ती॑श्च म॒र्वतः॑ । यच्च॑ प॒पौ यच्च॑ घा-

सिंज॑घास॒ सर्वा॑ताते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु

॥ १४ ॥

नि॒ऽक्र॑मणम्	धावनम्	दौटना
नि॒ऽस॑दनम्	उपवेशनम्	बैठना
वि॒ऽव॑र्तनम्	लुठनम्	लोटना
यत्	यत्	जो
च	च	और
पङ्क्ती॑श्च	पादबन्धनम् -	पैरों का बांधना
म॒र्वतः॑	अश्वस्य	अश्व का

अ०सं०१००११२०१४ (४३२२)

यत्

च

पपी

यत्

च

घासिम्

जघास

सर्वा

ता

ते

पपि

देवेषु

यत्

च

पीतवान्

यत्

च

तृणम्

भक्षितवान्

सर्वाणि

तानि

तव

अपि

देवेषु

जो

और

पीया

जो

और

घास को

खाया

सब

वे

तेरी

भी

देवताओं से

(४३२३) क्र०मं०१सू०१६२प्र०१५

अस्तु

सन्तु

हों

(वचनव्यत्ययः)

संस्कृतार्थः ।

(यत्) अश्वस्य धावनम्, उपवेशनं, लुठनं,
यच्च पादबन्धनं, यच्च (उदकम्) पीतवान्, यच्च तृणं
भक्षितवान्, (हे अश्व!) तानि सर्वाणि तव (कर्माणि)
देवेष्वपि भवन्तु ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

(जो) अश्व का दौड़ना, बैठना, लोटना, और
जो पैरों का बांधना, और जो (जल को) पीया
है और जो घास को खाया है (हे अश्व!) वे सब
तेरे (कर्म) देवताओं में भी हों ॥ १४ ॥

अश्वोदेवता, जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२।

मात्वाग्निध्वनयीद्विमगन्धि-

मोखाभ्राजन्त्यभिवित्तजघ्निः । द्रुष्टं

वीतमभिगूतं वषट्कृतं तं देवासः प्रति-

गम्यन्त्यप्रवम् ॥ १५ ॥

क्र०सं०१ सू०१६२ सं०१५ (४१२४)

मा	मा	मत
तवा	त्वाग्	तुझ को
अग्निः	अग्निः	अग्नि
ध्वनयीत्	ध्वनयतु	बुलवावे
धूमऽगन्धिः	धूमगन्धवान्	धुँएँकी गन्धवाला
मा	मा	मत
उखा	स्थाली	हांडी
भ्राजन्ती	तप्यमाना	तपती हुई
अभि	अभि +	—
विक्र	अभि+विक्र, भियात्	फट जावे
जघिः	(तापेन) सुगन्धो- पेता	(ताप से) सुगन्धि देने वाला

(४३२५) ऋ०धं०१ स०१३२मं०१५

दृष्टम्	वाञ्छितम्	चाहे हुए को
वीतम्	प्रशंसितम्	पसंद किये हुए को
अभिऽगूर्तम्	प्रयत्नेनसिद्धम्	प्रयत्न से सिद्ध किये हुए को
वषट्ऽकृतम्	वषट्कारेण संस्कृतम्	'वषट्' कहने से शुद्ध हुए २ को
तम्	तम्	उस को
देवासः	देवाः	देवता
प्रति	प्रति +	—
गभ्णन्ति	प्रति + गृभ्णन्ति,	स्वीकार करते हैं
अप्रवम्	स्वीकुर्वन्ति अश्वम्	अश्व को

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) अग्निस्त्वंगं धूमगन्धयुक्तः
(सन्) न ध्वनयतु, तापेन सुगन्धवती तप्यमाना-
स्थाली न भियातु, वाञ्छितं प्रशंसितं प्रयत्नेन

अ०मं०१ अ०१६२मं०१३ (४३२३)

सिद्धं वषट्कारेण संस्कृतम् (च) तमश्च देवाः
स्वीकुर्वन्ति ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) अग्नि तुझको धूप से गन्ध वाला
(हुआ २) न चलावावे, ताप से सुगन्धि देने वाली
तपी हुई हांडी न फट जावे, चाहे हुए पसन्द किये
हुए प्रयत्न से सिद्ध किये हुए (और) वषट् कहने से
शुद्ध हुए २ उस अश्व को देवता स्वीकार करते हैं। १५

अश्वोदेवता, निचृत्त्रिष्टुप्लन्दः । १०।११।११।११

यदश्ववायवासउपस्तृणन्त्य-

धीवासंयाहिरण्यान्यस्मै । सन्दान-

मर्वन्तंपड्बीशं प्रियादेषवायामय-

न्ति ॥ १६ ॥

यत्

यत

जो

अश्ववाय

अश्ववाय

अश्व के लिये

(४३२०) क्र०सं०१सू०११२सं०११

वासः	वस्त्रम्	वस्त्र को
{ उपऽस्तु- णन्ति	आच्छादयन्ति	भिछाते हैं
अधीवासम्	उपर्याच्छादन- योग्यं वस्त्रम्	ऊपर डालने के योग्य वस्त्र को
या	यानि	जो
हिरण्यानि	सुवर्णभूषणानि	सोने के सिंगार
अस्मै	अस्मै	इस के लिये
सम्ऽदानम्	बन्धनरज्जुः	बांधने की रस्सी
अवन्तम्	अश्वस्य (षष्ठ्यर्थे द्वितीया)	अश्व की
पङ्क्वीशम्	पादबन्धनम्	पैरों को बांधने की रस्सी
प्रिया	प्रियाणि	प्रिय

क्र०सं०१सं०१९२सं०११ (४१२८)

दे॒वेषु	दे॒वेषु	दे॒वताओं में
या	आ +	-
या॒म॒य॒न्ति	आ+या॒म॒य॒न्ति प्रा॒प॒य॒न्ति	पहुँचाते हैं

संस्कृतार्थः ।

यदश्वाय वस्त्रमाच्छादयन्ति, (यत्) उपर्याच्छा-
दनयोग्यं वस्त्रं यानि (च) अस्मै सुवर्णभूषणानि
(परिधापयन्ति) (या) अश्वस्य बन्धनरज्जुः पाद-
बन्धनरज्जुः (च एतानि देव-) प्रियणि सर्वाणि
(वस्तूनि) देवेषु प्रापयन्ति ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

जो अश्व के लिये वस्त्र बिछाते हैं, जो इसके लिये
ऊपर का बंदन और सोने के सिंगार (पहनते हैं)
(जो इस) अश्व के बांधने की रस्सी (और) पैरों के
बांधने की रस्सी (है), (ये देवताओं की) प्रिय (वस्तुएँ),
देवताओं को पहुँचाते हैं ॥ १६ ॥

(४३२९) क्र०मं०१८०११२मं०१७

अ॒वोदे॒वता, त्रि॒ष्टुप्छन्दः॥११॥११॥११॥११॥

यत्ते॒सादे॒मह॒साशू॒क्तस्य॒ पा॒ण्य॒र्या
 वाक॒शया॒वातु॒तोद॑ । सु॒चे॒वता॒हवि॒षो
 अ॒ध्वरे॒षु सर्वा॒ताते॒ब्रह्म॒णासू॒दयामि॑

॥ १७ ॥

यत्

यत्

जो

ते

तव

तेरे

सादे

श्रमे

थकने पर

मह॒सा

बलेन

जोर से

शू॒क्तस्य॒

शू॒कारं कुर्वतः

हांपते हुए के

पा॒ण्य॒र्या

पाण्यर्या

पड़ी से

क.सं०१सू०११२४०१७ (४३३०)

वा	(पूरणः)	-
कशया	कशया	चाबुक से
वा	अथवा	अथवा
तुतोद	व्यथितवान्	पीड़ा दी है
सुचाऽद्वय	सुचेव	जैसे सुच से
ता	तानि	उन को
हविषः	हविषः	हवि के
अध्वरेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
सर्वा	सर्वाणि	सब को
ता	तानि	उन को
ते	तव	तेरे
ब्रह्मणा	मन्त्रेण	मंत्र से
सूदयामि	निराकरोमि	हटाता हूँ

(४३३१) क्र०मं०१सू०१२मं०१८

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) यद् बलेन शूत्कारं कुर्वतस्तव
श्रमे (सति मनुष्यः) पाषण्या कशया वा व्यथित-
वान्, तानि तानि सर्वाणि तव (दुःखानि) यज्ञेषु
हविषः स्रुचेव मन्त्रेण निराकरोमि ॥ १७ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) जो तुझ जोर से हांपते हुए के थक-
ने पर (मनुष्य ने) एड़ी से अथवा चाबुक से पीड़ा
दी है, उन २ सब तेरे (दुःखों को) मंत्र से निवृत्त
करता हूं जैसे यज्ञों में हवि के स्रुच से (कष्ट को
निवृत्त) करते हैं ॥ १७ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

चतुस्त्रिंशद्वाजिनोदेवबन्धो-

र्वङ्क्लीरप्रवस्यस्वधितिःसमेति ।

अच्छिद्रागाचावयुनाक्षणीत पक्षप-

करनुघुष्याविशस्त ॥ १८ ॥

क्र०सं०१६०१६२सं०१८ (४३३२)

चतुः॥चिंशत्	चतुस्त्रिंशत्	चौतीस
वाजिनः	वेगवतः	वेग वाले की
देव॥बन्धोः	देवप्रियस्य	देवताओं के प्यारे की
वङ्क्रीः	पाश्वास्थीनि	पसली की हड्डियों को
अश्वस्य	अश्वस्य	अश्व की
स्व॥धितिः	छुरिका	छुरी
सम्	सम् +	-
एति	सम् + एति, प्रविशात्	घुसती है
अच्छिद्रा	छिद्ररहितानि	निर्दोषों को
गात्रा	गात्राणि	अंगों को
वयुना	ज्ञानपूर्वकम्	ज्ञानपूर्वक

(४३३३) क्र०सं०१सू०१३२सं०१८

कृ॒णो॒त	कृ॒न्त॒त	का॒टो
प॒रु॒ऽप॒रुः	प्र॒ति॒प॒र्व	प्र॒त्ये॒क॒ जोड़॒ को
अ॒नु॒ऽघु॒ष्य	सं॒श्रा॒व्य	सु॒ना॒ कर
वि	वि +	-
श॒स्त	वि+श॒स्त, वि॒शंस॒त	का॒टो

संस्कृतार्थः ।

देवप्रियस्य वेगवतोऽश्वस्य चतुस्त्रिंशत् पार्श्व-
स्थीनि (प्रति) छुरिका प्रविशति, (हे विशंसितारः !
यूयम्) ज्ञानपूर्वकम् (अस्य) निश्छिद्राणि गात्राणि
कृन्तत, प्रतिपर्व संश्राव्य विशंसत ॥ १८ ॥

भाषार्थः ।

देवताओं के प्यारे वेगवान अश्व की पसली
की चौतीस हड्डियों में छुरी घुसती है (हे काटने
वालो !) तुम ज्ञानपूर्वक (इस के) निर्दोष अंगों
को काटो, प्रत्येक जोड़ का नाम सुना कर काटो ॥ १८

क्र०सं०१सू०१६२सं०१९ (४३३४)

अश्वोदेवता, त्रिष्टुपूछन्दः । ११११११११११

एकस्तवष्टुरप्रवस्यविशस्ता

द्वायन्ताराभवतस्तथकृतुः । याते

मात्राणामृतुथाकृणोमि तातापिण्डा-

नांप्रजुहोम्यग्नौ ॥ १६ ॥

एकः	एकः	एक
त्वष्टुः	त्वष्टुः (निर्मितस्य)	त्वष्टा के (बनाए हुए का)
अप्रवस्य	अश्वस्य	अश्व का
विशस्ता	विशस्ता	काटने वाला
द्वा	द्वौ	दो

(४११५) क्र०सं०१५०१११४०१९

यन्तारा	नियमयितारौ	थांभने वाले
भवतः	भवतः	होते हैं
तथा	इति	यह
चतुः	व्यवस्था (भा०को०)	व्यवस्था (है)
या	ग्रानि	जिन को
ते	तत्र	तैरे
गाचाणाम्	गात्राणि (द्वितीयाद्यैषण्टी)	अंगों को
चतुऽथा	क्रमेण	क्रम से
कृणोमि	कृन्तामि	काटता हूँ
ताऽता	तानितानि	उन उन को
पिण्डानाम्	पिण्डान् (,,)	पिण्डों को
प्र	प्र +	

(४३२०) मातृ-सं-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०

मास्वधितिस्तन्व१ मातिष्ठिपत्ते ।
 मातेगृध्नुरविशस्तातिहायच्छिद्रागा-
 चाण्यसिनामिथूकः ॥ २० ॥

मा	मा	मत
त्वा	त्ताम्	तुम् को
तपत्	तापयतु (अन्तर्माधितप्यर्थः)	तपावे
प्रियः	प्रियः	प्यारा
आत्मा	आत्मा	आत्मा
पपिड्यन्तम्	गच्छन्तम्	जाते हुए को
मा	मा	मत
स्वधितिः	छुरिका	छुरी

सं.सं.०१५.०१२२००२२ (४३३४)

तन्वः	शरीरोपलक्षितानि गात्राणि	अंगों को
आ	आ+	-
तिस्थिपत्	आ+तिस्थिपत्, तिष्ठतु	ठैरे
ते	तव	तेरा
मा	मा	मत
ते	तत्र	तेरा
गृध्नः	लुब्धः	लालची
अविऽशस्ता	विशसनेऽकुशलः	काटने में मूर्ख
अतिऽहाय	विहाय	छोड़ कर
छिद्रा	सन्धिस्थानानि	जोड़के स्थानों को
गात्राणि	गात्राणि	अंगों को

(४३१९) क्र०मं०१६०१६२मं०२०

असिना	शस्त्रेण	शस्त्र से
मिथु	व्यर्थम्	व्यर्थ
काः०	करोतु	करे

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) गच्छन्तं त्वां प्रियआत्मा न ताप-
यतु, छुरिका तव गात्राणि (प्रति) न तिष्ठतु,
(केवलमांसस्य)लुब्धः विशसनाकुशलः सन्धिस्थाना-
नि विहाय व्यर्थतवगात्राणि शस्त्रेण (छिन्नानि)
न करोतु ॥ २० ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) जाते हुए तुझ को प्रिय आत्मा न
तपावे, छुरी तेरे अंगों में न ठैरी रहे (केवल मांसका)
लालची काटने में मूर्ख (मनुष्य) जोड़ के स्थानों
को छोड़ कर व्यर्थ तेरे अंगों को शस्त्र से न
काटे ॥ २० ॥

अश्वोदेवता, भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः ॥ १२ ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

नवा॒उ॒त्त॒न्मि॒य॒से॒न॒रि॒ष्य॒सि

म० सं० १२००२१२००२१ (४५५०)

दे॒वाँ इ॒दं पि॒पथि॑भिः सु॒गै॒भिः । ह॒री॒ते
यु॒ज्जा॒ष्ट॒प॒ता अ॒भू॒ता मु॒पा॒स्था द्वा॒जी
धु॒रि॒रा॒स॒भ॒स्य ॥ २१ ॥

न

वै

ऊ॒म्०

ए॒तत्

मि॒थ॒से

न

रि॒ष्य॒सि

दे॒वान्

न

ए॒व

(पू॒र॒णः)

ए॒तत्

मि॒थ॒से

न

हिं॒स्य॒से

दे॒वान्

नहीं

ही

-

यह

तू मरता है

नहीं

तू दुखाया जाता
है

देवताओं को

(५१४१) अ० सं० १५०११२४०२१

इत्	एत्र	ही
एषि	प्राप्नोषि	तू प्राप्त होता है
पथिऽभिः	मार्गैः	मार्गों से
सुऽगेभिः	सुखेन गन्तव्यैः	सुखपूर्वक जाने योग्यों से
हरी०	इन्द्रस्याश्नौ	इन्द्र के घोड़े
ते	तत्र	तेरे
युञ्जा	सहचारिणौ	साथी
पृषती०	मरुतामश्नौ	मरुतों के घोड़े
अभूताम्	अभूताम्	हुए हैं
उप	उप+	-
पस्थात्	उप+अस्थात्, उप- स्थितवान्	पास ठेरा है

अ०सं०१सू०११२३०२१ (४३४२)

वाजी	अश्वः	घोड़ा
धुरि	धुरि	धुरि में
रासभस्य	रासभस्य	रासभ की

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व ! त्वम्) नैवैतद् म्रियसे न (च) हिंस्यसे, सुखेन गन्तव्यैर्मार्गैर्देवानेव प्राप्नोषि, इन्द्र-
स्याऽश्वौ मरुतामश्वौ (च) तव सहचारिणौ अभूताम्,
(अश्विनोः) रासभस्य धुरि (अयम्) अश्वः उप-
स्थितवान् ॥ २१ ॥

नाषार्थः ।

(हे अश्व !) तू यह मरता नहीं है (और) न
दुःख पाता है, सुखपूर्वक जाने योग्य मार्गों से
देवताओं को ही प्राप्त होता है, इन्द्र के घोड़े
(और) मरुतों के घोड़े तेरे साथी बने हैं (अश्विनों के)
रासभ की धुरि में (यह) घोड़ा पास ठेरा है ॥ २१ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ११११११११११

सुगन्धिनो वाजी स्वप्रग्यं पुंसः

(४३४३) क्र०मं०१सू०१६२मं०३२

पुत्रा॑उ॒तवि॒श्व॒वापु॒षं॒रयि॒म् । अ॒ना॒गा-
 स्त॒वं॒नीअ॒दि॒तिः॒क्षणी॒तु क्ष॒त्रं॒नीअ॒श्वो
 व॒नतां॑ह॒विष्म॑न् ॥ २२ ॥

सु॒ष्ठु॒म॒व्य॒म्	शोभ॑नेन गो॒स- मू॒हेन॑ यु॒क्तम्	सु॒न्दर॑ गौ॒ओं- वा॒ले को
नः	अ॒स्मभ्य॑म्	हमा॑रे लिये
वा॒जी	अ॒श्वः	घोड़ा
सु॒ष्ठु॒अ॒श्व॒व्य॒म्	शोभ॑नेना॒श्व- समू॒हेन॑ यु॒क्तम्	सु॒न्दर॑ घोड़ों वा॒ले को
पुं॒सः	मृ॒त्यान्	दा॒सों को
पु॒त्रान्	पु॒त्रान्	पु॒त्रों को
उ॒त	च ,	और

क्र०सं०१ सू०११२सं०२२ (४३४४)

विप्रवऽपुषम्	सर्वस्य पोषकम्	सब के पुष्ट करने वाले को
रयिम्	धनम्	धन को
{ अनागाः	निरपराधत्वम्	अपराध से रहित होने को
{ ऽहवम्		
नः	अस्माकम्	हमारे
अदितिः	अदितिः	अदिति
कृणोतु	करोतु	करे
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्यबल को
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
अश्वः	अश्वः	अश्व
वनताम्	ददातु	देवे
हविष्मान्	हविर्युक्तः	हवियों से युक्त

(४३४५) ऋ०मं०१सू०१६२मं०२२

संस्कृतार्थः ।

(अयम्) अश्वः शोभनेन गोसमूहेन शोभनेना-
ऽश्वसमूहेन (च) युक्तं सर्वपोषकं धनं भृत्यान् पुत्रां-
श्चास्मभ्यं ददातु, अदितिस्माकं निरपराधत्वं करोतु,
हविर्युक्तोऽश्वः अस्मभ्यं राज्यबलं ददातु ॥ २२ ॥

भाषार्थः ।

(यह) अश्व सुन्दर गौओं से (और) सुन्दर घोड़ों
से युक्त सब के पोषण करने वाले धन को, भृत्यों
को और पुत्रों को हमारे ताई देवे, अदिति हम को
निरपराध करे, और हवि से युक्त (यह) अश्व
हमको राज्यबल देवे ॥ २२ ॥

इति द्विषष्ट्यधिकशततमं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०१६३ (४३४६)

ऋ०मं०१सू०१६३।

अश्वोदेवता, दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोग :--

१-११। 'यदक्रन्द-' इत्यादय एकादशचौमध्यमेऽहनि उराकरणाया-
वस्थितमश्वंस्तोतुं विनियुक्ताः (आ० १०।८।१)

१२-१३। आश्वमेधिके मध्यमेऽहनि अध्विगुप्तैवे 'मानोमित्र'-इति
सूक्तानन्तरम् 'उपप्रागाच्छन्नं-' इति 'उपप्रागात्परमं-'
इति च वेदचौ शंसनीये (आ० १०।८।७) ।

सूक्त का भावार्थ ।

इस सूक्त में ऋषि अश्वमेध के अश्व में सूर्य
और ब्रह्माण्ड की भावना करते हैं ।

हे अश्व ! तू जो अन्तरिक्ष से अथवा जलों से निकल
कर प्रकट हुआ है उस तेरे श्येन के से पक्ष और हरिण की सी
भुजाएं थीं, ऐसा तेरा मइत जन्म स्तुति करने के योग्य है ॥ १ ॥
इस अश्वको यम ने त्रि। के ताई दिया, उसने इसको रथ में जोड़ा,
पहिले पड़ल इस पर इन्द्र सवार हुए, ओर गन्धर्व ने इस की रास
को पकड़ा, हे वसुदेवताओ ! आपने इस अश्व को सूर्य में से घड़
कर रचा है ॥ २ ॥ हे अश्व ! तू ही यम है, तू ही सूर्य है, तू ही
गुप्त नियम से त्रित है, तू नियत समय में चन्द्रमा से अलग होता
है, द्युलोक में तेरे तीन बांधने के स्थान बतलाते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्व !
द्युलोक में तेरे तीन बांधने के स्थान जलों में तीन और अन्तरिक्ष
में तीन बतलाते हैं, हे अश्व ! मुझे तो तू वरुण ही प्रतीत होता है
जहां से तेरा उत्तम जन्म बतलाते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्व ! ये तेरे इन्द्र
करने के स्थान हैं, ये तुझ जयशील के पुरों के जोर हैं, यहां सैंने

(४३४७)

क्र०मं०१ सू०१६३

तेरी शुभदायक किरणरूप रासों को देखा है, जिनकी कन को पालने वाले रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥ हे अश्व ! मैंने नीचे से द्युलोक की ओर उड़ने हुए सूर्यरूप पक्षी को तेरी आत्मा निश्चय किया है, जिस पक्षी का तिर धूलिरहित सुगम मार्गों में वेग से प्रयत्नपूर्वक जाता हुआ मैंने देखा है ॥६॥ हे अश्व ! पृथिवी पर अन्तों को जीतने वाले तेरे उत्तम रूप को मैंने देखा है जब २ मनुष्य तेरे लिये खाने को लाता है तब २ तू खाता रहता है, कभी यस नहीं करता ॥ ७ ॥ हे अश्व ! रथ तेरे पीछे चलते हैं, मनुष्य तेरे पीछे और गोएँ तेरे पीछे चलती हैं, कन्याओं का सौभाग्य तेरे पीछे है, मनुष्य तेरी मित्रता को चाहते हैं और देवता पराक्रम को तेरे पराक्रम से मापते हैं ॥ ८ ॥ यह ब्रह्माण्डरूपी अश्व सोने के सींगों वाला और लोहे के पैरों वाला है (अर्थात् सूर्य इस का सिर और पृथिवी इस के पैर हैं) देवता भी हवि भक्षण के लिये इस की प्रतीक्षा करते हैं, मन के वेग वाला आत्मरूप इन्द्र भी इस से छोटा है जो सब से पहले इस अश्व पर चढ़ा था ॥ ९ ॥ चौड़े नितम्ब वाले और चिकनी पीठ वाले बलवान ब्रह्माण्डरूपी दिव्य अश्व हंसों की न्याई कतार बांध कर आकाश के मार्ग से चलते हैं ॥ १० ॥ हे सूर्य रूपी अश्व ! तेरा शरीर उड़ने वाला है, तेरा चित्त वायु की न्याई वेग वाला है और तेरे किरण रूप सींग जो बहुत दूर तक फैले हुए हैं आकाश रूपी बन में चमकते हुए विचरते हैं ॥ ११ ॥ वेगवान अश्व देवताओं के पास जाने पर मन लगाए हुए बध के स्थान पर आगया है, अगे २ इस के बन्धु अज को ले जाते हैं, पीछे गायन करते हुए ऋषि चलते हैं ॥ १२ ॥ यह अश्व दिव्य अश्वों को और अपने माता पिता द्यौ और पृथिवी को प्राप्त होने के लिये देवस्थान के समीप पहुँचा है, यह आज बहुत प्रसन्न हो कर देवताओं के पास जाता है और उनसे दानी यजमान के लिये उत्तम उत्तम धनों को भागता है ॥ १३ ॥

क्र०मं०१ सू०१६३मं०१ (४३४८)

अ३वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११११

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्

समुद्रादुत्तवापुरीषात् । प्रयेनस्य

पक्षाहविणस्यबाहू उपस्तुत्यंमहि

जातंते अर्वन् ॥ १ ॥

यत्

यः

जिस ने

(विभक्तैर्लक्)

अक्रन्दः

महाशब्दमकरोः

तूने बड़ा शब्द
किया

प्रथमम्

प्रथमम्

पहिले

जायमानः

जायमानः

उत्पन्नहोता हुआ

उत्पद्यन्

उद्यन्

उदय होता हुआ

(४३४९) ऋ०मं०१सू०१६३ मं०१

समुद्रात्	अन्तारिक्षात् (निघ०२।१०)	अन्तरिक्ष से
उत	उत +	-
वा	उत + वा	अथवा
पुरीषात्	उदकात् (निघ०३।१९)	जल से
इयेनस्य	इयेनस्य	इयेन (बाज) के
पक्षा	पक्षौ	पर
हरिणस्य	हरिणस्य	हरिण के
बाहू०	बाहू	भुजाएं
{ उपऽस्तु- त्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुति के योग्य
महि	महत्	महान

क्र०मं०१ सू०१६३मं०१ (४३५०)

जा॒तम्	जन्म	जन्म
ते	तव	तेरा
अ॒व॒न्	हे अश्व !	हे अश्व

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व ! यः (त्वम्) प्रथमं जायमानः अन्त-
रिक्षाद् उदकाद्वा उद्यन् (सन्) महाशब्दमकरोः,
(तस्य) तव श्येनस्पक्षौ हरिणस्यवाहू (च आस्ताम्)
(तव) महज्जन्म स्तुतियोग्यम् (अस्ति) ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्व ! जिस पहिले उत्पन्न होते हुए (और)
अन्तरिक्ष वा जल से निकलते हुए तूने बड़ा शब्द
किया, (उस) तेरे श्येन के पक्ष (और) हरिण की
भुजाएं (थीं) (तेरा) महत्त जन्म स्तुति करने के
योग्य है ॥ १ ॥

अश्वोदेवता, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

यू॒मे॒न॒दृ॒क्ष॑न् चि॒त॒ए॒न॒म॒यु॒न् गि॒न्द्र॒-

(४३५१) ज्ञ० सं० १ म० १११ सं० २

ए॒णं॒ प्र॒थ॒मी॒ अ॒ध॒य॒ति॒ष्ठ॒त् । ग॒न्ध॒र्वो॑
 अ॒स्य॒ र॒श्ना॒म॒गृ॒भ्णा॒त् सू॒रा॒द॒प्र॒व॒स॒-
 वो॒ नि॒र॒त॒ष्ट ॥ २ ॥

य॒मे॒न॑

यमे॒न

यम॒से

द॒त्त॒म्

दत्त॒म्

दि॒ये हु॒ए को॑

त्रि॒तः॑

त्रि॒तः

त्रि॒त ने॑

ए॒न॒म्

ए॒न॒म्

इ॒स को॑

अ॒यु॒न॒क्

यो॒जि॒त॒वा॒न्

जो॒ड़ा॑ हे॒

इ॒न्द्रः॑

इ॒न्द्रः

इ॒न्द्र

ए॒न॒म्

ए॒न॒म्

इ॒स को॑

क्र०सं०१ सू०११३ सं०२ (४३५२)

प्रथमः	प्रथमः (भूत्वा)	पहिले
अधि	अधि +	-
अतिष्ठत्	अधि+अतिष्ठत्, आरूढवान्	चढ़ा है
गन्धर्वः	गन्धर्वः	गन्धर्व ने
अस्य	अस्य	इस की
रशनाम्	रशनाम्	रास को
अगृह्णात्	गृहीतवान्	पकड़ा है
सूरात्	सूर्यात्	सूर्य से
अश्वम्	अश्वम्	अश्व को
वसवः	हे वसवः !	हे वसु देवताओ
निः	निः +	-

(४३५३) क०सं०१ स०१६३सं०३

अतष्टनिः+अतष्ट, यूयं | तुमने बनाया है
सम्पादितवन्तः

संस्कृतार्थः।

यमेनदत्तमेनम् अश्वं त्रितोयोजितवान्, इन्द्र-
एनं प्रथममारूढवान्, गन्धर्वोऽस्य रशनां गृहीतवान्,
हे वसवः ! यूयम् (एनम्) सूर्यात् सम्पादित-
वन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः।

यमसे दिये हुए इस अश्व को त्रितने जोड़ा है,
इन्द्र इस पर पहिले चढ़े हैं, गन्धर्व ने इस की
रास को पकड़ा है, हे वसुदेवताओ ! आप ने (इस को)
सूर्य से बनाया है ॥ २ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

असि॑य॒मोअस्या॑दि॒तयोअ॒र्व न॑न-
सि॑त्रि॒तो॒गुह्ये॑न॒व्रते॑न । अ॒सि॒सोमे॑न
स॒मया॑वि॒पृक्त॑ आ॒हुस्ते॒त्रीणि॑दि॒वि
व॒न्ध॒नानि॑ ॥ ३ ॥

अ०सं०१ अ०१११११०३ (४३५४)

असि	असि	तू है
यमः	यमः	यम
असि	असि	तू है
आदित्यः	सूर्यः	सूर्य
अर्वन्	हे अश्व !	हे अश्व
असि	असि	तू है
चितः	त्रितः	त्रित
गुह्येन	गुह्येन	गुप्त से
व्रतेन	नियमेन	नियम से
असि	असि	तू है
सोमेन	सोमेन	सोम से

(४३५५) ऋ०मं०१ सू०१६३ मं०३

समया	नियतकाले (आ०को०)	नियतकाल में
विऽपृक्तः	वियुक्तः	अलग
आहुः	आहुः	कहते हैं
ते	तव	तेरे
त्रीणि	त्रीणि	तीन
दिवि	दिवि	धौ में
बन्धनानि	बन्धनानि	बन्धनों को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व ! (त्वम्) यमोऽसि, सूर्योऽसि, गुप्तेन निय-
मेन त्रितः (च) असि (त्वम्) नियतकाले सोमेन वियुक्तः
असि, द्युलोके त्रीणि तव बन्धनानि कथयन्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्व ! तू यम है, सूर्य है, (और) गुप्त
नियम से त्रित है (तू) नियत काल में सोम से अलग
(होता है) द्युलोक में तेरे तीन बन्धन बतलाते हैं ॥३॥

ऋ०मं०१सू०१६३मं०४ (४३५६)

अ३वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

त्रीणि॑त॒आहु॑र्दिवि॒बन्ध॑नानि

त्री॒ण्यप्सु॑त्री॒ण्यन्तः॑समु॒द्रे । उ॒तेव॑

मे॒वरु॑णप्र॒कृन्त॑स्य॒र्वन् य॑चा॒तआ॒हुः

प॒रमं॑ज॒निच॑म् ॥ ४ ॥

त्रीणि॑

त्रीणि

तीन

ते

तव

तेरे

आहुः

आहुः

कहते हैं

दिवि

दिवि

द्यौ में

बन्धनानि

बन्धनानि

बन्धनों को

(४३५७) क्र०मं० १६३ मं० ४

त्रीणि ^१	त्रीणि	तीन
अप्सु	अप्सु	जलों में
त्रीणि ^१	त्रीणि	तीन
अन्तः०	मध्ये	बीच
समुद्रे	अन्तरिक्षे	अन्तरिक्ष में
उतऽइव	तु	तो
मे	मह्यम्	मेरे लिये
वरुणाः	वरुणः	वरुण
कृन्तिस	प्रतिभासि (सा०भा०)	तू दीखता है
अर्वन्	हे अश्व !	हे अश्व
यत्र	यत्र	जहाँ

क०ध०१७०१११म०५ (४३५८)

ते	तव	तेरे
आहुः	आहुः	कहते हैं
परमम्	उत्तमम्	उत्तम को
जनित्रम्	जन्म	जन्म को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व ! त्रीणि तव बन्धनानि द्युलोके त्रीणि-
अप्सु, त्रीणि (च) अन्तरिक्षे आहुः, मय्यं तु (त्वम्)
वरुणः प्रतिभासि यत्र तव उत्तमं जन्म आहुः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्व ! तीन तेरे बन्धन द्युलोक में तीन
जलों में (और) तीन अन्तरिक्ष में बतलाते हैं, मुझे तो
(तू) वरुण प्रतीत होता है जहां तेरा उत्तम जन्म
बतलाते हैं ॥ ४ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

इ॒मा॒ते॒वा॒जि॒न्न॒व॒मा॒र्ज॒ना॒नी॒ मा

(४३५९) क्र०सं०१८०११३ पृ०५

शफानां सवितुर्निधाना । अत्रातेभ-
 द्धारशना अपश्य मृतस्य या अभिरक्ष-
 न्ति गोपाः ॥ ५ ॥

इमा

इमानि

ये

ते

तव

तेरे

वाजिन

हे अश्व !

हे अश्व

{ अ०मार्ज-
 नानि

मार्जनस्थानानि

शोधने के स्थान

इमा

इमानि

ये

शफानाम्

शफानाम्

खुरों के

सवितुः

जेतुः

जीतने वाले के

सं० ११३३०५ (४५१०)

निऽधाना	स्थानानि	स्थान
अत्र	अत्र	यहां
ते	तव	तेरी
भद्राः	कल्याणरूपाः	कल्याण रूपों को
रशनाः	रशनाः	रासों को
अपश्यम्	दृष्टवान्क्षिम्	मैंने देखा है
ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत के
याः	याः	जिन को
{ अभिऽर- क्षन्ति	संरक्षति	खूब रक्षा करते हैं
गोपाः	पालकाः	पालने वाले

(४३११) क्र०मं०१ स्०१६३ धं०१

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व ! इमानि तव मार्जनस्थानानि (सन्ति)
इमानि (च) जेतुः (तव) शफानां स्थानानि (सन्ति)
अत्र तव कल्याणरूपा रशना दृष्टवानस्मि याः
ऋतस्य पालकाः रक्षन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्व ! ये तेरे शोभने के स्थान (हैं) (और)
ये (तुझ) जीतने वाले के खुरों के स्थान (हैं)
यहां तेरी कल्याणरूप रासों को मैंने देखा है जिनको
ऋत के पालने वाले खूब रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ११११११११११॥

आ॒त्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒ रा॒जाना॑ म॒-
वो॒ दि॒वा॒ प॒त॒य॒न्तं॑ प॒त॒ङ्गम् । शि॒रो॑ऽअप॒-
श्यं॑ प॒थि॒भिः॑ सु॒गे॒भि॒र॒रे॒णु॒भिर्ज॑ह॒मानं॑
प॒त॒त्रि ॥ ६ ॥

क्र०सं०१ सू०१६१सं०१ (४३६२)

आ॒त्मा॒नम्	आ॒त्मा॒नम्	आ॒त्मा को
ते	तव	तेरी
म॒न॒सा	म॒न॒सा	म॒न से
आ॒रा॒त्	अ॒ति॒दू॒रेण	अ॒त्य॒न्त दूर से
अ॒जा॒ना॒म्	ज्ञा॒त॒वा॒न॒स्मि	मैंने जाना है
अ॒वः	अ॒व॒स्ता॒त्	नीचे से
दि॒वा	द्यु॒लो॒केन	द्यु॒लोक से
प॒त॒य॒न्त॒म्	उ॒त्प॒त॒न्त॒म्	उड़ते हुए को
प॒त॒ङ्ग॒म्	पक्षि॒णम्	पक्षी को
शि॒रः	शि॒रः	सिर को
अ॒प॒श्य॒म्	दृ॒ष्ट॒वा॒न॒स्मि	मैंने देखा है

(४३१३) क्र०सं०१ सु०१६३ प्र०६

पथिऽभिः	मार्गैः	मार्गों से
सुऽगेभिः	सुखेन गन्तव्यैः	सुखपूर्वक जाने योग्यों से
अरेणुऽभिः	रेणुरहितैः	बिना धूलिवालों से
जेहमानम्	प्रयतमानम् (आ० को०)	प्रयत्न करते हुए को
पतत्रि	शीघ्रगामि	शीघ्र चलने वाले को

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) (अहम्) दूरात् तवात्मानं मनसा-
ज्ञातवानस्मि, अधस्ताद् द्यलोकेन उत्पतन्तं पक्षिणम्
(ज्ञातवानस्मि) सुगन्तव्यैरेणुरहितैर्मार्गः प्रयतमानम्
(तव) शीघ्रगामि शिरः (च) दृष्टवानस्मि ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) (मैंने) दूर से तेरी आत्मा को मन
से जान लिया है, (मैंने) नीचे से द्यलोक पर उड़ते हुए
पक्षी को (जान लिया है) और सुखपूर्वक जाने योग्य
धूलि रहित मार्गों से प्रयत्न करते हुए (तेरे) शीघ्र-
गामी सिर को मैंने देखा है ॥ ६ ॥

अ० सं० १९०१६३ सं० ७ (४३१४)

अइवोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

अत्रातेरूपमुत्तममपश्यं जिगीष-
माणमिषआपदेगोः । यदातेमर्तो
अनुभोगमानडादिदृग्रसिष्ठओष--
धीरजीगः ॥ ७ ॥

अत्र	अत्र	यहां
ते	तव	तेरे
रूपम्	रूपम्	रूप को
उत्तमम्	उत्तमम्	उत्तम को
अपश्यम्	दृष्टवानस्मि	मैंने देखा है
{ जिगीष- माणम् }	जेतुमिच्छन्तम्	जीतने की इच्छा करते हुए को

(४३१५) क्र०मं०१ सू०११३ मं०७

दृषः	अन्नम् (कर्मणिषष्ठी)	अन्न को
आ	सर्वतः	सब ओर से
पदे	स्थाने	स्थान में
गोः	पृथिव्याः	पृथिवी के
यदा	यदा	जब
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
मर्तः	मनुष्यः	मनुष्य
अनु	अनु+	-
भोगम्	भक्ष्यम्	खाने को
आनट्	अनु+आनट्, अनुक्रमेण प्रापयति	क्रमसे पहुंचाताहै -

अ०मं०१सू०११३मं०७ (४३१६)

आत्	नितराम्	खूब
इत्	(पूरणः)	-
ग्रसिष्ठः	अतिग्रसिता	अत्यन्त खाने वाला
ओषधीः	ओषधीः	ओषधियों को
अजीगः०	भक्षयसि	तू खाता है

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्व !) अहम् अत्र पृथिव्याःस्थाने
अन्नं जेतुमिच्छन्तं तव उत्तमं रूपं दृष्टवानस्मि,
यदा मनुष्यः त्वदर्थं भक्ष्यं क्रमेण प्रापयति (तदा)
अतिग्रसिता (त्वम्) ओषधीर्नितरां भक्षयसि ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्व !) मैंने यहाँ पृथिवी के स्थान में
अन्न को जीतने की इच्छा करते हुए तेरे उत्तम
रूप को देखा है, जब मनुष्य तेरे लिये खाने को
क्रम से लाता है तब अत्यन्त खाने वाला तू
ओषधियों को खूब भक्षण करता है ॥ ७ ॥

(४३६७) क्र.०मं०।सू०१६३मं०८

अश्वोदेवता, निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११०॥

अनु॑ त्वा॒ रथो॑ अनु॒ मर्यो॑ अ॒र्वन्नु॑-

गावोऽनु॑ भगः कनीनाम् । अनु॒ ब्राता-

स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु रनु॑ दे॒वाम॑ मिरे॒वी-

र्यं॑ते ॥ ८ ॥

अनु॑	अनु॑	पीछे
त्वा॒	त्वाम्	तुझ का
रथः॑	रथः	रथ
अनु॑	अनुसृत्य	अनुकूल
मर्यः॑	मनुष्यः	मनुष्य
अ॒र्वन्	हे अश्व !	हे अश्व

क्र०सं०१ सू०११३ सं०८ (४३१८)

अनु

अनुसृत्य

अनुकूल

गावः

गावः

गौएँ

अनु

अनुसृत्य

अनुकूल

भागः

भाग्यम्

भाग्य

कनीनाम्

कन्यकानाम्

कन्याओं का

अनु

अनुसृत्य

अनुकूल

व्रातासः

मनुष्याः

मनुष्यों ने

(निघं० २३)

तव

तव

तेरी

सख्यम्

मित्रताम्

मित्रता को

द्वयुः

गतवन्तः

गएँ हैं

अनु

अनु

पीछे

(४३९) ऋ०मं०१ सू०१६३मं०८

दे॒वाः

दे॒वाः

दे॒वता

म॒मि॒रे

मि॒तव॒न्तः

मा॒पा है

वी॒र्य॑म्

ब॒लम्

ब॒ल को

ते

तव

तेरे

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व ! रथस्त्वामनु (सरति) मनुष्यः (त्वाम्)
 अनु, गावः (त्वाम्) अनु, कन्यकानां भाग्यम् (च
 त्वामनुसरति) मनुष्यास्तव मित्रतामनुगतवन्तः,
 देवास्त्वामनु वीर्यमितवन्तः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्व ! रथ तेरे पीछे (चलते हैं) मनुष्य तेरे
 पीछे, गौएँ तेरे पीछे (और) कन्याओं का भाग्य तेरे पीछे
 चलता है) मनुष्य तेरी मित्रता के पीछे गये हैं, देव-
 ताओं ने तेरे पीछे वीर्य को मापा है ॥ ८ ॥

क्र०सं०१२१३ सं०९ (४३७०)

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

हिरण्यशृङ्गोऽयौ अस्य पादा म-
नोजवा अवर इन्द्र आसीत् । देवा-
इदस्य हविरदामायन् यो अर्वन्तं
प्रथमोऽध्यतिष्ठत् ॥ ६ ॥

हिरण्य- शृङ्गः	हिरण्यशृङ्गः	सोने के सींगों वाला
अयः	लोहमयाः	लोहे के बने हुए
अस्य	अस्य	इस के
पादाः	पादाः	पैर
मनःजवाः	मनोवद् वेगयुक्तः	मन की न्याई वेग वाला

(४३७१) क्र०सं०१ ख०१६३ पं०९

अवरः	अवरः	छोटा
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
आसीत्	आसीत्	था
देवाः	देवाः	देवता
इत्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इस के
हविःऽअद्यम्	हविर्भक्षणम् (प्रति)	हवि खाने (की ओर)
आयन्	प्राप्तवन्तः	प्राप्त हुए
यः	यः	जो
अर्वन्तम्	अश्वम्	अश्व को
प्रथमः	प्रथमः(भूत्वा)	पहिले पहल

क्र०सं०१स०१६३मं०१० (४३७२)

{ अधिऽअ- तिष्ठत् }	आरूढवान्	चदा
-----------------------	----------	-----

संस्कृतार्थः ।

(अयमश्वः) हिरण्यशृङ्गः (अस्ति) अस्य पादाः
लोहमयाः (सन्ति) देवा अपि अस्य हविर्भक्षणम्
(प्रति) प्राप्तवन्तः, मनोवद् वेगयुक्तः (अपि) इन्द्रः
(अस्मात्) अवर आसीत् यः (एनम्) अश्वं प्रथम-
मारूढवान् ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

(यह अश्व) सोने के सींगों वाला (है) इस के पैर
लोहे के (हैं) देवता भी इस के हवि ग्वाने (की ओर)
प्राप्त हुए हैं, मन की न्याइं वेगवाला इन्द्र (भी)
(इस से) छोटा था जो इस अश्व पर पहिले पहल
चढ़ा ॥ ९ ॥

अश्वो देवता, त्रिष्टुप् इन्द्रः । ११११११११११

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः

संश्रूणासो दिव्यासो अतयाः । हं-

(४३७३) क्र०मं०१ सू०१६३मं०१०

साङ्गवश्रेणिशोयतन्ते यदाक्षिषुर्दि-

व्यमज्जममप्रवाः ॥ १० ॥

{ ईर्मऽअन्ता सः	पृथ्वन्ताः (यास्कः)	चौड़े अन्तभाग वाले
{ सिलिकऽ- मध्यमासः	विस्तृतमध्यप्र- देशाः	चौड़े मध्यभाग वाले
सम्	सम्+	-
शूराणासः	बलवन्तः	बलवान्
दिव्यासः	दिविभवाः	द्यौ में होने वाले
अतयाः	सम्यग्गमन- शीलाः	खूब चलने वाले
हंसाऽङ्गव	हंसाङ्गव	हंसों की न्याई
श्रेणिशः	पङ्क्तीभूय	कतार बांध कर

अ०सं०१स०१६३मं०१० (४६७४)

यतन्ते	सम्+यतन्ते	खूब यत्न करते हैं
यत्	यदा	जब
आक्षिप्तः	प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं
दिव्यम्	दिव्यम्	दिव्य को
अज्मम्	मार्गम्	मार्ग को
अश्वः	अश्वः	अश्व

संस्कृतार्थः ।

पृथ्वन्ताः विस्तृतमध्यप्रदेशाः बलवन्तो दिविभ-
वाः सम्यग्गमनशीलाः (च) अश्वः हंसा इव पङ्क्ति-
भूय संयनन्ते यदा दिव्यमार्गं प्राप्नुवन्ति ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

चौड़े अन्तभाग वाले, चौड़े मध्यभाग वाले,
बलवान, द्यौमें होने वाले (ओर) खूब चलने वाले
अश्व हंसां की न्याईं कतार बांध कर खूब यत्न
करते हैं जब दिव्य मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

(४३७५) अ०सं०१५०११३सं०११

अश्वोदेवता, निचुत्त्रिष्टुच्छन्दः॥११११११११॥

तव॑शरीरं॑पतयि॑ष्यव॑र्वन् तव॑चित्तं॑
 वात॑द्वध्रजी॑मान् । तव॑शृङ्गाणि॑वि-
 ष्ठिता॑पुरु॒चा ऽरण्ये॑षुज॒र्भुरा॑णाच-
 रन्ति ॥ ११ ॥

तव॑	तव	तेरा
शरीर॑म्	शरीरम्	शरीर,
पतयि॑ष्य	उत् पतनशीलम्	उड़ने वाला
व॑र्वन्	हे अश्व !	हे अश्व
तव॑	तव	तेरा
चित्त॑म्	चित्तम्	चित्त

क्र०मं० १८०११३मं० ११ (४१०१)

वा॒तः॑ऽइव	वा॒युरिव	वा॒यु की न्याइँ
ध्र॒जि॑मान्	शी॒घ्र॒गमनः	शी॒घ्र चलने वाला
तव॑	तव	तेरे
शृ॒ङ्गाणि॑	शृ॒ङ्गाणि	सींग
वि॑ऽस्थि॒ता	विस्तृ॒ताः	फैले हुए
पु॒रु॑ऽत्रा	ब॒हुषु॑ स्थानेषु	बहुत स्थानों में
अ॒र॒ण्ये॑षु	व॒नेषु	बनों में
ज॒र्भुरा॑णा	दे॒दीप्य॑मानाः	चमकते हुए
च॒र॒न्ति	चरन्ति	विचरते हैं

संस्कृतार्थः ।

हे अश्व! तव शरीरमुत्पतनशीलम् (अस्ति) तत्र चित्तं
शीघ्रगमनोवायुरिव (अस्ति) बहुषु स्थानेषु विस्तृताः
देदीप्यमानास्तव शृङ्गाः वनेषु विचरन्ति ॥ ११ ॥

(४१७७) क०सं०१सू०११३सं०१२

भाषार्थः ।

हे अश्व ! तेरा शरीर उड़ने वाला (है) तेरा
चित्त शीघ्र चलने वाले वायु की न्याई (है) बहुत
स्थानों में फैले हुए तेरे चमकते हुए सोंग बनों में
विचरते हैं ॥ ११ ॥

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

उपप्रागाच्छसनंवाज्यवा देवद्री-
चामनसादीध्यानः । अजःपरोनीयते
नाभिरस्याऽनुपश्चात्कवयोयन्ति
रेभाः ॥ १२ ॥

उप	उप+	-
प्र	प्र+	-
अगात्	उप+प्र+अगात्, उपप्राप्तवान्	समीप प्राप्त हुआ है

क्र०सं०१सू०१६३ सं०१२ (४३७८)

शसनम्	विशसनस्थानम्	हनन के स्थान को
वाजी	वेगवान्	वेगवाला
अर्वा	अश्वः	अश्व
देवद्रीचा	देवान् गच्छता	देवताओं की ओर जाने वाले से
मनसा	मनसा	मन से
दीध्यानः	ध्यायन्	ध्यान करता हुआ
अजः	अजः	अज
पुरः	पुरः	आगे
नीयते	नीयते	लेजाया जाता है
नाभिः	बन्धुः (भा० को०)	सम्बन्धी
अस्य	अस्य	इस का

(४४७१) क्र०सं०१क०१६३सं०१२

अनु	अनु +	-
पश्चात्	पश्चात्	पीछे
कवयः	ऋषयः	ऋषि
यन्ति	अनु+यन्ति, अनुगच्छन्ति	जाते हैं
रेभाः	गायन्तः	गाते हुए

संस्कृतार्थः ।

वेगवानश्वः देवान् गच्छता मनसा ध्यायन् विश-
सनस्थानमुपप्राप्तवान्, पुरस्तादस्यबन्धुः अजः
नीयते, पश्चाद् गायन्तः ऋषयः अनुगच्छन्ति॥१२॥

भाषार्थः ।

वेग वाला घोड़ा देवताओं की ओर जाने वाले
मन से ध्यान करता हुआ हनन के स्थान के पास
पहुँचा है, आगे इस का बन्धु अज लेजाया जाता
है, पीछे गाते हुए ऋषि चलते हैं ॥ १२ ॥

क्र०सं०१स०११३सं०१३ (४३८०)

अश्वोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

उपप्रागात्परमंयत्सधस्थ मर्वा

अच्छापितरंमातरंच । अद्यादेवा-

ज्जुष्टतमोहिगम्या अथाशास्तेदा-

श्रुषेवार्याणि ॥ १३ ॥

उप	उप+	-
प्र	प्र+	-
अगात्	उप+प्र+अगात्, उपप्राप्तवान्	समीप प्राप्त हुआ है
परमम्	उत्कृष्टम्	उत्तम को
यत्	यत्	-
सधस्थम्	देवस्थानम्	देवस्थान को

(४३८१) म०मं०१७०१११मं०१३

अ॒र्वा॒न्	अ॒श्वा॒न्	अ॒श्वों को
अ॒च्छ	अ॒भिलक्ष्य	लक्ष्य कर
पि॒तर॒म्	पि॒तर॒म्	पिता को
मा॒तर॒म्	मा॒तर॒म्	माता को
च	च	और
अ॒द्य	अ॒द्य	आज
दे॒वान्	दे॒वान्	देवताओं को
जुष्ट॑तमः	प्री॒ततमः	अत्यन्त प्रसन्न हुआ २
हि	खलु	सचमुच
ग॒म्याः	गच्छति	जाता है
अथ	अनन्तरम्	पीछे

क०मं०१००११३मं०१३ (४३८२)

आ	आ +	-
शास्ते	आ + शास्ते, याचते	मांगता है
दाशुषे	दानिने	दानी के लिये
वार्याणि	वरणीयानि	बरने योग्यों को

संस्कृतार्थः।

(अयमश्वो दिव्यान्) अश्वान् पितरं मातरं च।
भिलक्ष्य उत्तमं देवस्थानमुप प्राप्तवान्, (सः) अयं
प्रीतितमः सन् देवान् खलु गच्छति, अनन्तरं दानिने
(यजमानाय) वरणीयानि (धनानि) याचते ॥ १३ ॥

भाषार्थः।

(यह अश्व दिव्य) अश्वों को और पिता और
माता को लक्ष्य कर उत्तम देवस्थान के समीप प्राप्त
हुआ है, (वह) आज खूब प्रसन्न हुआ २ सचमुच
देवताओं के पास जाता है, पीछे दानी] (यजमान)
के लिये बरने योग्य (धनों) को मांगता है ॥ १३ ॥
इति त्रिषष्ठ्युत्तर शततमं सूक्तम् ।

(४३८३)

क्र०मं०१०११४सू

ऋ० मं०१ सू० १६४

दीर्घतमाऋषिः ।

विनियोगः-

- १-४१ महाव्रते वैश्वदेवशस्त्रे वैश्वदेवंनिविद्धानं द्विप्रतीकं तत्र
'अस्यवामस्य-' इत्यादिकमेकचत्वारिंशद्वचं प्रथमं प्रतीकम्
(ऐ० आ० ५।३।२) ।
- ३१। 'अपश्यंगोपा-' इत्येषा प्रवर्ग्येभिष्टवे विनियुक्ता (आ० ४।६।३)
- ३४। 'पृच्छामित्या-' इत्यनया आश्रयेधिके मध्यमेऽग्नि ब्रह्मोद्ये
होत्रादयोयजमानं पृच्छेयुः (आ० १०।९।१)
- ३५। 'इयवेदिः-' इत्यनया यजमानः प्रतिब्रूयात् (आ० १०।९।१)
- ४०। 'सूयत्रसाद्-' इत्यनया अग्निहोत्रीयायां घेनौ कृत्स्नं शब्दं
कुर्वत्यां यवसादिकं देयम् (आ० ३।११।४)
- ४०। प्रवर्ग्येभिष्टवेऽपि एषैव परिधानीया (आ० ४।७।४) ।
- ४५। 'चत्वारिवाक्-' इत्येषा वाग्देवतेपशौ हविषोऽनुवाक्या
(आ० ३।८।१)
- ४७। वर्षकामेष्ट्यां तिस्रः पिण्डयोहोतव्याः, तत्र 'कृष्णनियानं-'
इति तृतीयस्यानुवाक्या (आ० ३।८।१)
- ४२। प्रवर्ग्येभिष्टवे 'यस्तेस्तनः-' इत्येका (आ० ४।७।४)
- ४९। एषैव सारस्वतेपशौ हविषोयाज्या च (आ० ३।७।६)
- ५०। 'यज्ञेनयज्ञ-' इत्येषा अग्निमन्थने परिधानीया (आ० २।१६।५)
- ५२। 'दिष्टसुपर्ण-' इत्येषा सरस्वदेवताके पशौ वषायाज्या
(आ० ३।८।१)
- ५२। अन्वारम्भणीयायां सरस्वद्यागे एषैव याज्या च (आ० २।८।३)

क्र०सं०१ सू०१६४

(४३८४)

सूक्त का भावार्थ ।

मैं यहां प्रजाओं के पालने वाले, सात पुत्रों वाले, बुलाने योग्य, सुन्दर और श्वेत बालों वाले बृह्मे को देखता हूं, जिसका बिचला भाई हमारे चारों ओर व्यापक है और जिसके छोटे भाई की पीठ पर हम घी को सींचते हैं ॥ १ ॥ एक पहिये का रथ है, जिसको सात घोड़े जुड़ते हैं, इस कमी न टूटने वाले और आश्रय से रहित पहिये की तीन नाम हैं, और सात नामों वाला एक ही घोड़ा इसको खेंचता है, सारे भुवन इसी के सहारे ठहरे हुए हैं ॥ २ ॥ इस रथ के जो सात लगे हैं उस सात पहियों वाले को सात घोड़े लेचलते हैं, सात बहनें साथ चलती हैं जो गौओं के सात नामों को धारण करती हैं ॥ ३ ॥ सब से पहले जन्मे हुए को किसने देखा है जो बिना हड्डी वाला हड्डी वाले को उठाए हुए है, पृथिवी का प्राण, रक्त और आत्मा कहाँ है, कौन यह सब पूछने के लिये विद्वान के पास पहुंचा है ॥ ४ ॥ मैं अपना ज्ञान वाला मन से न जानता हुआ देवताओं के रखे हुए इन चिन्तों के विषय में पूछता हूं, क्या बुद्धिमान (देवताओं) ने जवान बछड़े को बांधने के लिये सात तन्तुओं को फैलाया है? ॥ ५ ॥ मैं जानता नहीं हूं इस लिये जानने वाले कवियों से ज्ञान के लिये पूछता हूं, जिस एक ने अजन्मा के रूप में छः अन्तरिक्षों को थांभा हुआ है वह कौन है ॥ ६ ॥ जो इस सुन्दर पक्षी के छिपे हुए स्थान को जानता है वह यहां बतावे, गौरव इसके सिर से दूध को दोहन करती हैं और रूप को पहनती हुई पैरों से जलको पीती हैं ॥ ७ ॥ माता ने सृष्टिरचना में पिता के साथ सीर मिलाना चाहा, इस लिये पहले मन से उसको प्राप्त हुई, वह गर्भधारण की इच्छा करती हुई गर्भ के रस से बिंधी, तब मनुष्य अन्नको प्राप्त करके शनैः शनैः बाणी को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ माता प्रदक्षिणा के धुरे में जुड़ी, चलने

(४३८५) ऋ०मं०१६०१६४

वालियों के बीच में गर्भ ठहरा, रांभते हुए बछड़े ने तीनों स्थानों में
 सब रूपको धारती हुई गौ को देखा ॥ ९॥ यह अकेला तीन माता
 और तीन पिताओं को धारण करता हुआ ऊपर खड़ा है, थकता
 नहीं, देवता इस द्यौ की पीठ पर गुप्त विचार करते हैं, जिसको
 सब जान सकते हैं, परन्तु उस के अनुकूल आवरण करना उन की
 इच्छा पर है ॥ १० ॥ बारह अरों वाला चक्र का चक्र द्यौ के चारों
 ओर घूमता है और जीर्ण नहीं होता, इस चक्र में ७२० जोड़ले पुत्र
 ठहरे हुए हैं ॥ ११॥ पांच पैरों वाले और बारह रूप वाले पिता को
 जो जलों का स्वामी हैं द्यौ के ऊपरले भागमें बतलाते हैं और कोई इस
 सर्वदर्शी को सात चक्रों वाले और छः अरों वाले देश में लगा हुआ
 बतलाते हैं ॥ १२ ॥ उस घूमते हुए पांच अरों वाले चक्र में सब
 भुवन ठहरे हुए हैं, इतना भारी बोझ उठाने पर भी उस चक्र का
 धुरा नहीं तपता, और नाम के सहित चिरकाल से क्षीण नहीं
 होता ॥ १३ ॥ घेरे सहित क्षीण न होने वाला पहिया घूमता है,
 उस के उठे हुए जूप में दस घोड़े लगे हुए हैं, सूर्य का चक्षु
 अन्धकार से विरा हुआ चलता है, सारे भुवन उसपर आश्रित हैं
 ॥ १४॥ जो सात इकट्ठे जन्मे हैं उनमें से सातवें को अकेला उत्पन्न
 हुआ बतलाते हैं यह छःओं ऋषि एक देवता से उत्पन्न हुए हैं,
 उन को इष्ट भाग स्थान के क्रम से मिलते हैं, और वे रूप के क्रम
 से अनेक प्रकार से स्थिर की ओर चलायमान होते हैं ॥ १५ ॥
 यद्यपि वे स्थिरा हैं परन्तु मुझे उनको पुरुष बतलया गया है, आंखों
 वाला देखता है अन्धा नहीं जानता, जो बुद्धिमान पुत्र है वही
 जानता है और जो जानता है वह अपने पिता का भी पिता है
 ॥ १६ ॥ परले से नीचे और उरले से ऊपर इस पैर से बछड़े को
 पकड़े हुए गौ उठी है, वह क्षिप्र जाने वाली है, किस अर्ध गोल को
 चली गई वह कहां जाकर सूपगी, इस गोष्ठ में तो नहीं है ॥ १७ ॥

ऋ०मं०१ सू०१६४

(४३८६)

अपने को दुःखिमान कहने वाला वह कौन है, जो इस पिता को परले से नीचे और उरले से ऊपर देखता है, वह यहां आकर बतावे, देवरूप मन कहां से उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ जो इधर आने वाले हैं उनको परे जाने वाले कहते हैं और जो परे जाने वाले हैं उनको इधर आने वाले कहते हैं, हे इन्द्र और सोम ! जिन को आपने रचा है वे धुरे पर जुड़े वैलों की न्याई आकाश को ले जा रहे हैं ॥ १९ ॥ दो जोड़ले मित्र जो सुन्दर पांखों वाले हैं एक ही वृक्ष पर निवास करते हैं, उन में से एक फल को खाता है दूसरा न खाता हुआ चारों ओर देखता है ॥ २० ॥ सुन्दर पांखों वाले जिस न मरने वाले भाग की निरन्तर ज्ञानपूर्वक स्तुति करते हैं, वह सबका रक्षायी और भुवन का रक्षक दुःखिमान मुझ अज्ञानी में आकर प्रविष्ट हुआ है ॥ २१ ॥ जिस वृक्ष में मधु खाने वाले सब पक्षी निवास करते हैं और सूते हैं, उसका अग्रभाग मीठे फल वाला है, उसको वह नहीं पहुंचता जो पिता को नहीं जानता ॥ २२ ॥ जो पृथिवी पर गायत्री छन्द को स्थापन किया है, और अन्तरिक्ष से त्रिष्टुप् छन्द को घड़ा है, और जो द्यौ में जगती छन्द को आश्रित किया है, जो इस रहस्य को जानते हैं वे अमर हो जाते हैं ॥ २३ ॥ गायत्री छन्द से ऋचाएँ नापी जाती हैं, ऋचाओं से साम और त्रिष्टुभ् से यजुर्वेद नापे जाते हैं यजुर्वेदों से जो दुपाप और चौपाप बोलते हैं वह बाणो नापी जातो है, अक्षर से सातों बाणियां नापी जाती हैं ॥ २४ ॥ जगती से द्यौ में समुद्र थंभा हुआ है, रथन्तर साम में सूर्य के दर्शन हैं, गायत्री की तीन समिधा बतलाते हैं जिन के बल से वह महत्त्व में बढ़ी हुई है ॥ २५ ॥ मैं इस सृज से दुही जाने वाली गौ को चलाता हूं हलके हाथों घाला दोग्धा इस को दोड़े, सविता हमारे लिये श्रेष्ठ उत्साह को प्रेरण करें, गरमी अत्यन्त तपती है इस लिये मैं कहता हूं ॥ २६ ॥

(४२८७) अ०मं०१ क०११४

धनकी स्वामिनी बछड़े की कामना करती हुई रांभती हुई सामने आई है, मारने के अयोग्य वह अश्विनों के लिये दूध को देवे और हमारे सौभाग्य के लिये वृद्धि को प्राप्त हो ॥२७॥ गौ आंखें मीचते हुए बछड़े के लिये शब्द करती है और उसके माथे को साटने के लिये हिनतती है, वह उसके होठों को स्तन की ओर चाहती हुई मीठी २ रांभती है और उसके स्तन दूध से फूल जाते हैं ॥ २८ ॥ वह बैल गौ के पीछे लगा हुआ छिह शब्द करता है, वह उस आच्छादन करने वाले में आश्रित हुई २ मृदु शब्द से रांभती है, वह चेतनता में मनुष्य को भी नीखा दिखाती है, और विजली बन कर अपने रूप को प्रकट करती है ॥२९॥ घरोंके बीच में श्वास लेने वाला शीघ्रगामो जीता हुआ और कम्पन युक्त नित्य पदार्थ निवास करता है, जीता हुआ मृत के अन्न से निर्वाह करता है, अमर मरने वाले के साथ एक स्थान में रहता है ॥ ३० ॥ कभी न डिगने वाले रक्षक को मैंने मागों से आते और जाते देखा है, वह सिमटे हुए और बिखरे हुए वस्त्रों को पहनता हुआ वनों के बीच में बार बार आता है और जाता है ॥ ३१॥ जिसने इलको बनाया है यह उसको नहीं जानता, जिसने इलको देखा है वह इल से छिपा हुआ है, वह माता के गर्भ में घिरा हुआ बहुत प्रजा उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ द्यौ मेरा पिता है और यह बड़ी पृथिवी मरी माता है, इन दोनों विस्तार वालों के बीच में जीवों का उत्पत्ति स्थान है, पिता ने पुत्रों में गर्भ को धारण किया है ॥ ३३ ॥ मैं आपसे पृथिवी का सबसे परला सिरा पूछता हूं, मैं पूछता हूं कि भुवन का केन्द्र कहाँ है, मैं वीर्यवान घोड़े के वीर्य को पूछता हूं, मैं वाणी के परम स्थान को पूछता हूं ॥ ३४ ॥ यह वेदि पृथिवी का सब से परला सिरा है, यह यज्ञ भुवन की नाभि है, यह सोम वीर्यवान घोड़े का वीर्य है, यह ब्रह्मा वाणी का परम स्थान है

क्र०मं०१ स०१६४ (४३८८)

॥ ३५ ॥ अर्धगर्भ भुवन के बीजरूप सात पदार्थ विष्णु के आदेश से नियम में ठहरे हुए हैं, ये बुद्धि और मन से व्यापने वाले विद्वान भुवन को चारों ओर से घेरे हुए हैं ॥ ३६ ॥ मैं नहीं जानता कि मैं वास्तव में क्या हूँ, मैं गूढ़ और मन से जकड़ा हुआ फिरता हूँ, जब मृग को क्रतु का पहला पुत्र प्राप्त होता है तब मैं इस बाणो का भागी बनता हूँ ॥ ३७ ॥ मरने वाले के साथ उत्पन्न होने वाला अमर अपनी शक्ति से ऊपर नीचे जाता है, वे दोनों सदा साथ रहने वाले और विरुद्ध गति वाले हैं, एक को मनुष्य स्वरूप देखते हैं दूसरे को स्वरूप नहीं देखते ॥ ३८ ॥ ऋचाई सब से ऊंचे क्षय रहित स्थानमें ठहरी हुई हैं जिसमें सब देवता आश्रित हैं, जो उसको नहीं पाता उस को ऋचाई क्या लाभ दे सकती हैं, जो उसको पालते हैं वे एकट्ठे होकर विराजते हैं ॥ ३९ ॥ हे न मारने योग्य ! भाग्य वाली तू सुन्दर घास खाने वाली हो, और हम भी भाग्यवान हों, तू बिचरती हुई सब काल में घास को खा और शुद्ध जल को पी ॥ ४० ॥ जलों को लाती हुई चमकने वाली ने शब्द किया है वह ऊंचे आकाश में एक पाद वाली दो पाद वाली चार पाद वाली आठ पाद वाली नौ पाद वाली और सहस्र अक्षर वाली हुई ॥ ४१ ॥ उस देवी से समुद्र बहते हैं, उस से चारों दिशाएँ जीती हैं, उस से जल गिरता है और उस से जगत जीता है ॥ ४२ ॥ मैंने इस निचले विषुवत् से परे दूर गोमय के से धूप को देखा है, वीर चितकबरे बैल को पका रहे हैं उसी का यह धूआँ है, यह सब से पहले कर्म थे ॥ ४३ ॥ बालों वाले तीन क्रतु क्रतु में देखे जाते हैं, उन में से एक बरस भर में वपन करता है, एक सब को अपने बलों से देखता है, एक की गति देखी जाती है रूप नहीं ॥ ४४ ॥ बाणी के चार पद नाचे हुए हैं उसको वे जानते हैं जो बुद्धिमान ब्राह्मण हैं, उन में से तीन गुफा में रहे हुए हैं प्रकट नहीं होते,

(४३८९) क्र०मं०।स०।१६४मं०।

चौथी बाणी को मनुष्य चोलते हैं ॥ ४५ ॥ उसी को अग्नि इन्द्र मित्र और वरुण कहते हैं और वही घौ में रहने वाला सुन्दर पक्षी है, बुद्धिमान एक को बहुत नामों से पुकारते हैं उसी को अग्नि वम और मातरिद्वा कहते हैं ॥ ४६ ॥ काला घोंसला है और सुनहरी पंखी हैं, वे जलको पहन कर आकाश की ओर उड़ते हैं, वे ऋत के स्थान से लौटते हैं तब पृथिवी जल से तर होती है ॥ ४७ ॥ बारह घेरे एक पहिया और तीन नाम हैं, उसको कौन जानता है ? उ३ में तीन सौ और साठ अरे तरीखे लगे हुए हैं जो कभी ढीले नहीं होते ॥ ४८ ॥ हे सरस्वती ! क्षय रहित और सुखको देनेवाला जो आप का स्तन है, जिससे सब कामना करने योग्य पदार्थ पुष्ट होते हैं, जो रत्नों को धारण करने वाला, धनों का लाभ करने वाला और खूब दान करने वाला है उसको पीने के लिये श्शर करो ॥ ४९ ॥ यज्ञ से देवताओं ने यज्ञ को किया, ये पूर्व काल के धर्म थे, वे महत्त्व को पाकर स्वर्ग को प्राप्त हुए जहां पूर्व सिद्ध देवता निवास करते हैं ॥ ५० ॥ यह जल प्रतिदिन एक रूप से ऊपर जाता है और नीचे गिरता है, वृष्टि पृथिवी को तृप्त करती है और अग्नियाँ घौ को ॥ ५१ ॥ मैं सुन्दर पांखों वाले दिव्य पक्षी को रक्षा के लिये बार बार बुलाता हूँ जो महान है, जलों और ओषधियों का कारण है, दर्शनीय है, स्तोताओं को वर्षा से तृप्त करने वाला है और रस वाला है ॥ ५२ ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप् छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

अस्यवामस्यपलितस्यहोत-

स्तस्यभातामध्यमोऽस्त्यश्नः ।

अ०मं०१ सू०१६४ मं०१ (४३९०)

तृतीयो॒भ्रा॒ता॒घ॒त॒पृ॒ष्ठो॒अ॒स्या॒त्रा॒प॒-
प्र॒यं॒वि॒प्र॒प॒तिं॒स॒प्त॒पु॒त्र॒म् ॥ १ ॥

अ॒स्य

अ॒स्य

इ॒स का

वा॒म॒स्य

सु॒रू॒प॒स्य

सु॒न्दर का

प॒लि॒त॒स्य

श्वे॒त॒केश॒स्य

श्वे॒त बा॒लों वा॒ले
का

हो॒तः

आ॒ह्वा॒त॒व्य॒स्य

बु॒लाने॒योग्य का

त॒स्य

त॒स्य

उ॒स का

भ्रा॒ता

भ्रा॒ता

भाई

म॒ध॒य॒मः

म॒ध॒य॒मः

बी॒चवा॒ला

अ॒स्ति

अ॒स्ति

है

(४३९१) क्र०मं०१ सू०१६४ मं०१

अ॒श॒नः ।	व्या॒प॒न॒शी॒लः ।	वा॒यु
तृ॒ती॒यः ।	(वा॒युः)	ती॒स॒रा
भ्रा॒ता ।	भ्रा॒ता ।	भाई
घृ॒तऽपृ॒ष्ठः ।	घृ॒तं पृ॒ष्ठे य॒स्य	अ॒ग्नि
अ॒स्य ।	ता॒दृ॒शः [अ॒ग्निः]	इ॒स का
अ॒त्र ।	अ॒त्र ।	य॒हां
अ॒प॒श्य॒म् ।	प॒श्या॒मि	मैं देख॒ता हूँ
वि॒प्र॒प॒ति॒म् ।	(ल॒ड॒यें ल॒ड्)	
स॒प्तऽपु॒त्रम् ।	प्र॒जा॒नां॒पा॒ल॒कम्	प्र॒जाओं॒के॒स्वा॒मी
	स॒प्तपु॒त्रो॒पे॒तम्	को
		सा॒तपु॒त्रों॒वा॒ले को

संस्कृतार्थः ।

अस्य तस्य आह्वातव्यस्य सूरूपस्य श्वेतकेशस्य
(सूर्यस्य) मध्यमोभ्रातृ वायुरस्ति, अस्य तृतीयो-

क्र०सं०१ सू०११४ सं०२ (४३९२)

भ्राता (च) अग्निः (अस्ति, अहम्) अत्र प्रजानां
पालकं सप्तपुत्रोपेतम् (च ज्येष्ठभ्रातरं सूर्यम्)
पश्यामि ॥ १ ॥

माषार्थः ।

इस उस बुलाने योग्य, सुन्दर, इवेत बालों
वाले (सूर्य) का बिचला भाई वायु है, (और) इसका
तीसरा भाई अग्नि (है) मैं यहां प्रजाओं के पालने
वाले (और) सात पुत्रों वाले (बड़े भाई सूर्य) को
देखता हूं ॥ १ ॥

सूर्य के सात पुत्र बात प्रधान ग्रह हो सकते हैं ।

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

सप्तयुञ्जन्ति रथमेकचक्रं को

षष्ठो वदति सप्तनामा । चिना-

भिचक्रमजरमनं यच्चेमाविश्वामु-

बनाधितस्युः ॥ २ ॥

(४३९३) क०मं०१ सू०१३४ मं०२

सप्त	सप्त	सात
युञ्जन्ति	युक्ताभवन्ति	जुड़ते हैं
रथम्	रथम्	रथ को
एकऽचक्रम्	एकचक्रम्	एक पहिये वाले को
एकः	एकः	एक
अश्वः	अश्वः	घोड़ा
वहति	प्रापयति	ले जाता है
सप्तऽनामा	सप्तनामा	सात नामों वाला
त्रिऽनाभि	नाभित्रयोपेतम्	तीन नाभि वाले को
चक्रम्	चक्रम्	पहिये को
अजरम्	अक्षीयमाणम्	न छीजने वाले को

अ० सं० १ सू० १६४ सं० २ (४३९४)

अ॒न॒र्व॒म्	आश्रय॒रहितम्	आश्रय से रहित
—	(यास्कः)	को
य॒त्र	यत्र	जहाँ
इ॒मा	इमानि	ये
वि॒ष्वा	विश्वानि	सब
भु॒व॒ना	भुवनानि	लोक
अ॒धि	अधि+	—
त॒स्थुः	अधि+तस्थुः, आश्रितवन्तः	आश्रित हुए हैं

संस्कृतार्थः ।

एकचक्रं रथं सप्त (अश्वाः) युञ्जन्ति, नाभिः-
योपेतमक्षीयमाणमाश्रयरहितम् (च) चक्रं सप्त-
नामा एकोऽश्वो वहति यत्र (चक्रे) इमानि सर्वाणि
भुवनानि आश्रितवन्तः ॥ २ ॥

भावार्थः ।

एक पहिये वाले रथ को सात (घोड़े) जुड़ते हैं,

(४३९५) ऋ०६०१सू०१६४ मं०३

तीन नाभि वाले न छीजने वाले और आश्रय रहित
पहिये को सात नामों वाला एक घोड़ा लेजाता है
जिस (पहिये) में सारे लोक आश्रित हैं ॥ २ ॥

सात घोड़े सात रंगों वाली सात किरणें होसकती हैं जो
मिलकर एक ही श्वेत किरण बन जाती हैं मानो सात नामों वाला
एक ही घोड़ा है, पहिया और रथ स्वयं सूर्य प्रतीत होता है जिस
के सहारे सातों ग्रह ठेरे हुए हैं, द्यौ अन्तरिक्ष और ग्रह ब्रह्माण्ड
करी पहिये की तीन नाभि हो सकती हैं ।

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

इमं रथमधिये सप्ततस्थुः सप्त-

चक्रं सप्तवहन्त्यश्ववाः । सप्तस्व-

सारो अभिसंनवन्ते यच्च गवानिहि-

तासप्तनाम ॥ ३ ॥

इमम्

इमम्

इस को

रथम्

रथम्

रथ को

क्र०मं०१ सू०१६४ मं०३ (४३९६)

अधि	अधि	-
ये	ये	जो
सप्त	सप्त	सात
तस्थुः	अधि+तस्थुः, युक्तवन्तः	लगे हैं
सप्तऽचक्रम्	सप्तचक्रम्	सात पहियों वाले को
सप्त	सप्त	सात
वहन्ति	वहन्ति	लेजाते हैं
अष्टवाः	अष्टवाः	घोड़े
सप्त	सप्त	सात
स्वसारः	भगिन्यः	बहिनें
अभि	अभि+	-
सम्	सम्+	-

(४३९७) ऋ०मं०१ सू०१६४ मं०३

नवन्ते	अभि+सम्+ नवन्ते, सङ्गच्छन्ते (नवतिर्गतिकर्मानिघं०)	साथ चलती हैं
यत्र	यत्र	जहां
गवाम्	गवाम्	गौओं के
निऽहिता	निहितानि	स्थापित हैं
सप्त	सप्त	सात
नाम	नामानि (विभक्तैर्लुक्)	नाम

संस्कृतार्थः ।

इमं सप्तचक्रं रथं ये सप्त समीपे स्थितवन्तः,
(ते) सप्त अश्वावहन्ति, सप्त स्वसारः सङ्गच्छन्ते
यत्र गवां सप्तनामानि निहितानि (सन्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

इस सात पहियों वाले रथ को जो सात समीप
ठेरे हैं, (वे) सात घोड़े ले जाते हैं, सात बहिनें
साथ चलती हैं जहां गौओं के सात नाम स्थापित
(हैं) ॥ ३ ॥

क्र०मं०१ सू०१६४ मं०४ (४३९८)

सात ग्रहों को पूर्वार्द्ध में सूर्य रूपी रथ को लगे हुए सात पहिये बताया प्रतीत होता है और उत्तरार्द्ध में उन्हीं को सात बहनें और सात पृथिवियां वर्णन किया है, सात घोड़े सात किरणें हो सकती हैं, गौण वही सात बहनें हैं, गौ पृथिवी का भी नाम है इसलिये सात नाम वाली गौण सात ग्रह वा पृथिवियां हैं ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

को॒द॒दर्श॑प्रथ॒मंजा॒यमा॒नम॒स्थ-
न्वन्त॑यद॒न॒स्थावि॒भर्ति॑ । भू॒म्याच॒-
सुर॑सृ॒गात्मा॒कव॑स्वि॒त् कोवि॒द्वांस॒-
मुप॑गा॒त्प्र॒ष्टुमे॒तत् ॥ ४ ॥

कः	कः	किस ने
द॒दर्श॑	दृष्ट॑वान्	देखा है
प्रथ॒मम्	प्रथ॑मम्	पहिले
जा॒यमा॒नम्	जा॒यमा॒नम्	जन्मते हुए को

(४४१५) ऋ०मं०१सू०११४मं०१०

संस्कृतार्थः ।

(पृथिवी)माता प्रदक्षिणायाःधुरि युक्ता (अभूत्)
गर्भः गतियुक्तासु (पृथिवीषु) मध्ये स्थितवान्,
वरसो हम्भारवं कृतवान्, त्रिषुस्थानेषु विश्वरूपवतीं
गां च दृष्टवान् ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

(पृथिवी) माता प्रदक्षिणा के धुरे में जुड़ी, गर्भ
गतिवाली (पृथिवियों के) बीच में ठेरा, बड़ड़ा
रांभा और उसने तीन स्थानों में सब रूपों वाली
गौ को देखा ॥ ९ ॥

पृथिवी माता सूर्य की प्रदक्षिणा के धुरे में जुड़ी तब गर्भ
अर्थात् सूर्य चलने वाले ग्रहों के बीच में ठेरा, बड़ड़ा भी सूर्य है
और गौ पृथिवी आदि ग्रह हैं, ग्रहों के अनेक रूपों का कारण सूर्य की
किरणें हैं, दोनों स्थानों में अर्थात् नीचे ऊपर और बीच में ग्रह
रूपी गौ को देखा ।

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुपञ्चदः ११।११।११।११

ति॒स्रो॒मा॒तृ॒स्त्री॒न्पि॒तृ॒न्वि॒भ्र॒-
दे॒क॒ ऊ॒र्ध्व॒स्त॒स्थौ॒नि॒मव॒ग॒ला॒पय॒न्ति॒ ।

क्र०सं०१सू०१६४सं०१० (४४१६)

मन्त्रयन्तेदिवोअमुष्यपृष्ठे विप्रव-
विदंवाचमविप्रवमिन्वाम् ॥ १० ॥

तिस्रः

तिस्रः

तीनों को

मातृः

मातृः

माताओं को

त्रीन्

त्रीन्

तीनों को

पितृन्

पितृन्

पिताओं को

विभ्रत्

धारयन्

धारण करता हुआ

एकः

एकः

अकेला

ऊर्ध्वः

ऊर्ध्वः

ऊंचा

तस्थौ

स्थितवान्

ठैरा है

(४४१७) क्र०सं०१सू०१६४सं०१०

न	न	नहीं
इ॒म्	ए॒नम्	इस को
अ॒व	अ॒व+	-
ग॒ल॒प॒य॒न्ति	अ॒व+ग॒ल॒प॒य॒न्ति,	थकाते हैं
म॒न्च॒य॒न्ते	सं॒म्लानं॑कुर्वन्ति वि॒चार॒य॒न्ति	विचार करते हैं
दि॒वः	दि॒वः	द्यौ की
अ॒मु॒ष्य	अ॒स्य	इस की
पृ॒ष्ठे	पृ॒ष्ठे	पीठ में
{ वि॒प्र॒व॒ऽ-	सर्वे॑र्ज्ञातुयोग्याम्	सब से जानने
{ वि॒द॒म्		योग्य को
वा॒च॒म्	वा॒च॒म्	वाणी को

क्र०सं०१सू०१६४सं०१० (६४१८)

{ अविष्टवऽ मिन्वाम् }	असर्वप्रेरिकाम्	सब के प्रेरण न करने वाली को
--------------------------	-----------------	--------------------------------

संस्कृतार्थः

(अयम्) तिस्रोमातृः त्रीनूपितृन् (च) एको धारयन् (सन्) ऊर्ध्वस्थितवान्, (ते) एनंम्लानंन कुर्वन्ति, (देवाः) अस्य द्युलोकस्य पृष्ठे सर्वज्ञातुं योग्यां असर्वप्रेरिकांवाचं विचारयन्ति ॥ १० ॥

भाषार्थः

(यह) तीन माताओं को (और) तीन पिताओं को अकेला धारण करता हुआ ऊंचा ठैरा है, (वे) इसको थकाते नहीं, (देवता इस द्युलोक की पीठपर सबसे जानने योग्य परन्तु सब को प्रेरण न करने वाली वाणी को विचारते हैं ॥ १० ॥

जिस तरह सूर्य इस पृथिवी को धारण करता है उसी तरह उस से बड़ा सूर्य पृथिवी सहित इस सूर्य को धारण करता है, तीन माताएं तीन दर्जे की पृथिवियां और पिता तीन दर्जे के द्यौ हैं उन को एक बड़ा सूर्य धारण करता है, और उन के बोझ से कभी थकता नहीं, रात्रि के समय नक्षत्रों से जगमगाता हुआ आकाश सब को दैवीनियम को शिक्षा देता है परन्तु नियम पर चलने को प्रेरण नहीं करता, तह मनूष्य की इच्छा पर निर्भर है कि वह नियम पर चले वा नहीं ॥

(४४१९) मा० सं० १४०११४ सं० ११

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

द्वादशारं॒न॒हि॒त॒ज्ज॒रा॒य॒ वर्व॑ति

च॒क्रं॒परि॒द्या॒मृत॑स्य । आपु॒त्रा॒अग्ने॑

मिथु॒ना॒सो॒अत्र॑ स॒प्त॒श॒तानि॑ विंशति-

श्च॒त॒स्युः ॥ ११ ॥

द्वाद॒शऽअ॒रम्	द्वाद॒शार॒म्	बार॒ह अ॒रों वा॒ला
न॒हि	न॒हि	नहीं
तत्	तत्	वह
ज॒रा॒य	जी॒र्ण॒त्वा॒य	जी॒र्ण हो॒नेके॑ लि॒खे
व॒र्व॑ति	पुनः॒पुन॑र्वर्तते	बारं॒बार॑ घू॒मता॑ हे

क्र०मं०१सू०१६४मं०११ (४४२०)

चक्रम्	चक्रम्	पहिया
परि	परि +	-
द्याम्	परि + द्याम्, दिवःपरितः	द्यौ के चारों ओर
ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत का
आ	आ +	-
पुत्राः	पुत्राः	पुत्र
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
मिथुनासः	मिथुनीभूताः	जोड़ले
अत्र	अत्र	इसमें
सप्त	सप्त	सात
शतानि	शतानि	सौ

(४४२१) क्र०म०१ सू०११४म०११

विंशतिः	विंशतिः	बीस
च	च	और
तस्थुः	आ + तस्थुः, संस्थितवन्तः	खूब ठैरे हैं

संस्क्रुतार्थः

हे अग्ने ! द्वादशारम्भ कृतस्य चक्रं दिवः पारतः
पुनः पुनरावर्तते, तद्जीर्णं न भवति, अस्मिन् (चक्रे)
मिथुनीभूता विंशत्युत्तरसप्तशतसङ्ख्याकाः पुत्राः
संस्थितवन्तः ॥ ११ ॥

भाषार्थः

हे अग्नि ! बारह अरों वाला कृत का पहिया
घोके चारों ओर बारम्बार घूमता है, वह जीर्ण नहीं
होता, इस (चक्र) में जोड़ले सात सौ बीस पुत्र
ठैरे हुए हैं ॥ ११ ॥

कृत का पहिया संवत्सर है ।

बारह महीने बारह अरे हैं संवत्सर चक्र है, इस संवत्सर
के ३६० दिन और ३६० रात्रि रूपी ७२० जोड़ले पुत्र हैं ।

न.सं०१सू०११४मं०१२ (४४२२)

विश्वेदेवादेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं

दिवः आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् । अथेमे

अन्यउपरे विचक्षणं सप्तचक्रेष्वलर-

आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

{ पञ्चऽ- पादम्	पञ्चपादम्	पांचपैरों वाले को
पितरम्	पितरम्	पिता को
{ द्वादशऽ- आकृतिम्	द्वादशरूपम्	बारह रूपों वाले को
दिवः	दिवः	द्यौ के,

(४४२३) म०सं०१७०११४सं०१२

पाहुः	आहुः	कहते हैं
परे	परे	परले में
अर्धे	अर्धभागे	आधे भाग में
पूरीषिणम्	उदकस्यस्वामि- नम्	जल के स्वामी को
अथ	पुनः	फिर
दूमे	इम	ये
अन्ये	अन्ये	दूसरे लोग
उपरे	देशे (आ०को०)	देश में
विऽचक्ष्णम्	सर्वदर्शिनम्	सब के देखने वाले को
सप्तऽचक्रे	सप्तचक्रे	सात पहियों वाले में
षट्ऽपरे	षडरे	छै अरों वाले में

क्र०सं०१००११४सं०१२ (४४२४)

आहुः	आहुः	कहते हैं
अर्पितम्	अर्पितम्	लगे हुए को

संस्कृतार्थः ।

पञ्चपादं द्वादशाकृतिं जलस्यस्वामिनम् (च)
पितरं दिवःपरेऽर्धे आहुः, अन्ये इमे पुनः (एनम्)
सर्वदर्शिनं सप्तचक्रे षडरे देशे अर्पितमाहुः ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

पांच पैरों वाले बारह रूपों वाले (और) जल
के स्वामी पिताको चौ के परले आधे भागमें बताते हैं,
और ये दूसरे लोग (इस) सब के देखने वाले को
सात पहियों वाले (और) छै अरों वाले देश में लगा
हुआ बतलाते हैं ॥ १२ ॥

वर्षा ऋतु से वर्ष का नाम पड़ने से संवत्सर वर्षा अर्थात्
जलों का स्वामी है, संवत्सररूप पिता के पांच पैर बसंत
ग्रीष्म वर्षा शरत् और शीत ये पांच ऋतु और रूप बारह महीने
हो सकते हैं, संवत्सर को चौ के परले आधे भागमें अर्थात् चर्य में
भांजित बतलाते हैं, कोई इस को सात चकों वाले अर्थात् सात
पहों वाले छोट ब्रह्माण्ड में लगा हुआ कहते हैं और छः भरे
अर्थात् छः ऋतुओं से बंध मानते हैं ।

(४४२५) क्र०मं०१८०१६४मं०१३

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्लन्दः। ११११११११११

पञ्चारेचक्रेपरिवर्तमाने तस्मिन्नातस्युर्भुवनानि विश्वा । तस्य नाक्षस्तप्यते भरिभारः सनादेवनशीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥

पञ्चऽअरे	पञ्चारे	पांच अरों वाले में
चक्रे	चक्रे	पहिये में
{ परिऽवर्तमाने	आवर्तमाने	घूमते हुये में
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में
आ	आ+	-

क०सं०१क०११४सं०१३ (४४२१)

तस्युः	आ + तस्युः, संस्थितानि सन्ति	ठैरे हुण हैं
भुवनानि	भुवनानि	भुवन
विप्रवा	विश्वानि	सब
तस्य	तस्य	उस का
न	न	नहीं
पक्षः	अक्षः	धुरा
तप्यते	तप्यते	तपता है
भूरिभारः	भूरिभारः	बहुत भार उठाने वाला
सनात्	चिरकालात्	सदा से
एव	एव	ही
न	न	नहीं

(४४२७) मा०मं०१सू०११४मं०१४

श्रीर्यते	क्षीयते	क्षीण होता है
सऽनाभिः	नाभिसहितः	नाभ के साथ

संस्कृतार्थः ।

तस्मिन् आवर्तमाने पञ्चारेचके सर्वाणि
भुवनानि संस्थितानि सन्ति, तस्य भूरिभारः (अपि)
अक्षः न तप्यते, नाभिसहितः (सः) चिरकालादेव
न क्षीयते ॥ १३ ॥

भाषार्थ ।

उस घूमते हुए पांच अरों वाले पहिये में सब
भुवन ठैरे हुए हैं, उसका धुरा बहुत भार उठाने
पर (भी) नहीं तपता, वह नाभ के सहित सदा से
क्षीण नहीं होता ॥ १३ ॥

विश्वेदेवादेवताः, निचृज्जगतीछन्दः ॥ १२ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १२ ॥

स नैमिचक्रमजरं विवाह त उक्ता-
नायां दशयुक्तावहन्ति । सूर्यस्य चक्षूर-

क्र०सं०१स०११४सं०१४ (४४२८)

जसै॒त्यावृ॑तं तस्मि॒न्नार्पि॑ताभुव॒ना-
नि॒विष्वा॑ ॥ १४ ॥

सऽने॑मि	नेमि॑सहितम्	घेरे॑ सहित
च॒क्रम्	चक्रम्	पहिया
अ॒जरम्	अक्षी॑णम्	क्षीण॑ न होने वाला
वि	वि +	—
व॒वृ॒ते	वि + ववृ॑ते, आव॑र्तते (लङ्घ्यलिट्)	घूम॑ता है
उ॒त्ता॒नाया॑म्	उत्ता॒नाया॑म्	ऊपर॑ ठैरी हुई में
द॒श	दश	दस
यु॒क्ता	युक्ताः	जुड़े हुए

(४४२९) क्र०मं०१सू०११४मं०१४

वहन्ति	वहन्ति	लेजाते हैं
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य का
चक्षुः	चक्षुः	नेत्र
रजसा	अन्धकारेण (मा० को०)	अन्धकार से
एति	गच्छति	चलता है
आवृत्तम्	आवृत्तम्	घिरा हुआ
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में
आर्पिता	संस्थितानि	ठैरे हुए
भवनानि	भुवनानि	भुवन
विप्रवा	विश्वानि	सब

संस्कृतार्थः ।

नेमिसहितम् अक्षीणं चक्रमावर्तते, उद्याना-

क्र०मं०१सू०१४मं०१५ (४४३०)

याम् (ईषायाम्) दश (अश्वाः) युक्ताः (सन्तः) वहन्ति,
सूर्यस्य चक्षुः अन्धकारेणावृतम् (सत्) गच्छति,
तस्मिन् सर्वाणि भुवनानि संस्थितानि (सन्ति) ॥ १४ ॥

भाषार्थ ।

घरे सहित क्षीण न होने वाला पहिया घूमता है, ऊपर ठैरी हुई (ईषा) में दस (घोड़े) जुड़े हुए लेजाते हैं, सूर्य का नेत्र अन्धकार से घिरा हुआ चलता है, उस में सब भुवन ठैरे हुए हैं ॥ १४ ॥

यहां पर पहिया सूर्यही प्रतीत होता है जो सारे सौर ब्रह्माण्ड को उठाए हुए है, दस घोड़े दस दिशाओं में होने वाली किरणें हो सकती हैं, यह सृष्टि गूढ़ अन्धकार से ढकी हुई है, सूर्य ही जहां तक इसकी पहुंच है इस अन्धकार को दूर करता है, शेष आकाश में अन्धकार ही बना रहता है ।

विश्वेदेवादेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं

षड्विंशमात्रप्रयोदेवजाद्वति । तेषा-

मिष्टानि विहितानि धामशः स्थाचे

रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥

(४४३१) अ० सं० १६०११४४०१५

{ साकम्ऽ- जानाम्	सहजातानाम्	एक साथ उत्पन्न हुओं के
सप्तमम्	सप्तमम्	सातवें को
आहुः	आहुः	कहते हैं
एकम्ऽजम्	एकमुत्पन्नम्	अकेले उत्पन्न हुए २ को
षट्	षट्	छ
इत्	एव	ही
यूमाः	सहजाताः	इकट्ठे जन्मे हुए
ऋषयः	ऋषयः	ऋषि
देवम्ऽजाः	देवोत्पन्नाः	देवता से उत्पन्न हुए २
इति	इति	ऐसे

क्र०मं०१सू०१६४मं०१५ (४४३२)

तेषाम्	तेषाम्	उन के
दृष्टानि	इष्टानि	इष्ट
विहितानि	विहितानि	रचे गए
धामऽशः	स्थानक्रमेण	स्थान के क्रम से
स्थात्रे	स्थिरं प्रति	स्थिर की ओर
रेजन्ते	विचलन्ति	चलायमान होते हैं
विष्कृतानि	विविधप्रकारै- र्युक्तानि	अनेक प्रकारों से युक्त
रूपऽशः	रूपक्रमेण	रूप के क्रम से

संस्कृतार्थः ।

सहजातानाम् (सध्ये) सप्तमम् एकमुत्पन्न-
माहुः, षडेव सहजाताः ऋषयः देवोत्पन्नाः इति
(कथ्यन्ते) तेषाम् इष्टानि स्थानक्रमेण विहितानि
(भवन्ति,) विविधप्रकारैर्युक्तानि (च) तानिरूपक्रमेण
स्थिरं प्रति विचलन्ति ॥ १५ ॥

म.सं.०१७-११४०-११ (११४०)

क॒विर्यः॒ पु॒चः॒ स॒र्द्ध॒मा॒चि॒के॒त॒ य॒स्ता॒वि॒-
जा॒ना॒त्स॒पि॒तु॒ष्पि॒ता॒सत् । १६ ।

स्त्रि॒चयः॑	स्त्रि॒त्रयः॑	स्त्रि॒त्रयों को
स॒तीः	स॒तीः	हुई॒यों को
ता॒न्	ता॒न्	उन को
ज॒म्०	(पू॒र्णः)	-
मे॒	म॒मम्	मेरे लिये
पुं॒सः	पु॒रुषान्	पु॒रुषों को
आ॒हुः	आ॒हुः	कह॒ते हैं
प॒श्य॒त्	दृ॒ष्ट॒वान् (ज॒ह॒मान्)	दे॒खा है

(४४५५) क्र० १०००११०००११

प्रश्नऽवाच	नेत्रसंयुक्तः	नेत्री वाले ने
न	न	नहीं
वि	वि +	-
चेतत्	वि + चेतत्, विजानाति	जानता है
अन्धः	अन्धः	अंधा
कविः	मेधावी	बुद्धिमान्
यः	यः	जो
पुत्रः	पुत्रः	पुत्र
सः	सः	वह
ईम्	एव	ही
आ	आ +	-
चिक्तेत	आ + चिक्तेत, जानाति	जानता है

भा० सं० १ सू० १६४ मं० १६ (४४३६)

यः	यः	जो
ता	तान्	उन को
विजानात्	विजानाति	जानता है
सः	सः	वह
पितुः	पितुः	पिता का
पिता	पिता	पिता
अस्ति	अस्ति	है

संस्कृतार्थः ।

स्त्रियः सतीदृशान् मह्यं पुरुषानाहुः, तान् नेत्र-
संयुक्तोदृष्टवान्, अन्वो न विजानाति, यो मेधावी पुत्रः
(अस्ति) स एव जानाति, यो विजानाति स पितुः
(अपि) पिताऽस्ति ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

स्त्री होने पर भी उनको मुझे पुरुष बतलाते
हैं उनको नेत्रों वाले ने देखा है, अन्वो नहीं जानता,

(४४३७) क्र०मं०१सू०१६४मं०१७

जो बुद्धिमान पुत्र (है) वही जानता है, जो जान लेता है वह पिता का (भी) पिता है ॥ १६ ॥

इन गूढ़ आशयों को वही समझ सकता है जो बाल्यावस्था से ही अपने पिता से अधिक बुद्धि वाला हो ।

विश्वेदेवादेवताः, निचृज्जगतीछन्दः । १२।११।१२।१२

अवःपरेणपरएनावरेण पदाव-

तसंबिभ्रतीगौरुदस्थात् । साकद्री-

चीकंसिवदङ्घ्रिपराऽगात् क्वस्वितसू-

तेनहियथेअन्तः ॥ १७ ॥

अवः	अवस्तात्, नीचै- रित्यर्थः	नीचे
परेण	परेण	परले से
परः	परस्तात्, उच्चै- रित्यर्थः	ऊंचे
एना	अनेन	इस से

क०सं०१ क०११४मं०१७ (४१३८)

अ॒वरे॒ण	अवरेण	उरले से
प॒दा	पादेन	पैर से
व॒त्स॒म्	वत्सम्	बछड़े को
वि॒भ्र॒ती	धारयन्ती	धारण करती हुई
गौः	गौः	गौ
उ॒त्	उत् +	-
अ॒स्था॒त्	उत् + अस्थात्, उत्थितवती	उठी हैं
सा	सा	वह
क॒द्री॒ची	कुत्रगच्छन्ती	कहां जाने वाली
क॒म्	कम् +	-
स्वि॒त्	कम् + स्वित्	किस को

(४४३९) क्र०सं०१६०१६४सं०१७

अर्द्धम्	अर्द्धम्	अर्ध गोल को
परा	परा+	-
अगात्	परा+अगात्, परागतवती	लौट गई है
क्व	क्व+	-
स्वित्	क्व+स्वित्,	कहां
सूते	सूते	सूती है
नहि	नहि	नहीं
यूथे	ब्रजे	गोष्ठ में
अन्तः०	मध्ये	बीच

संस्कृतार्थः ।

परेण नैचैः, अवरेण (च) उच्चैः, अनेन पादेन
 वस्त्रं धारयन्ती मोरुस्थितवती, सा कुत्र गच्छन्ती

क्र०सं०१५०११४सं०१८ (४४४०)

कस्विदर्थ परागता? क्वस्वित् (च) सूते ? ब्रजमध्ये
(तु) नास्ति ॥ १७ ॥

भाषार्थ ।

परले से नीचे (और) उरले से ऊपर इस पैर
से बछड़े को धारण करती हुई गौ उठी है, वह कहां
जाने वाली किस अर्धगोल को लौट गई ? (और)
कहां सूती है ? गोष्ठ में (तो) नहीं है ॥ १७ ॥

परले से द्यौ और उरले से पृथिवी का संकेत है यहां पर
गौ से धूमकेतु तारे की ओर निर्देश है, जो कुछ दिन दीक्षता
है फिर इस गोष्ठ में अर्थात् दृश्यमान तारामंडल में कहीं नहीं
दीक्षता ।

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

अवःपरेणपितरंयोअस्यानुवे-

दपरएनावरेण । कवोयमानःकइच्च

प्रवोचहेवंमनःकुतोअधिप्रजातम् । १८ ।

अवः

अवस्तात्
नावेरित्यर्थः

नीचे

(४४४१) क्र०मं० १२०१६४मं० १८

परेण	परेण	परले से
पितरम्	पितरम्	पिता को
यः	यः	जो
अस्य	एनम् (द्वितीयाथैषण्ठी)	इस को
अनुवेद	पश्यति (भा० को०)	देखता है
परः	परस्तात्, उच्चैरित्यर्थः	ऊंचे
एना	अनेन	इस से
अवरेण	अवरेण	उरले से
कविऽयमानः	कविबदाचरन्	अपने को बुद्धि- मान कहता हुआ
कः	कः	कौन
इह	इह	यहां

क०सं०१४०११४सं०१८ (४४४२)

प्र	प्र +	-
वोचत्	प्र+वोचत् , प्रब्रूयात्	कहे
देवम्	देवरूपम्	देवरूप
मनः	मनः	मन
कुतः	कुतः	कहाँ से
अधि	अधि +	-
प्रजातम्	अधि+प्रजातम्, उत्पन्नम्	उत्पन्न हुआ है

संस्कृतार्थः ।

य एनं पितरं परेण अवस्तात् अनेन अवरेण
च परस्तात् पश्यति कत्रिवदाचरन् कः इहप्रब्रूयात् ?
देवरूपमनः कुतउत्पन्नम् ? ॥ १८ ॥

भाषार्थ ।

जो इस पिता को परले से नीचे और इस
नीचले से परे देखता है अपने को बुद्धिमान् कहता

(४४४३) क्र०मं० १सू० ११४मं० १९

हुआ कौन यहां कहे ? देवरूप मन कहांसे उत्पन्न
हुआ है ? ॥ १८ ॥

जो अपने को बुद्धिमान् कहता है वही इस का आशय बतावे ।
विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । १११११ । १११११ ।

ये अर्वाञ्चस्ताँ उपराच आह्र्ये
पराञ्चस्ताँ उपर्वाच आहुः । इन्द्र-
प्रचया चक्रथुः सोमतानि धरान्यु-
क्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

ये	ये	जो
अर्वाञ्चः	इत आगच्छन्तः	इधर आने वाले
तान्	तान्	उन को
ऊम्०	(पूरणः)	-

सं० सं० १२०११७४०१९ (४४४४)

पराचः	परामच्छतः	परे जाने वालों को
आहुः	आहुः	कहते हैं
ये	ये	जो
पराञ्चः	परागच्छन्तः	परे जाने वाले
तान्	तान्	उन को
ऊम्	(पूरणः)	—
अर्वाचः	इत आगच्छतः	इधर आने वालों को
आहुः	आहुः	कहते हैं
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
च	च	और
या	यानि	जिन को

(४४४५) ऋ०मं०१५०११४मं०१९

च॒क्रा॒युः	कृतवन्तौ॒स्थः	तुमने किया है
सो॒म	हे सोम !	हे सोम
ता॒नि	तानि	वे
धु॒रा	धुरा	धुरे से
न	इव	जैसे
यु॒क्ताः	युक्ताः	जुड़े हुए
रज॒सः	आकाशम् (कर्मणिषण्टी)	आकाश को
व॒ह॒न्ति	वहन्ति	ले चलते हैं

संस्कृतार्थः ।

• ये इत आगच्छन्तः (सन्ति) तान् परागच्छतः
 आहुः, ये (च) परागच्छन्तः (सन्ति) तान् इत-
 आगच्छतः आहुः, हे सोम ! (स्वम्) इन्द्रश्च यानि
 (प्रहावीनि) कृतवन्तौस्थः तानिधुरायुक्ताः(बलीवर्दाः)
 इव आकाशं वहन्ति ॥ १९ ॥

क्र०सं०१५०१६४मं०२० (४४४६)

भाषार्थः ।

जो इधर आने वाले (हैं) उनको परे जाने वाला कहते हैं (ओर) जो परे जाने वाले (हैं) उनको इधर आने वाला कहते हैं, हे सोम ! (आप) और इन्द्र दोनों ने जिन (ग्रह आदि लोकों) को बनाया है, वे धुरे से जुड़े हुए (बैलों) की न्याईं आकाश को ले चलते हैं ॥ १९ ॥

जो ग्रह उल्टी गति से इधर आते हुए प्रतीत होते हैं वे सूर्य के चारों ओर घूमने से वास्तव में हम से परे जा रहे हैं, और जो परे जाते हुए दीखते हैं वे वास्तव में इधर आ रहे हैं, यद्यपि कोई ग्रह इधर आते हुए ओर कोई पीछे हटते हुए दीखते हैं— परन्तु वास्तव में सारा आकाशही पूर्व से पश्चिम की ओर चल रहा है मानो सूर्य चन्द्रमा और अन्यग्रह सभी बैल इसको लेजा रहे हैं ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

दासुपर्णासयुजासखाया समा-

नवृक्षं परिष्वजाते । तथोरन्यः पि-

त्पलं स्वाहृत्य नूनन्नन्यो अभिचा-

कशीति ॥ २० ॥

(४४७) स.मं०।सू०।१६।४०२७

दा	द्वौ	दानौ
सुऽप॒णा॑	सुपक्षौ	सुन्दर पक्षों वाले
सुऽयु॒जा॑	सहयुक्तौ	जाड़ले
सखा॑या	सखायौ	मित्र
स॒मा॒नम्	एकम्	एक को
वृ॒क्षम्	वृक्षम्	वृक्ष को
परि॑	परि +	-
स॒स्व॒जा॒ते॒०	परि+सस्वजाते, परिष्वजतः, आश्रयतः,	आश्रय पाते हैं
तयोः॑	तयोः	उन में
अ॒न्यः	एकः	एक

अ०सं०१सू०१६४सं०२० (४४४८)

पिप्पलम्	फलम्	फल को
स्वादु	स्वादु	स्वादु को
अत्ति	भक्षयति	खाता है
अनग्रनन्	अभक्षयन्	न खाता हुआ
अन्यः	द्वितीयः	दूसरा
अभि	अभि +	-
चाकशीति	अभि+चाकशीति, अभितःपश्यति	चारों ओर से देखता है

संस्कृतार्थः ।

सहयुक्तौ सखायौ द्वौ सुपक्षौ (पक्षिणौ) एकं
वृक्षं परिष्वजतः, तयोरेकः स्वादु फलं भक्षयति,
द्वितीयोऽभक्षयन् (सन्) अभितः पश्यति ॥ २० ॥

भाषार्थः ।

जोड़ले मित्र दो सुन्दर पक्षी बाले (पक्षी) एक
वृक्ष पर आश्रय पाते हैं, उन में से एक स्वादु फल

(४४४९) क्र०मं०१सू०११४मं०२१

को खाता है, दूसरा न खाता हुआ चारों ओर से देखता है ॥ २० ॥

यहां देहाभिमानी जीवात्मा एक पक्षी और अन्तरात्मा दूसरा पक्षी है, जीव भोगों में फंस कर दुःख उठाता है, और अन्तरात्मा निर्लेपता से उसको देखता है।

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

यच्चासुपर्णाअमृतस्यभागम-

निमेषंविदथाभिस्वरन्ति । इनोवि-

प्रवस्यभवनस्यगोपाः समाधीरःपा-

कमचाविवेश ॥ २१ ॥

यच्च	यस्मिन्	जिस में
सु॒ऽप॒र्णाः	सुपक्षाः(जीवाः)	जीव
अमृतस्य	अमृतस्य	अमृत के

क्र०मं०१स्०२६२मं०२१ (४४५०)

भागम्	भागम्	भाग को
अनिऽमेयम्	अनवरतम्	निरन्तर
विदधा	ज्ञानपूर्वकम् (आ०को०)	ज्ञानपूर्वक
{ अभिऽ- स्वरन्ति	अभिनःस्तुवन्ति (आ०को०)	चारों ओर से स्तुति करते हैं
इनः	स्वामी	स्वामी
विप्रवस्य	सर्वस्य	सब की
भुवनस्य	भुवनस्य	भुवन की
गोपाः	रक्षकः	रक्षा करने वाला
सः	सः	उस ने
मा	माम्	मुझ को

(४४५५) ऋ०मं०१ सू०१६४मं०२१

धीरः	धीमान्	बुद्धिमान्
पाकम्	अज्ञम्	अज्ञानी को
अत्र	अत्र	यहां
आ	आ +	-
विवेश	आ+विवेश, आविष्टवान्	प्रविष्ट हुआ है

संस्कृतार्थः ।

यस्मिन् जीवाः अमृतस्य भागम् अनवरतं
ज्ञानपूर्वकं स्तुवन्ति, स सर्वस्य स्वामी भुवनस्य रक्षका
धीमान् माम् अत्र आविष्टवान् ॥ २१ ॥

भाषार्थः ।

जिसमें जीव अमृत के भाग को निरन्तर ज्ञान-
पूर्वक स्तुति करते हैं, वह सब का स्वामी भुवन का
रक्षक बुद्धिमान मूझ अज्ञानी में यहां प्रविष्ट हुआ
है ॥ २१ ॥

इस शरीर में न मरने वाला भाग अन्तरात्मा है जिस को
ज्ञान लेने से जीव निरन्तर स्तुति में मग्न रहते हैं, यही अन्तरात्मा
सब का स्वामी और भुवन का रक्षक है, वह स्वयं मूझ में आकर
प्रविष्ट हुआ है और मैं मूर्ख उसको नहीं जानता ।

क्र०मं० १सू० ११४मं० २२ (४४५२)

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

यस्मिन्वृक्षे मधुषट्पदः सुपर्णा नि-

विश्रन्ते सुवते चाधिविश्रवे । तस्ये-

दाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नश-

द्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

यस्मिन्

यस्मिन्

जिस में

वृक्षे

वृक्षे

वृक्ष में

मधुषट्पदः

मधुभक्षकाः

मधु खाने वाले

सुपर्णाः

शोभनपक्षाः
(जीवाः)

जीव

निःविश्रन्ते

निवसन्ति

निवास करते हैं

सुवते

उत्पादयन्ति

उत्पन्न करते हैं

(४४५३) म०मं०१५०१६४मं०२३

च	च	और
अधि	(यस्मिन्) अधि	(जिस) में
विप्रवे	सर्वे	सब
तस्य	तस्य	उस के
इत्	(पूरणः)	-
आहुः	आहुः	कहते हैं
पिप्पलम्	फलम्	फल को
स्वादु	स्वादु	स्वादु को
अग्रे	अग्रभागे	आगे के भाग में
तत्	तत्	उस को
न	न	नहीं
उत्	उत् +	-

अ० सं० १६४ मं० २२ (६४५४)

न॒शत्	उत्+न॒शत्, प्राप्नोति	पाता है
यः	यः	जो
पि॒तरम्	पि॒तरम्	पिता को
न	न	नहीं
वेद॑	जानाति	जानता है

संस्कृतार्थः ।

यस्मिन् वृक्षे मधुभक्षकाः सर्वे शोभनपक्षाः
जीवाः निवसन्ति (प्रजाः) च उत्पादयन्ति, तस्या-
ऽग्रभागे स्वादु फलम् आहुः, (सः) तन्न प्राप्नोति
यः पितरं न जानाति ॥ २२ ॥

भाषार्थः ।

जिस वृक्ष में मधु खाने वाले सब जीव निवास
करते हैं और (प्रजाओं को) उत्पन्न करते हैं, उसके

(४४५५) क्र० १०१ सू० १६४ १०२३

अप्रभाग में स्वादु फल को बतलाते हैं (वह) उसको नहीं पाता जो पिता को नहीं जानता ॥ २२ ॥

जिस संसाररूपी वृक्ष में सब जीव निवास करते हैं और प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं, उस के सब से ऊँचे भाग में ऐसे फल हैं जो केवल आनन्द के देनेवाले हैं और जिन के भोग में पिय के भोगों की न्याई दुःख नहीं है उन को पिता परमात्मा के जानने वाले ही पाते हैं दूसरे नहीं ।

विश्वेदेवादेवताः, भुरिगूजगतीछन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १३ ॥

यद्गायत्रेअधिगायत्रमाहितं
चैष्टुभाद्वाचैष्टुभंनिरतक्षत । य-
ज्ञाजगज्जगत्याहितंपदं यद्भक्तवि-
दुस्तेअमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥

यत्	यत्	जो
गायत्रे	गायत्रे +	-
अधि	गायत्रे + अधि, पृथिव्याः उपरि	पृथिवी के ऊपर

क्र०सं०१सू०१६धर्म०२२ (४४५१)

गा॒य॒त्र॒म्	गा॒य॒त्री॒छ॒न्द॒स्को॒-	गा॒य॒त्री॒छ॒न्द॒ वा॒ला
	मन्त्रः	मन्त्र
आ॒ऽहि॒त॒म्	आ॒हि॒तः	स्था॒प॒न॒ कि॒या
		ग॒या
त्रै॒ष्टु॒भा॒त्	अ॒न्त॒रि॒क्षा॒त्	अ॒न्त॒रि॒क्ष॒ से
वा	वा	वा
त्रै॒ष्टु॒भ॒म्	त्रै॒ष्टु॒भं॒मन्त्र॒म्	त्रि॒ष्टु॒प्छ॒न्द॒ वा॒ले
		मन्त्र॒ को
निः॒ऽअ॒त॒क्ष॒त	स॒म्पा॒दि॒त॒व॒न्तः	ब॒ना॒या
य॒त्	य॒त्	जो
वा	वा	वा
ज॒ग॒त्	ज॒ग॒ती॒स॒म्ब॒धी	ज॒ग॒ती॒ स॒म्ब॒न्धी
ज॒ग॒ति	दि॒वि	द्यौ॒ मे
आ॒ऽहि॒त॒म्	स्था॒पि॒तः	स्था॒प॒न॒ कि॒या
		ग॒या

(४४१७) क्र०मं०१सू०१६४मं०२३

पदम्	मन्त्रः	मन्त्र
ये	ये	जिन्हों ने
इत्	(पूरणः)	-
तत्	तत्	सो
विदुः	ज्ञातवन्तः	जाना है
ते	ते	उन्हों ने
अमृतऽत्वम्	अमरभावम्	अमरभाव को
आनशः	प्राप्तवन्तः	पाया है

संस्कृतार्थः ।

यत् पृथिव्यां गायत्रीछन्दस्कोमन्त्रः स्थापितः,
 अन्तरिक्षाद्वा त्रैष्टुभमन्त्रं समादितवन्तः, यद्वादिवि
 जगतीसम्बन्धी मन्त्रः स्थापितः, तद्ये ज्ञातवन्तस्ते
 अमरत्वं प्राप्तवन्तः ॥ २३ ॥

क्र० सं० १६०१६४ सं० २४ (४४५८)

भाषार्थः ।

जो पृथिवी पर गायत्री छन्द वाला मन्त्र
स्थापन किया गया है, वा अन्तरिक्ष से त्रिष्टुप् छन्द
वाले मन्त्र को बनाया है, वा द्यौ पर जगती
मन्त्र को स्थापन किया है, सो जिन्होंने जाना है
उन्होंने देवभाव को प्राप्त किया है ॥ २३ ॥

छन्दों का लोकों के साथ क्या सम्बन्ध है इस रहस्य को जो
जानते हैं वे क्षम हो गए हैं, गायत्री का पृथिवी और अग्नि के
साथ त्रिष्टुप् का अन्तरिक्ष और इन्द्र के साथ और जगती का द्यौ
और सूर्य के साथ सम्बन्ध शास्त्रों में प्रसिद्ध है ।

विश्वेदेवादेवताः, भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ॥ ११११११२१११ ॥

गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कं मर्क-
णसाम चैष्टभेन वाकम् । वाकेन वाकं
द्विपदा चतुष्पदा ऽक्षरेण मिमते स-
प्तवाणीः ॥ २४ ॥

(४४५१) क्र०मं०१६०१६४मं०२४

गा॒य॒त्रेण॑	गा॒य॒त्रेण॑	गा॒य॒त्रीछ॒न्द॑ से
प्र॒ति॑	प्र॒ति॑+	-
मि॒मी॒ते	प्र॒ति॑+मि॒मी॒ते	ना॒प॒ता है
अ॒र्क॑म्	ऋ॒क्स॑मू॒हम्	ऋ॒चाओं॑ को
अ॒र्के॑ण	ऋ॒क्स॑मू॒हेन॑	ऋ॒चाओं॑ से
सा॒म	सा॒म	सा॒म को
त्रै॒ष्टु॒भेन॑	त्रै॒ष्टु॒भेन॑	त्रि॒ष्टुछ॒न्द॑ से
वा॒क॒म्	य॒जु॒र्वा॒क्य॑म्	य॒जु की॑ बा॒णी को
वा॒केन॑	य॒जु॒र्वा॒क्येन॑	य॒जु की॑ बा॒णी से
वा॒क॒म्	वा॒च॒म्	बा॒णी को
द्वि॒ऽप॒दा॑	पा॒द॒द्वयो॑पेतेन	दो पा॒द वा॒ली से

क्र०सं०।सू०१६४सं०२४ (४४१०)

चतुःपदा	पादचतुष्टयोपेतेन	चारपाद वाली से
अक्षरेण	अक्षरेण	अक्षर से
मिमते	मिमते	नापते हैं
सप्त	सप्त	सातों को
वाणीः	वाणीः	वाणियों को

संस्कृतार्थः ।

गायत्रेण ऋक्समूहं ऋक्समूहेन साम, त्रैष्टु-
भेन (च) यजुर्वाक्यं मिमीते, पादद्वयोपेतेन पादचतु-
ष्टयोपेतेन (च) यजुर्वाक्येन वाचम् (मिमीते)
अक्षरेण (च) सप्तवाणीःमिमते ॥ २४ ॥

भाषार्थः ।

गायत्रीछन्दसे ऋचाओं को ऋचाओं से सामको
(और) त्रिष्टुप्छन्दसे यजुकी वाणी को, नापता है, दो
पाद (और) चार पदवाली यजु की वाणी से वाणी

(४४११) क्र०मं०१सू०११४मं०२५

को (नापता है) (और) अक्षर से सात वाणियों को
नापते हैं ॥ २४ ॥

सात वाणियां पडज ऋषभ गान्धार इत्यादि सात स्वर हो
सकते हैं । “यजुर्वाक्य से वाणी को नापता है” अर्थात् साधारण
वाणी यजुर्वाक्य की न्वाह गण है ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

जगता॑सिन्धु॑र्दिव्यस्त॑भायद्

रथन्त॑रेसूर्य॑पर्य॑पश्यत् । गा॒य॒त्र॒स्य॑

स॒मिध॑स्ति॒स्र॒आ॒ह॒स्ततो॑म॒न्त्राप्र॑रि॒रि-

चेम॑हि॒त्वा ॥ २५ ॥

जग॑ता

जग॑त्या

जग॑ती से

सिन्धु॑म्

समु॑द्रम्

समु॑द्र को

दि॒वि

वि॒वि

धौ॑ में

क्र०मं०१ स०१६४मं०२५ (४४६२)

अस्तभायत्	स्तम्भितवान्	थांभा है
रथम्तरि	रथन्तरसाम्नि	रथन्तर साम में
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
परि	परि +	-
अपश्यत्	परि+अपश्यत् , दृष्टवान्	देखा है
गायत्रस्य	गायत्रस्य	गायत्रीछन्द के
सम्बद्धः	समिधः	समिधाओं को
तिस्रः	तिस्रः	तीनों को
आहुः	आहुः	कहते हैं
ततः	तस्मात्	उस से
मुक्ता	बलेन	बल के द्वारा

क्र० सं० १२०१६४ सं० २३ (४४६४)

स्तो गोधूतदोहदेनाम् । श्रेष्ठं सव

सवितासाविषन्नोऽभीक्ष्णोर्मस्तदु

षु प्रवोचत् ॥ २६ ॥

उप	उप +	-
क्षये	उप + ह्वये, आह्वयामि	बुलाता हूं
सुऽदधाम्	सखेन दुह्यमानाम्	सहज से दुही
धेनुम्	गाम्	जाने वाली को
एताम्	एताम्	गौ को
सुऽहस्तः	शोभनहस्तः	इस को
गोऽधक्	गोदोग्धा	सुन्दर हाथों
		वाला
		गौ के दोहने वाला

(४४६५) म०स०१स०२६४म०२६४

उत	च	और
दोहत्	दुह्यात्	दाहि
एनाम्	एनाम्	इस को
श्रेष्ठम्	श्रेष्ठम्	श्रेष्ठ का
सवम्	प्रोत्साहनम्	उत्साह का
सविता	सविता	सविना
साविषत्	प्रेरयतु	प्रेरण करे
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
अभिऽद्वहः	अत्यन्तंतप्तः	बहुत तपी है
घर्मः	ग्रीष्मः (आ० को०)	गर्मी
तत्	ततः	तिस से

क्र०मै०१४०१६४०२६ (४४६६)

ऊम्०	(पूरणः)	-
सु	पूरणः)	-
प्र	प्र +	-
वोचम्	प्र+वोचम्, प्रब्रवीमि	कहता हूं

संस्कृतार्थः ।

अहम् एतांसुदुह्यमानां गामाह्वयामि, शोभनह-
स्तोगोदोग्धा एनां दुह्यात्, सविताऽस्मभ्यं श्रेष्ठं
प्रोत्साहं प्रेरयतु, ग्रीष्मः अत्यन्तंतप्तः अतः अहं
प्रब्रवीमि ॥ २६ ॥

भाषार्थः ।

मैं इस सहज से दुही जाने वाली गौ को बु-
लाता हूं, सुन्दर हाथों वाला गौ का दोग्धा इस को
दोहे, सविता हमारे लिये श्रेष्ठ उत्साह को प्रेरण
करें, गर्मी बहुत तपी है इसलिये मैं कहता हूं ॥ २६ ॥

यहां गौ बादल और दोहने वाला इन्द्र रूपी विष्णु प्रतीत
ते हैं ।

(४४१७) क्र०मं० १२४०१७

त्रिष्टुप्छन्दः । १२।११।११।११

हिङ्क्ववतीवसुपत्नीवसूनां

वत्समिच्छन्तीमनसाभ्यागात् ।

दुहामप्रिवभ्यापयोअन्येयं सावर्ध-

तामहतेसौभगाय ॥ २७ ॥

{ हिङ्क्व- वती	हिङ्कुर्वती	राँभती हुई
वसुपत्नी	धनस्य स्वामिनी	धन की स्वामिनी
वसूनाम्	धनानाम् (मध्ये)	धनों में
वत्सम्	वत्सम्	बछड़े को
इच्छन्ती	इच्छन्ती	चाहती हुई

अ०म०१स०१६४सं०२३ (४४६६)

मनसा	मनसा	मन से
अभि	अभि +	-
आ	आ +	-
अगात्	अभि+आ+अगा- त्, अभ्यागत- वती	सामने आई है
दुहाम्	दुग्धाम् (सा०मा०)	दूहे
अश्विभ्याम्	अश्विभ्याम्	अश्विनों के लिये
पयः	पयः	दूध को
अठन्या	हन्तुमयोग्या	न मारने के योग्य
इयम्	इयम्	यह
सा	सा	वह

(४४१२) क्र०सं०१६०११४सं०२७

वर्धताम्	वर्धताम्	बढ़े
महते	महते	बड़े के लिये
सौभाग्याय	सौभाग्याय	सौभाग्य के लिये

संस्कृतार्थः ।

हिङ्कुर्वती धनानाम् (मध्ये) धनस्य स्वामिनी
 मनसा वत्समिच्छन्ती (सती) अभ्यागतवती,
 हन्तुमयोग्याः सेयम् अश्विभ्यां पयो दुग्धाम्, महते
 सौभाग्याय (च) वर्धताम् ॥ २७ ॥

भाषार्थः ।

‘‘भती हुई, धनों में धन की स्वामिनी बछड़े
 को मन से चाहती हुई सामने आई है, मारने के
 अयोग्य वह यह अश्विनों के लिये दूध को देवे,
 (और) बड़े सौभाग्य के लिये बढ़े ॥ २७ ॥

अश्विन यहां पर द्यौ और पृथिवी का जोड़ा प्रतीत होता है,
 गौ बादल और बछड़ा विद्यत है, वर्षा से पृथिवी को जल रूप दूध
 मिलता है और द्यौ को मनुष्यों की हवि ॥

का० सं० १२०१६४ सं० १८ (४४७०)

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुछन्दः ॥ ११११११११११११॥

गौ॒र॒मी॒मे॒द॒नु॒व॒त्सं॒मि॒ष॒न्तं॑ मू॒र्धा॒-
नं॒हि॒ङ्ङ॒कृ॒णो॒न्मा॒त॒वा॒उ। रु॒क्वा॒णं
घ॒र्म॒म॒भि॒वा॒व॒शा॒ना मि॒मा॒ति॒मा॒युं॒प-
य॒ते॒प॒यो॒भिः॑ ॥ २८ ॥

गौः	गौः	गौ
अमीमेत्	शब्दं करोति	शब्द करती है
अनु	अनुसृत्य	के पीछे
वत्सम्	वत्सम्	बछड़े को
मिषन्तम्	(अक्षिणी) निमी- लन्तम्	(आंखें), मीचते हुए को
मूर्धानम्	मूर्ध्ना	माथे को

(४४७१) म०म०र०स०र०१६४म०२६

हिङ्	हिङ्कारम्	हिङ्कार को
अकृणीत्	करोति	करता है
मातवै	मातुम्, लेदु- मित्यर्थः	चाटने के लिये
ऊम्०	(पूरणः)	-
सृक्वाणम्	ओष्ठप्रान्तभागम्	होठों के पास के हिस्से को
घर्मम्	पयोभाण्डरूपम् (स्तनम्)	स्तन को
अभि	प्रति	की ओर
वावशाना	कामयमाना	चाहती हुई
मिमाति	रेभते	रांभती है
मायुम्	मृदुरेभणम्	कोमल रांभ को
यते	प्यायते	फूलती है

शुद्धि-०१०११४०२२ (४४७६)

पयःऽभिः	पयोभिः	दूध से
---------	--------	--------

संस्कृतार्थः ।

गौः (अक्षिणी) निमीलन्तं वत्सगानसृत्यशब्दं करोति, (तस्य) मस्तकं लेदुं हिङ्कारं करोति, (तस्य) ओष्ठप्रान्तभागं स्तनं प्रति कामयमाना (सती) नृदुर्भणं रेभते (स्तनेषुच) पयोभिर्वर्धते ॥ २८ ॥

माषार्थः ।

गौ (आंखें) मीचते हुए बछड़े के पीछे शब्द करती है, (उसके) माथे को चाटने के लिये हिंकार करती है, (उसके) होठों को स्तन की ओर चाहती हुई कोमल रांभ से रांभती है (और स्तनों में) दूध से फूलती है ॥ २८ ॥

यहां भी बादल गौ और विद्युत बछड़ा प्रतीत होते हैं ॥

विश्वेदेवादेवताः, जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

अयं सशिङ्क्तेयेन गौरभीवता

मिमातिमायुं ध्वसनावधिश्रिता ।

(४४७१) क्र०मं०१२०११४४०१९

साचि॒त्तिभिर्नि॒हिच॒कार॒मर्त्यं वि॒-
द्युद्भव॑न्तीप्रति॑व॒त्रिमौ॑ह॒त ॥ २६ ॥

अ॒यम्

अ॒यम्

यह

सः

सः

वह

शि॒ङ्क्ते

शिङ्क॑रोति

छिंह करता है

येन॑

येन

जिस ने

गौः

गौः

गौ

अभि॑ऽवृ॒ता

वेष्टिता

घेरी हुई है

मिमा॑ति

रेभते

रांभती है

मा॒युम्

मृदु॑रेभणम्

कोमल रांभ को

सं० सं० १९५४ (४४७४)

धवसनी	आहवादिभिरि	हकने वाले में
अधि	अधि+	-
श्रिता	अधि+श्रिता	आश्रित हुई २
सा	सा	वह
चित्तिऽभिः	चेतनताभिः	चेतनताओं से
नि	नि+	-
हि	खलु	सचमुच
चकार	नि+चकार, नीचैः करोति	नीचे करती है
मर्त्यम्	मनुष्यम्	मनुष्य को
विद्युत्	विद्युत्	विजली
भवन्ती	भवन्ती	बनती हुई

(४४७५) क्र०सं०१सं०११४सं०२९

प्रति	प्रति+	-
व॒त्रिम्	रूपम्	रूप को
प्रौ॒ह॒त	प्रति+ओहन, प्रकटयति	प्रकट करती है

संस्कृतार्थः ।

सोऽयम् (बलीवर्दः) शिङ्करोति येन गौर्वेष्टिता,
सा (गौः) आच्छादयितरि अधिश्रिता (सती) मृदुरेभणं
रेभते, चेतनताभिर्मनुष्यं नीचैः करोति, निशुद् भवन्ती
(च) रूपं प्रकटयति ॥ २९ ॥

भाषार्थः ।

वह यह (बैल) छिंह करता है जिसने गौ को
घेरा है, वह (गौ) ढकने वाले में आश्रित हुई २ कोमल
शब्द से रांभती है, चेतनताओं से मनुष्य को नीचे
करती है (और) बिजली बन कर रूप को प्रकट
करती है ॥ २९ ॥

यहां पर बैल बादल प्रतीत होता है जब वह गरज रूपी गौ को
ढकलेता है तो वह धोमे शब्द से रांभती है, यह गौ मनुष्य से भी
अधिक चेतन है और बिजली बन कर अपने स्वरूप को प्रकट
करती है ॥

सं० सं० १५०१ सं० ३० (४४७१)

विश्वेदेवादेवताः, निचत्त्रिष्टुप्छन्दः १०।११।११।११

अनचक्येतुरगातुजीवमेजद् ध्रुवं

मध्य आपस्तथानाम् । जीवोमृतस्य

चरतिस्वधाभिरमर्त्योमर्त्येनासयो-

निः ॥ ३० ॥

अनत्

इवसत्

इवासलेता हुआ

शये

निवसति

निवास करता है

तुरगातु

तूर्णगमनम्

शीघ्र चलने वाला

जीवम्

जीवनयुक्तम्

जीवन से युक्त

एजत्

कम्पनयुक्तम्

हिलता हुआ

ध्रुवम्

नित्यम्

नित्य

(४४७७) क्र०मं० १ सू० ११४मं० ३०

म॒ध्ये	म॒ध्ये	बी॒च
आ	(पूरणः)	-
प॒स्त्या॑नाम॒	गृ॒हाणा॑म्	घ॒रों के
जी॒वः	जी॒वः	जी॒ता हुआ
मृ॒तस्य॑	मृ॒तस्य॑	म॒रे हुए के
च॒र॒ति	च॒र॒ति	वि॒च॒र॒ता है
स्व॒धाभिः॑	अ॒न्तैः	अ॒न्नों से
अ॒म॒र्त्यः॑	अ॒म॒र॒णध॑र्मा	न ग॒रने वाला
म॒र्त्ये॑न	म॒र॒णध॑र्मणा	म॒रने वाले से
स॒ऽयो॑निः	स॒मा॒न॒स्थानः॑	तु॒ल्य स्थान॑वाला

संस्कृतार्थः ।

तूर्णगमनं जीवनयुक्तं श्वसत् कश्यपुक्तम् (च)

प्र०म०१७०१६४म०११ (४४७६)

नित्यम् (वस्तु) गृहाणांमध्ये निवसति, जीवो मृतस्य
अन्नैः चरति, अमर्त्यः (च सन्) मर्त्येन समान-
स्थानः (भवति) ॥ ३० ॥

भाषार्थः ।

शीघ्र चलने वाला जीवनयुक्त इवास लेता हुआ
(और) हिलता हुआ नित्य (पदार्थ) घरों के बीच में
निवास करता है, जीता हुआ मरेके अन्नसे विचरता
है, (और) अमर (हुआ २) मरने वाले के साथ एक
स्थान में रहता (है) ॥ ३० ॥

‘नित्य पदार्थ’ यहाँ पर अग्नि और जीव दोनों हो । कृत हैं, अमर
अग्निमर्त्य के अन्न को सेवन करता है इसी तरह जीवात्मा शरीर
के उपार्जित अन्नसे निर्वाह करता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

अप॒श्यंगो॒पाम॒निप॒द्यमान॒माच॒

परा॑च॒प॒थिभि॒श्चर॑न्तम् । स॒स॒ध्री॒चीः

स॒विषू॑चीर्व॒सान॒आव॑रीव॒र्तिभु॑वनेष्व-

न्तः ॥ ३१ ॥

(४४७९) क्र०मै०१६०१६४म०३१

अपश्यम्	दृष्टवानस्मि	मैंने देखा है
गोपाम्	रक्षकम्	रक्षक को
{ अनिऽप- { द्यमानम्	खलनरहितम्	न डिगने वाले को
आ	आ+	-
च	(पूरणः)	-
परा	परा+(गच्छन्तम्)	जाते हुए को
च	च	और
पथिऽभिः	मार्गैः	मार्गों से
चरन्तम्	आ+चरन्तम्, आगच्छन्तम्	आते हुए को
सः	सः	वह

प्र०म०१२०२६४म०३१ (४४६०)

सुध्रीचीः	सञ्चितानि	सिमटे हुआँ को
सः	सः	वह
विषूचीः	विकीर्णानि	बिखरे हुआँ को
वसानः	परिदधानः	पहनता हुआ
आ	आ+	-
वरोवर्ति	आ+वरोवर्ति, पुनःपुनरावर्तते	बार २ आता जाता है
भुवनेषु	भुवनेषु	भुवनों में
अन्तः	मध्ये	बीच

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) स्वल्पनरहितं रक्षकं मार्गः परागच्छन्त-
मागच्छन्तं च दृष्टवानस्मि, स सञ्चितानि सः (च)
विकीर्णानि (वस्त्राणि) परिदधानः (सन्) भुवनानां
मध्ये पुनःपुनरावर्तते ॥ ३१ ॥

(४४८१) ऋ०मं०१सू०१६४मं०३२

भाषार्थः ।

मैंने न डिगने वाले रक्षक को मागों से जाते हुए और आते हुए देखा है, वह सिमटे हुए (और) वह बिखरे हुए (वस्त्रों) को पहनता हुआ भुवनों के बीच बार २ आता जाता है ॥ ३१ ॥

न डिगने वाला रक्षक सूर्य है, सिमटे और बिखरे हुए वस्त्र सूर्य की किरणें हैं जो दिन में बिखरी हुई और रात्रि में सिमटी हुई रहती हैं ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

यद्वाचकारनसोअस्यवेद यद्वाच-

दर्शहिङ्गिन्नुतस्मात् । समातुर्यो-

नापरिवीतोअन्तर्बहुप्रजानिर्ऋति-

माविवेश ॥ ३२ ॥

यः

इम्

यः

एनम्

जिस ने

इस को

क्र०सं०१७०११४ सं०३२ (४४८२)

चकार	कृतवान्	किया है
न	न	नहीं
सः	सः	वह
अस्य	तम् (द्वितीयार्थे षष्ठी)	उस को
वेद	जानाति	जानता है
यः	यः	जिस ने
इम्	एनम्	इस को
दृदर्श	दृष्टवान्	देखा है
हिरूक्	अन्तर्हितः (निघ० ३।१५)	छिपा हुआ
इत्	एव	ही
नु	खलु	सचमुच

(४४८३) क्र०मं०एन०१६४मं०११

तस्मात्	तस्मात्	उससे
सः	सः	वह
मातुः	मातुः	माता के
योना	गर्भाशये	गर्भाशय में
परिऽवीतः	वेष्टितः	घिरा हुआ
अन्तः	मध्ये	बीच
बहुऽप्रजाः	बहुप्रजाः	बहुत प्रजा वाला
निऽऽकृतिस्	विनाशस्थानम्	विनाश के स्थान को
आ	आ+	-
विवेश	आ+विवेश, प्राप्तवान्	प्राप्त हुआ है

संस्कृतार्थः ।

य एनं कृतवान्सः तं न जानाति, यः एनं दृष्ट-

क्र०मं० १६०१६४मं० ३३ (४४८४)

वान् (सः) तस्मात् खलु अन्तर्हित एव (अस्ति) स
बहुप्रजाः मातुर्गर्भाशये परिवेष्टितः (सन्) विनाश-
स्थानं प्राप्तवान् ॥ ३२ ॥

भाषार्थः ।

जिसने इस को बनाया है, वह उसको नहीं
जानता, जिसने इतको देखा है (वह) सचमुच उससे
छिपा हुआ (है) वह बहुत प्रजा वाला माताके गर्भाशय
में घिरा हुआ नाश के स्थान को प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥

यहां पर विद्युत और जीव को ओर निर्देश प्रतीत होता है
जो अपने बनाने वाले कारण को नहीं जानता, और अपने देखने
वालेसे छिपा हुआ है, 'बहुत प्रजा' वर्षाकी वृद्धि वा सन्तति होसकती
है जिनको उत्पन्न करके वह विद्युत वा जीव नष्ट होजाता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ११११११११११ ॥

द्यौर्म॑ पि॒ता जनि॑ताना॒भिर॒त्र बन्धु॑-

र्म॑ मा॒ता पृ॒थिवी॑ म॒होय॑म् । उ॒त्ता॒नयो॑-

प्र॒च॒म्बो॑ ३ यो नि॒रन्तर॑चा पि॒ता दु॑हितु-

र्ग॑र्भ॒माधा॑त् ॥ ३३ ॥

(४४६५) सं० १०१६४०१३

द्यौः	द्यौः	द्यौ
मे	मम	मेरा
पिता	पिता	पिता
जनिता	उत्पादयिता	उत्पन्न करने वाला
नाभिः	बन्धुरूपा	बन्धु रूप
अत्र	अत्र	यहां
बन्धुः	बन्धुरूपा	बन्धु रूप
मे	मम	मेरी
माता	माता	माता
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
मही	महती	बड़ी

प्रश्नोत्तर (४४८४)

इयम्	इयम्	यह
उत्तानयोः	विस्तीर्णयोः	विस्तारवालियोंके
चम्बोः	द्यावापृथिव्योः (निघं० ६।३०)	द्यौ और पृथिवी के
योनिः	कारणम्	कारण
अन्तः	मध्ये	बीच
अत्र	अत्र	यहां
पिता	पिता	पिता ने
दुहितुः	दुहितुः	कन्या के
गर्भम्	गर्भम्	गर्भ को
आ	आ +	-
अधात्	आ + अधात्, धारितकान्	धारण किया है

(४४८७.) क्र०सं०१सू०१६४पं०२५

संस्कृतार्थः ।

अत्र बधुनरूपा द्यौर्ममोत्पादयिता पिता (अस्ति)
बन्धुरूपा इयं महती पृथिवी (च) मम माता (अस्ति)
विस्तीर्णयोर्यावापृथिव्योर्मध्ये (जीवानाम्) कारणम्
(अस्ति) अत्र पिता दुहितुगर्भं धारितवान् ॥ ३३ ॥

भाषार्थः ।

यहां बन्धुरूप द्यौ मेरा उत्पन्न करने वाला पिता
(है) (और) बन्धुरूप यह बड़ी पृथिवी मेरी माता
(है) विस्तार वाली द्यौ और पृथिवी के बीच में (जीवों
का) कारण (है) यहां पिता ने कन्या में गर्भ को धारण
किया है ॥ ३३ ॥

घौ से उत्पन्न होने के कारण पृथिवी उसको पुत्रो कही गई है, इसमें कृष्टि रूप बोज के देने वाला भो घौ होने से पिता पुत्रो में गर्भ को धारण करता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः॥११॥११॥११॥११॥

पृ॒च्छामि॑ त्वा॒पर॒मन्तं॑ पृ॒थि॒व्याः

पृ॒च्छामि॒ यच्च॒ भुव॑नस्य॒ नाभिः॑ । पृ॒च्छा-

अ०सं०१००११४सं०१४ (४४८८)

मि॒त्वा॒वृ॒ष्णी॒अ॒श्व॒स्य॒रेतः॑ पृ॒च्छामि॑

वाचः॑ पर॒मं॒व्योम॑ ॥ ३४ ॥

पृ॒च्छामि॑	पृ॒च्छामि	पूछता हूं
त्वा॒	त्वाम्	तुझ को
पर॒म्	परम्	परम को
अ॒न्तम्	अन्तम्	अन्त को
पृ॒थि॒व्याः॑	पृथिव्याः	पृथिवी के
पृ॒च्छामि॑	पृ॒च्छामि	पूछता हूं
य॒च्च	यत्र	जहाँ
भु॒वन॒स्य॑	भवनस्य	भवन की

(४४८९) क०मं०१ख०११४मं०३४

नाभिः	नाभिः	नाभि
पृच्छामि	पृच्छामि	पूछता हूं
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वृष्णः	वीर्यवतः	वीर्य वाले के
अश्वस्य	अश्वस्य	घोड़े के
रेतः	वीर्यम्	वीर्य को
पृच्छामि	पृच्छामि	पूछता हूं
वाचः	वाचः	बाणी के
परमम्	परमम्	परम को
विश्वोम	स्थानम्	स्थान को

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) त्वां पृथिव्याः परमन्तं पृच्छामि, भुव-

अ०मं०१सू०१६४मं०३५ (४४९०)

नस्य नाभिः कुत्रास्तीति पृच्छामि, वीर्यवतोऽश्वस्य
वीर्यं पृच्छामि, वाचः परमं स्थानम् (च) पृच्छामा३४।

भाषार्थः ।

मैं आप से पृथिवी का परम अन्त पूछता हूँ,
भुवन की नाभि कहां है यह पूछता हूँ, वीर्यवान घोड़े
के वीर्यको पूछता हूँ, (और) वाणी के परम स्थान को
पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

वीर्यवान घोड़ा घौ प्रसूत होता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११

इ॒यंवे॒दिःप॒रोअ॒न्तःपृ॒थि॒व्या अ॒यं

य॒ज्ञोभु॒वनस्य॒नाभिः । अ॒यंसी॒मो

वृ॒ष्णोअ॒श्वस्य॒रेतो॑ ब्र॒ह्मा॒यंवा॒चःप॒रमं

व्यो॒म ॥ ३५ ॥

इ॒यम्

इ॒यम्

यह

(४४९१) क्र०सं०१६०११४सं०१५

वेदिः	वेदिः	वेदि
परः	परः	परम
अन्तः	अन्तः	अन्त
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
अयम्	अयम्	यह
यज्ञः	यज्ञः	यज्ञ
भुवनस्य	भुवनस्य	भुवन की
नाभिः	नाभिः	नाभि
अयम्	अयम्	यह
सोमः	सोमः	सोम
वीर्यवतः	वीर्यवतः	वीर्य वाले का

क्र०सं०१क०११४सं०३५ (४४९२)

अ॒प्र॒व॒स्य	अ॒व॒स्य	घोडे का
रेतः	वीर्यम्	वीर्यं
ब्र॒ह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा
अ॒यम्	अयम्	यह
वा॒चः	वाचः	बाणी का
प॒र॒म॒म्	परमम्	परम
वि॒ऽश्वा॒न्	स्थानम्	स्थान

संस्कृतार्थः ।

इयं वेदिः पृथिव्याः परोऽन्तः (अस्ति) अयं यज्ञो
भुवनस्य नाभिः (अस्ति) अयं सोमोवीर्यवतोऽश्वस्य
वीर्यम् (अस्ति) अयं ब्रह्मा (च) वाचः परमं स्थानम्
(अस्ति) ॥ ३५ ॥

भाषार्थः ।

यह वेदि पृथिवी का परम अन्त (है) यह यज्ञ

(४४९३) क०मं०१६०१६४मं०३१

भुवन की नाभि (है) यह सोम वीर्यवान घोड़े का वीर्य (है) (और) यह ब्रह्मा वाणीका परम स्थान है ॥ ३५ ॥

क्योंकि वेदि ऐसी जगह है जहां पर मनुष्य इस लोक और परलोक का मेल करते हैं, यज्ञ भुवन की नाभि है क्योंकि सारे भुवन समष्टि यज्ञ पर आश्रित हैं, सोम द्यौ का वीर्यरूप है इसीलिये उसका यज्ञ में पान बलों को देने वाला है, ब्रह्मा में वाणी जाकर लोप हो जाती है क्योंकि ब्रह्मा यज्ञ में मौन रहता है, अथवा मौनता वाणी का परम स्थान इसलिये है कि परमात्मा में पहुँच कर वाणी लीन हो जाता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, जगतीच्छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

सप्तार्द्धगर्भाभुवनस्यरेतोविष्णो-

स्तिष्ठन्तिप्रदिशाविधर्मणि । तेधी-

तिभिर्नसातेविपश्चितः परिभुवः

परिभवन्तिविश्वतः ॥ ३६ ॥

सप्त

सप्त

सात

क्र०मं०१सू०१६४मं०३६ (४४१४)

अर्द्धऽगर्भाः	अर्धगर्भाः	आधे गर्भ
भुवनस्य	भुवनस्य	भुवन के
रेतः	वीर्यरूपाः	वीर्य रूप
विष्णोः	विष्णोः	विष्णु की
तिष्ठन्ति	तिष्ठन्ति	ठैरते हैं
प्रऽदिशा	प्रदेशेन	आज्ञा से
विऽधर्मिणा	नियमे	नियम में
ते	ते	वे
धीतिऽभिः	बुद्धिभिः	बुद्धियों से
मनसा	मनसा	मन से
ते	ते	वे

(४४१५) अ०मं०१ख०११४मं०११

वि॒पः॒ऽचितः॑	विद्वांसः	विद्वान्
परि॒ऽभुवः॑	व्यापनशीलाः	व्यापने वाले
परि॑	परि +	-
भव॒न्ति	पार+भवन्ति, वेष्टयन्ति	घेरते हैं
वि॒प्रवतः॑	सर्वतः	सब ओर से

संस्कृतार्थः।

भुवनस्य वीर्यरूपाः सप्तार्धगर्भाः विष्णोः प्रदेशेन
नियमे तिष्ठन्ति, ते बुद्धिभिर्मनसा (च) व्यापनशीलाः
ते विद्वांसः (भुवनम्) सर्वतो वेष्टयन्ति ॥ ३६ ॥

भाषार्थः।

भुवन के वीर्यरूप सात अर्धगर्भ विष्णु की
आज्ञा से नियम में रहते हैं, वे बुद्धि (और) मन से
व्यापने वाले वे विद्वान् (भुवन को) चारों ओर
से घेरते हैं ॥ ३६ ॥

‘भुवन के बीज रूप सात अर्धगर्भ’ कौन हैं इस को मन्त्र-
द्वष्टा कृषि ही जानते होंगे ॥

(४४१७) म०प्र०१सू०११धर्म०१७

अस्मि	अस्मि	मैं हूँ
निययः	गूढः	गूढ़
सम्पन्नः	सम्यग्बद्धः	स्वयं बांधा हुआ
मनसा	मनसा	मन से
चरामि	चरामि	विचरता हूँ
यदा	यदा	जब
मा	माम्	मुझ का
आ	आ +	-
अगन्	आ + अगन्, प्राप्नोति (लङ्गैलुङ्)	प्राप्त होता है
प्रथमजाः	प्रथमपुत्रः	पहला पुत्र

क.सं.१७.१४४४.३७ (४४९६)

कृतस्य	कृतस्य	कृत का
आत्	तदा	तब
इत्	एव	ही
वाचः	वाचः	वाणी के
अप्नुवे	प्राप्नोमि	प्राप्त होता हूँ
भागम्	भागम्	भाग को
अस्याः	अस्याः	इस के

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) न विजानानि यदिव इदमस्मि, गूढो
मनसा सम्यग्बुद्धः (च सन्) चरामि, यदा माम्
कृतस्य प्रथमपुत्रः प्राप्नोति तदैव (अहम्) अस्याः
वाचोभागं प्राप्नोमि ॥ ३७ ॥

माषार्थः॥

मैं नहीं जानता जिसकी म्याई मैं यह हूँ
(क्योंकि) गूढ़ (और) मन से जकड़ा हुआ विचरता

(४४१९) क्र०म०१सू०१६धम०१८

हूँ, जब मेरे पास ऋत का पहला पुत्र आता है तभी
मैं इस वाणी के भाग को प्राप्त होता हूँ ॥ ३७ ॥

ऋत का पहला पुत्र सूर्य है, जब मनुष्य माता के गर्भ से
बाहर निकल कर सूर्य के प्रकाश में आता है तब वह बोलता है ॥

विश्वेदेवा देवताः, त्रिष्टुच्छन्दः ॥ ११११११११११ ॥

अपाङ्प्राङ्तिस्वधयागृभीतो

ऽमर्त्यामर्त्येनासयोनिः । ताश्रव-

न्ताविष्चीनावियन्तान्यन्यंचिक्यु-

र्ननिचिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥

अपाङ्

प्राङ्

एति

स्वधया

अधः

ऊर्ध्वम्

गच्छति

स्वेच्छया

नीचे

ऊपर

जाता है

अपनी इच्छा से

क्र०सं०१ कु०११४सं०३८ (४५००)

गभीतः	गृहीतः	ठैया हुआ
ममर्त्यः	अमरणधर्मा	न मरने वाला
मर्त्येन	मरणधर्मणा	मरने वाले से
सऽयोनिः	समानयोनिः	एक योनि वाला
ता	तौ	वे दोनों
शश्वन्ता	सर्वदा	सदा
विषचीना	सहवर्तमानौ	इकट्ठे रहने वाले
विऽयन्ता	विरुद्धगमनौ	विरुद्ध गति वाले
नि	नि +	-
अन्यम्	एकम्	एक को
चिक्युः	नि+चिक्युः, नितरांपश्यन्ति	खूब देखते हैं

(४५०१) क्र०मं०१स०११४मं०३८

न	न	नहीं
नि	नि+	-
चिक्चुः	नि+चिक्चुः, नितरांपश्यन्ति	खूब देखते हैं
अन्यम्	द्वितीयम्	दूसरे को

संस्कृतार्थः ।

मरणधर्मणा समानयोनिरमरणधर्मा स्वेच्छया
 गृहीतः (सन्) अध ऊर्ध्वम् (च) गच्छति, तौ सर्वदा
 सहवर्तमानौ विरुद्धगमनौ (च स्तः,) एकम्,
 (जनाः) नितरांपश्यन्ति द्वितीयं न पश्यन्ति ॥ ३८ ॥

भाषार्थः ।

मरण धर्मा के साथ एक योनि वाला अमरण-
 धर्मा अपनी इच्छा से नीचे (और) ऊपर जाता है,
 वे दोनों सदा साथ रहने वाले (और) विरुद्धगति वाले
 (हैं) एक को (मनुष्य) खूब देखते हैं दूसरे को
 नहीं देखते ॥ ३८ ॥

शतपथ ब्राह्मण (१०।१।३।१)में लिखा है कि प्राण अमर है और
 शरीर मरने वाला है । प्राण अपनी इच्छा से ऊपर और नीचे जाता

अ०सं०१८०११४ सं०३९ (४५०२)

है, सदा शरीर के साथ रहता है जब प्राण निकल जाता है तो शरीर भी नहीं रहता, ये दोनों विरुद्ध गति धाले हैं प्राण ऊपर जाता है शरीर यहां पड़ा रहता है ॥

विश्वेदेवादेवताः, निचृज्जगतीछन्दः। १०।११।११।११।

ऋ॒चो॒अ॒क्षरे॑पर॒मेव्योम॒न् यस्मिन्
दे॒वाअ॒धिवि॒श्वेनि॒षेदुः॑ । यस्तन्नवेद
कि॒मृ॒चाक॑रिष्यति॒ यद्व॒त्तद्विदु॒स्तद्व॒मे
समा॑सते ॥ ३६ ॥

ऋ॒चः

ऋचः

ऋचापं

अ॒क्षरे॑

अविनाशिनि

न नाश होने
वाले में

पर॒मे

उत्कृष्टे

ऊंचे में

वि॒ओम॒न्

स्थाने

स्थान में

(४५०३) क्र०सं०१६४सं०३९

यस्मिन्	यस्मिन्	जिस में
देवाः	देवाः	देवता
अधि	अधि+	-
विप्रवे	सर्वे	सब
निऽसेदः	अधि+निषेदुः, आभित्यतिष्ठन्ति	आभयमें ठैरते हैं
यः	यः	जो
तत्	तत्	उस को
न	न	नहीं
वेद	लभते (विदल्लभते)	पाता है
किम्	किम्	क्या
ऋचा	ऋचा	ऋचा से
करिष्यति	करिष्यति	करेगा

अ० सं० १ अ० ११ अ० ११ (४५०४)

ये	ये	जो
इत्	(पूर्णः)	-
तत्	तत्	उस को
विदुः	प्राप्नुवन्ति	पाते हैं
ते	ते	वे
इमे	इमे	ये
सम्	सम् +	-
आसते	सम् + आसते, सङ्गतावर्तन्ते	इकट्ठे विराजते हैं

अंस्कृतायः ।

ऋचः (तस्मिन्नेव) अविनाशिनि उत्कृष्टे स्थाने
(स्थिराः सन्ति) यस्मिन् सर्वे देवाः आश्रित्य तिष्ठन्ति
यस्तन्म प्राप्नोति (सः) ऋचा किं करिष्यति, ये तत्
प्राप्नुवन्ति ते इमे सङ्गताः वर्तन्ते ॥ ३९ ॥

भाषार्थः ।

ऋचायं (उसी) अविनाशी उत्कृष्ट स्थान में

सुयवसऽयत्	शोभनतृणादिनी	सुन्दर घास खाने
भगऽवती	भाग्यवती	वाली
हि	खलु	भाग्य वाली
		सचमय

अ०सं०१७०११४सं०४० (४५०१)

भूयाः	भूयाः	तू हो
अथो०	अपिच	और
वयम्	वयम्	हम
भगवन्तः	भाग्यवन्तः	भाग्यवान्
स्याम	स्याम	हों
अक्षि	भक्षय	खा
तृणम्	तृणम्	घास को
अठन्ये	हे अहननीये !	हे न हनन करने
{ विप्रवः-	विश्वकालम्	योग्य
{ दानीम्		सब काल में
पिब	पिब	पी

(४५०७) क्र०सं०१सू०१६४सं०४०

शुद्धम्	निर्मलम्	निर्मल को
उदकम्	उदकम्	जल को
पाऽचरन्ती	विचरन्ती	विचरती हुई

संस्कृतार्थः ।

हे अहननीये! भाग्यवती (त्वम्) शोभनतृणा-
दिनी खलु भूयाः, अपिच वयं भाग्यवन्तः स्याम,
विचरन्ती (त्वम्) विश्वकालं तृणं भक्षय, निर्मलं
जलम् (च) पिब ॥ ४० ॥

भाषार्थः ।

हे न हनन करने योग्य ! भाग्यवाली तू सच-
मुच सुन्दर घास खाने वाली हो, और हम भी भाग्य-
वान् होवें, तू विचरती हुई सब काल में घास को
खा (और) निर्मल जल को पी ॥ ४० ॥

अबि गौ को देखकर प्रेम से यह आशीर्वादात्मक मन्त्र उच्चा-
रण करते हैं, हम सब प्रतिदिन इस मन्त्र से गौ को आशीर्वा-
देवें तो क्यातः वह फिर भक्ष्या बन जावे और उसको घास और
शुद्ध जल की कमी न रहे ॥

क्र०सं०१७०१६४सं०४१ (४५०८)

त्रि॒श्वेदे॒वादे॒वताः, जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

गौरी॑र्मि॒माय॑स॒लिलानि॑त॒क्ष॒त्ये-

क॒प॒दी॒द्वि॒प॒दी॒सा॒चतु॑ष्प॒दी । अ॒ष्टा-

प॒दी॒न॒व॒प॒दी॒व॒भू॒व॒र्षी॑ स॒ह॒स्रा॑क्ष॒राप॑-

र॒मे॒व्योम॑न् ॥ ४१ ॥

गौरीः	दीप्तिमती (सुलोभाभावश्छान्दसः)	प्रकाश वाली ने
मिमाय	शब्दंकृतवती	शब्द किया है
सलिलानि	जलानि	जलों को
तक्षती	सम्पादयन्ती	संपादन करती हुई
एकऽपदी	एकपादोपेता	एक पैर वाली

(४५०९) मा० सं० १२०० १३४८ सं० ४१

द्विऽपदी	द्विपादोपेता	दो पैरों वाली
सा	सा	वह
चतुःऽपदी	चतुष्पादोपेता	चार पैरों वाली
षष्ठाऽपदी	अष्टपादोपेता	आठ पैरों वाली
नवऽपदी	नवपादोपेता	नौ पैरों वाली
बभ्रवः	सम्भूतवती (भवेद्गान्धर्वः भवसुः)	हुई
सहस्रऽ- पक्षरा	सहस्रैरक्षरैर्युक्ता	हजारों अक्षरों वाली
परमे	उत्कृष्टे	उत्कृष्ट में
विऽद्योमन्	आकाशे	आकाश में

संस्कृतार्थः ।

सलिलानि सम्पादयन्ती दीप्तिमती (विद्युत्)
शब्दं कृतवती, सा उत्कृष्टे आकाशे एकपादोपेता द्वि-

अ० सं० १ सं० ११४ सं० ४२ (४५१०)

पादोपेता चतुष्पादोपेता अष्टपादोपेता नवपादोपेता
सहस्राक्षरा (च) सम्भूतवती ॥ ४१ ॥

भाषार्थः ।

जलों को सम्पादन करती हुई दीप्तिवाली
(विद्युत्) ने शब्द किया है, वह उत्कृष्ट आकाश में
एक पाद वाली दो पाद वाली चार पाद वाली आठ
पाद वाली नौ पाद वाली और सहस्र अक्षर वाली
हुई है ॥ ४१ ॥

आकाश में बिजली को गरज को सुन कर ऋषि के उद्देश्य से
यह स्तुति निकली प्रतीत होती है, शायद वह विद्युत के शब्द में
वेद के सारे छन्द और सहस्र अक्षर वाले सूक्त को देखते हैं ॥

माध्यमिकावागापश्च देवताः,

प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ ८ ॥

तस्याः समुद्राधिविचरन्ति

तेन जीवन्ति प्रदिशश्च तस्रः । ततः

चरत्युच्चरं तद्विप्रमुपजीवति ॥ ४२ ॥

(४५११) भा० सं० ११ प्र० ११ अ० ४६

तस्याः

तस्याः+अधि

उस से

समुद्राः

समुद्राः

समुद्र

पधि

+अधि

-

वि

वि +

-

क्षरन्ति

वि+क्षरन्ति

बहते हैं

तेन

तेन

उस से

जीवन्ति

जीवन्ति

जीती हैं

प्रदिशः

प्रदिशः

दिशाएँ

चतस्रः

चतस्रः

चार

ततः

ततः

फिर

क्षरति

क्षरति

गिरता है

अ०सं०१सू०१६४मं०४२ (४५१३)

च॒रम्	उदकम् (निघं०२।४)	जल
तत्	तेन (विभक्तेलुक्)	उस से
विप्र॒वम्	जगत्	जगत्
उप	उप +	-
जी॒व॒ति	उप + जीवति	जीता है

संस्कृतार्थः ।

तस्याः (देव्याः) समुद्रा विक्षरन्ति, तेन (समुद्रेण)
चतस्रः प्रदिशो जीवन्ति, ततः (मेघो भूत्वा) जलं क्षरति,
तेन जगद् उपजीवति ॥ ४२ ॥

भाषार्थः ।

उस (देवी) से समुद्र बहते हैं, उससे चार दिशाएँ
जीती हैं, उससे (मेघ बन कर) जल गिरता है,
उससे जगत् जीता है ॥ ४२ ॥

वह देवी पिछले मन्त्र की "गौरी" भन्तरिक्षस्थानीया वाक्
मर्षात् विद्युत् है ॥

(४५१३) क०सं०१२०११४मं०४३

शकधूमोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

शकमयं धूममारादपश्यं विषुव-
 तापरएनावरेण । उच्चाणं पृश्निम-
 पचन्तवीरास्तानि धर्माणि प्रथमा-
 न्यासन् ॥ ४३ ॥

शकऽमयम्	गोमयसम्ब- न्धिनम्.	गोबर संबंधी को
धूमम्	धूमम्	धूम को
आरात्	दूरात्	दूर से
अपश्यम्	दृष्टवानस्मि	मैंने देखा है
विषुऽवता	विषुवता	विषुवत से
परः	परः	परे

कामोऽहम् (५५१४)

ए॒ना	अ॒नेन	इ॒स से
अ॒व॒रे॒ण	अ॒व॒रे॒ण	नि॒च॒ले से
उ॒च्चा॒णम्	ब॒लीव॒र्दम्	बै॒ल को
पृ॒श्नि॒म्	चि॒त्रा॒ङ्गम्	चि॒तक॒बरे को
अ॒प॒च॒न्त	अ॒प॒च॒न्त	प॒का॒या है
वी॒राः	वी॒राः	वी॒रों ने
ता॒नि	ता॒नि	वे
ध॒र्मा॒णि	ध॒र्मा॒णि	ध॒र्म
प्र॒थ॒मा॒नि	प्र॒थ॒मा॒नि	प॒ह॒ले
आ॒स॒न्	आ॒स॒न्	थे

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) गोमयसम्बन्धिनं धर्मं दूराद् दृष्ट्वा-

१ (५१५) प्र०मै०१८०११४मै०४१

नस्मि, (यः) अनेन अवरेण विषुवता परः (आसीत्)
वीराः चित्राङ्गं बलीवर्दमपचन्त, एतानि धर्माणि
प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥

भाषार्थः ।

मैंने गोबर के धूप को दूर से देखा है, (जो)
इस निचले विषुवत से परे (था) वीरों ने चित-
कबरे बैल को पकाया है, ये पहले के धर्म थे ।४३।

‘शकधूम’को अथर्व० (६१२८।१)में नक्षत्रों का राजा लिखा है,
इससे और शब्दार्थसे प्रतीत होता है कि शकधूम वह गोबर का सा
इवेतधूम है जो कई स्थानोंमें नक्षत्रों के बीच बीचमें दिखाई देता है
और जो अत्यन्त सूक्ष्म तत्वोंका प्रकाशमय वायु और भविष्य तारा
मण्डल का पूर्वरूप है । निचला विषुवत् वह पूर्व पश्चिम रेखा
है जो उत्तर मेरु से ९० अंश दक्षिण की ओर है और जिस पर सूर्य
के आने से दिन रात तुल्य होते हैं, ऋषि दक्षिण के किसी
शकधूम (नेब्युला) को देखकर कहते हैं कि वीर अर्थात् देवता
चितकबरे बैल अर्थात् तारागण से अंकित द्यौ को पका रहे हैं, जब
वह एक जायगा तब इससे तारामण्डल युक्त एक नवीन द्यौ बनेगा,
इसी सृष्टिरचनारूप पञ्चन कर्म का यह धूम है जो विषुमण्डल से
परे दीख पड़ता है, ये पहले के धर्म थे अर्थात् मनुष्य रचनासे पहले
इसी धर्म से इस हमारे द्यौ की उत्पत्ति हुई है ॥

का०न०१००११४१०४४ (४५११)

अग्निसूर्योवायुश्चदेवताः, भुरिक्त्रिष्टुप्

छन्दः १२११११११११

चयः केशिनः ऋतुयाविचक्षते संवत्स-

रेवपतएकएषाम् । विप्रवमेकोऽभि-

चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्यदृष्टेनरु-

पम् ॥ ४४ ॥

चयः	त्रयः	तीन
केशिनः	केशयुक्ताः	केशों वाले
ऋतुया	नियमक्रमेण	नियम के क्रम से
वि	वि +	-
चक्षते	वि + चक्षते, दृश्यन्ते (व्यत्ययेन कर्णिणि कृतप्रत्ययः)	देखे जाते हैं

(४५१७) क्र०सं०१सू०१३४सं०४४

संवत्सरे

संवत्सरे

वर्ष में

वपते

वपनं करोति

वपन करता है

एकः

एकः

एक

एषाम्

एषाम् (मध्ये)

इनमें से

विश्वम्

जगत्

जगत् को

एकः

एकः

एक

अभि

अभि +

-

चष्टे

अभि + चष्टे,
सर्वतः पश्यतिसब ओर से
देखता है

शचीभिः

बलैः

बलों द्वारा

भ्राजिः

शीघ्रगतिः

शीघ्र गति

एकस्य

एकस्य

एक का

क्र०स०१सू०११४सं०४४ (४५१८)

दृश्ये	दृश्यते (व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः)	देखी :
न	न	नहीं
रूपम्	रूपम्	रूप

संस्कृतार्थः ।

केशयुक्ताः त्रयः (देवाः) नियमक्रमेण ह
एषाम् (मध्ये) एकः संवत्सरे वपनं करोति, एकः
बलैर्जगत् सर्वतः पश्यति, एकस्य (च) शीघ्रम्
दृश्यते न रूपम् ॥ ४४ ॥

भाषार्थः ।

केशों वाले तीन (देव) नियम के क्रम से देखे जाते
हैं, इन में से एक वर्ष में वपन करता है, एक बल
द्वारा जगत् को सब ओर से देखता है, (और) उस
की शीघ्र गति देखी जाती है रूप नहीं ॥ ४४ ॥

केशों वाले तीन देव अग्नि वायु और सूर्य हैं । अग्नि की
ज्वालाएं, सूर्य की किरणें, और वायु का स्पर्श केशरूप हैं, अग्नि
का वपन कर्म वनों को जलाना हो सकता है ॥

(४५१९) अ००१६०१६३म०

देवता, जगतीछन्दः । १२।२।१२।१२।

चत्वारिवाक्परमितापदानि

विदुर्ब्राह्मणायेमनीषिणः । गुरु

त्रीणिनिहितानेङ्गयन्ति तुरीयं

वाचीमनुष्यावदन्ति ॥ ६५ ॥

चत्वारि	चत्वारि	चार
वाक्	वाचः	बाणी के
परमिता	परिमित	नापे हुए
पदानि	पदानि	पद
तानि	तानि	उन को
विदुः	जानन्ति	जानते हैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

(४५२१) क्र.सं० १९०११४मं० ४१

संस्कृतार्थः।

चत्वारि वाचः पदानि परिमितानि (सन्ति) तानि
ये बुद्धिमन्तो ब्राह्मणाः (ते) जानन्ति, (तेषु) ग्रीणि
गुहायां निहितानि, न प्रकटीभवन्ति, वाचःचतुर्थम्
(पदम्) मनुष्यावदन्ति ॥ ४५ ॥

भाषार्थः ।

चार वाणी के पद नापे हुए (हैं) उनको जो बुद्धि-मान ब्राह्मण हैं (वे) जानते हैं, (उनमें) तीन गुफामें रखे हुए हैं, प्रकट नहीं होते, वाणी के चौथे (पद) को मनुष्य बोलते हैं ॥ ४५ ॥

बाणी के तीन पद ये हो सकते हैं एक देवताओं की बाणी
अर्थात् नक्षत्र सूर्य चन्द्र वायु आकाश पृथिवी, पर्वत, नदी इत्यादि
की शब्द रहित बाणी, दूसरी ओषधि, वनस्पति, घास, पत्ते कूड
इत्यादि की शब्द रहित बाणी, तीसरी पशु पक्षि आदि की शब्द
रहित और शब्द वाली बाणी इन बाणियों को नेत्र अर्थात्
देवताओं के भक्त विद्वान् ब्राह्मण (उच्च कोटि के पुरुष) जानते हैं ॥

सूर्योदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।११।

इन्द्रमिचंवर्णमग्निमाहुरथो-

दिव्यः स सुपणो गन्तमान् । एकं स-

क्र०सं०१सू०१६४सं०४६ (४५२२)

द्विप्रावहुधावदन्त्यग्निंयममातरि-

प्रवानमाहुः । ४६ ।

इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
मित्रम्	मित्रम्	मित्र को
वरुणम्	वरुणम्	वरुण को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
आहुः	आहुः	कहते हैं
अथो०	अपिच	और भी
दिव्यः	दिविभवः	द्यौ में होने वाला
सः	सः	वह
सु०प०र्णः	सुपक्षः	सुन्दर पंखों वाला

(४५२३) मा०मं०१सू०१६४मं०४६

गरु॒त्मान्	गरुडः	गरुड, पक्षी
ए॒कम्	एकम्	एक को
सत्	सत्	हुए २ को
वि॒प्राः	मेधाविनः	बुद्धिमान्
ब॒हु॒धा	बहुधा	बहुत प्रकार से
व॒द॒न्ति	कथयन्ति	कहते हैं
अ॒ग्नि॒म्	अग्निम्	अग्नि को
य॒मम्	यमम्	यम को
भ॒तरि॒-	मातरिश्वानम्	मातरिश्वा को
प्र॒वानम्		
आ॒हः	आहुः	कहते हैं

(४५१५) क्र०सं०१२००१६४सं०७७

नृसदनादृतस्यादिद्घृतेनपृथिवी

व्युद्यत ॥ ४७ ॥

कृष्णम्

कृष्णः

काला

निऽयानम्

नीडः

घोंसला

हरयः

सौवर्णाः

सुनहरी

सुऽप्रर्णाः

शोभनपक्षाः
(पक्षिणः)

सुन्दर परो वाळे
(पक्षी)

अपः

अपः

जलों को

वसानाः

परिदधानाः

पहनते हुए

दिवस्

दिवस्

द्यौ को

उत्

उत् +

-

पतन्ति

उत् + पतन्ति,
उड्डयन्ते

उडते हैं

श्री०मं०१२०१६४मं०४७ (४५२६)

ते	ते	वे
आ	आ+	-
अववृत्तन्	आ+अववृत्तन्, परावर्तन्ते	लौटते हैं
सदनात्	स्थानात्	स्थान से
कृतस्य	कृतस्य	कृत के
आत्	तदा	तब
इत्	(पूरणः)	-
घृतेन	उदकेन	जल से
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
वि	वि +	-
उद्यते	वि+उद्यते, विशेषेण क्रियति (उन्दीकलेदने)	खूब तर होजातीहै

संस्कृतार्थः ।

कृष्णर्णोवनीडः (यस्ति) सोवर्णाः पश्चिणः अयःपरिद-

(४५३७) ऋ०मं०१सू०१६४मं०४८

धानाः दिवमुज्जयन्ते, (यदा) ते ऋतस्य स्थानात्
परावर्तन्ते तदा पृथिवी उदकेन विक्लियति ॥ ४७ ॥

भाषार्थः ।

काला घोंसला, (हैं और) सुनहरी पक्षी जल को
पहनते हुए आकाश में उड़ते हैं, (जब) वे ऋत के
स्थान से लौटते हैं तब पृथिवी खूब जल से तर
होती है ॥ ४७ ॥

‘काला घोंसला’ बिन सूर्य का आकाश है और ‘सुनहरी पक्षी’
किरणें हैं जो समुद्र के जल को वाष्प बनाकर ऊपर आकाश में
उठाती हैं। ‘ऋत का स्थान’ आकाश है, जब किरणें आकाश से
लौटकर विद्युत रूप में परिवर्तित होती हैं तब वृष्टि होती है ॥

संवत्सरात्माकालोदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं चीणिन-

भ्यानि॒क॒उ॒त॒चि॒च॒के॒त । तस्मि॑न्त॒सा-

कां॒चि॒श॒ता॒न॒श॒ङ्ख॒वोऽपि॑ताः प्र॒ष्टि॒र्न॒च-

ला॒च॒ला॒सः ॥ ४८ ॥

(४५२९) क्र०स०।सू०।१४३०४६

त्रिऽशताः	शतत्रयसङ्ख्याकाः	तीन सौ
न	इव	मानो
शङ्कुवः	शङ्कुवः	कौल
अर्पिताः	स्थापिताः	स्थापन किये हुए
षष्टिः	षष्टिसङ्ख्याकाः	साठ
न	न	नहीं
चलाचलासः	शिथिलाः	ढीले

संस्कृतार्थः ।

(संवत्सररूपस्य रथस्य) द्वादश प्रधयः, एकं चक्रं तिस्रो नाभयः (य सन्ति) कस्तम् (रथम्) जानाति ? तस्मिन् षष्टिसहिताः शतत्रयसङ्ख्याकाः शङ्कुव इव स्थापिताः (ये) शिथिलाः न (भवन्ति) ॥ ४८ ॥

भाषार्थः ।

(वर्ष रूप रथ के) बारह घरे एक पहिया (और)

अ०मं०१ सू०१६४मं०४१ (४५३०)

तीन नाभियाँ (है) कौन उस(रथ) को जानता है? उस
में तीन सौ साठ कील मानो स्थापन किये हुए हैं
(जो) ढीले नहीं (होते) ॥ ४८ ॥

बारह घेरे बारह महोने, एक पहिया एक वर्ष और तीन नाभि
चार चार महोने की तीन ऋतु होसकती हैं । ३६० कील वर्षको
पहिये के ३६० अरे हैं ॥

सरस्वतीदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

यस्तेस्तनः शशयोयोसयोभू-

र्येनविष्वापुष्यसिवाग्वाणि । योर-

तनधावसुविद्यः सुदत्रः सरस्वतित-

मिहधातवेकः । ४९ ।

यः

ते

स्तनः

यः

तव

स्तनः

जो

तेरा

थन

(४५३१) क्र०मं०१सं०११४मं०४९

शशयः	क्षयरहितः	क्षय से रहित
यः	यः	जो
मयःऽभूः	सुखस्यभावयिता	सुख के देने वाला
येन	येन	जिस से
विप्रवा	विश्वानि	सब को
पुष्यसि	पोषयसि	पुष्ट करती हो
वार्याणि	वरणीयानि	धरने योग्यों को
यः	यः	जो
रत्नऽधाः	रत्नानां धारयिता	रत्नों के धारण करने वाला
वसुऽवित्	धनानां लब्धा	धनों के लाभ करने वाला
यः	यः	जो

क्र०सं०१ स०१६४सं०४९ (४५३१)

सु॒ऽद॒चः	बहु॒दानः	बहु॒त दा॒नी
सर॒स्वति	हे सर॒स्वति !	हे सर॒स्वती
तम्	तम्	उस को
इ॒ह	इह	यहां
धा॒तवे	पा॒नार्थम्	पीने के लिये
कः	कुरु	कर

संस्कृतार्थः ।

हे सरस्वति ! यस्तेस्तनः क्षयरहितः, यः सुखस्य भावयिता, येन सर्वाणि वरणीयानि (वस्तूनि) पोषयसि, यो रत्नानां धारयिता, यो धनानां लब्धा बहुदानः (चा॒स्ति) तं पा॒नार्थम् इह कुरु ॥ ४९ ॥

भाषार्थः ।

हे सरस्वती ! क्षयसे रहित जो आपका स्तन, जो सुख के देने वाला, जिससे आप सब वरने योग्य (वस्तुओं) को पुष्ट करती हो, जो रत्नों के धारण करने

(४५१३) क्र०मं० ११८०११४मं० ५०

वाला, जो धनों के लाभ करने वाला, (और) खूब दानी
(है) उसको पीने के लिये यहाँ करो ॥ ४९ ॥

सरस्वती वाणी है जिसके दो स्तन हैं सत्य और झूठ (देखो
ऐ० ब्रा० ४।१।१ वाचो वाच तौ स्तनौ सत्यानृते वाच ते) ऋषि
सत्य के स्तन को मांगते हैं जो क्षया रहत और सुख के देने
वाला है ॥

साध्यादेवताः, त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑ य॒जन्त॑ दे॒वास्ता-
नि॒धर्मा॑णि प्र॒थमा॑न्या॒सन् । ते॒ह॒नाकं॑
महि॒मानः॑ स॒चन्त॑ य॒त्र पूर्वे॑ सा॒ध्याः स-
न्ति॑ दे॒वाः ॥ ५० ॥

य॒ज्ञेन॑

य॒ज्ञेन॑

य॒ज्ञ से

य॒ज्ञम्

य॒ज्ञम्

य॒ज्ञ को

क्र० सं० १२५०१३४४ सं० ५० (४५३४)

अयजन्त	अयजन्त	यजन किया
देवाः	देवाः	देवताओं ने
तानि	तानि	वे
धर्माणि	धर्माणि	धर्म
प्रथमानि	प्रथमानि	पहिले
आसन्	आसन्	थे
ते	ते	वे
ह	खलु	सचमुच
नाकम्	स्वर्गम्	स्वर्ग को
महिमानः	महत्त्वयुक्ताः	महत्त्व से युक्त
सूचन्त	प्राप्तवन्तः	प्राप्त हुए

(६५३५) संस्कृत-शब्द-कोश-प्रकरण-२०५

यच्च	यत्र	जहां
पूर्वे	प्राचीनाः	प्राचीन
साध्याः	साध्याः	साध्य
सन्ति	सन्ति	हैं
देवाः	देवाः	देवता

संस्कृतार्थः ।

देवायज्ञेनयज्ञमयजन्त, तानि धर्माणि प्रथमान्या-
सन्, ते महत्त्वयुक्ताः (सन्तः) स्वर्गं खलु प्राप्नवन्तो
यत्र प्राचीनाः साध्यादेवाः सन्ति ॥ ५० ॥

भाषार्थः ।

देवताओं ने यज्ञ के द्वारा यज्ञ को किया, वे
पहिले के धर्म थे, वे महत्त्व से युक्त (हुए २) सच-
मुच स्वर्ग को प्राप्त हुए जहां प्राचीन साध्य देवता
हैं ॥ ५० ॥

ਸਮਾਂ: ੨:੦੦ (੨:੦੦)

यहाँ पर "यज्ञेन" प्रजापति का वाचक है जिसने अपना शरीर सृष्टिरचना रूपो यज्ञ के लिये देवताओं को अर्पण किया, यह मनुष्यसृष्टि से पहले के धर्म थे, इसी का अनुकरण करके मनुष्य यज्ञ को करते हैं अर्थात् तन मन धन को सृष्टि के विकास रूप देवकार्य अर्थात् ईश्वर के काम में लगाते हैं, सृष्टियज्ञ में देवता अपने को दूसरों के लिये दे रहे हैं, सूर्य दिन दिन प्रकाश हीन होता जाता है जल सूखते जाते हैं वायु की गति मन्द होती जाती है इत्यादि, इसी से देवता महत्त्व को पहुँचे और पूर्वसे सिद्ध देवताओं के सालोक्य को पाया ॥

पर्जन्याअग्नयश्चदेवताः, अनुष्टुप्छन्दः।८।८।८।८

समानमेतदुदकमुच्चैत्यवचा-

हभिः । भूमिं॑ प॒र्जन्य॑ । जि॒न्व॑न्ति दि॒वं ।

जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥

समानम्

एकरूपम्

एक रूप वाला

एतत्

एतत्

यह

(४५३७) क्र०मं०१सू०१४मं०५१

उदकम्	उदकम्	जल
उत्	ऊर्ध्वम्	ऊपर
च	(पूरणः)	-
एति	गच्छति	जाता है
अव	अधः	नीचे
च	च	और
अहऽभिः	प्रतिदिनम्	प्रतिदिन
भूमिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
पर्जन्याः	मेघाः	मेघ
जिन्यन्ति	प्रीणयन्ति	प्रसन्न करते हैं
दिवम्	दिवम्	द्यौ को
जिन्वन्ति	प्रीणयन्ति	प्रसन्न करती हैं

क्र०सं० १ सू० १६४ सं० ५२ (४५३८)

अ॒ग्नयः	अ॒ग्नयः	अ॒ग्नियां
---------	---------	-----------

संस्कृतार्थः ।

एतद्वदकमेकरूपम् (सत्) प्रतिदिनमूर्ध्वमधश्च
गच्छति, पृथिवीमेघाःप्रीणयन्ति, दिवम् (च) अग्नयः
प्रीणयन्ति ॥ ५१ ॥

माषार्थः ।

यह जल एक रूप वाला (हुआ २) प्रतिदिन
ऊपर और नीचे जाता है, पृथिवी को मेघ प्रसन्न
करते हैं (और) द्यौ को अग्नियां प्रसन्न करती हैं ॥ ५१ ॥

“अग्नियां” देवताओं के लिये हवियों को ऊपर ले जाने से
द्यौ को तृप्त करती हैं ॥

सरस्वान् सूर्योदेवता, त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

दिव्यं सु॑प॒णं वा॒य॒सं ह॒न्त॒म॒पां

गर्भं॑ दर्श॒त सोष॑धीनाम् । अभी॒पतो

वृ॒ष्टिभि॑स्त॒र्पय॑न्तं सर॑स्व न्त॒मय॑से

जोह॑वीमि ॥ ५२ ॥

(४५३९) क्र०स०१सू०१३४सं०५३

दिव्यम्	दिविभवम्	द्यौ में होने वाले को
सुऽपर्याम्	शोभनपक्षम्	सुन्दर परोँ वाले को
वायसम्	पक्षिणम्	पक्षी को
बृहन्तम्	महान्तम्	बड़े को
अपाम्	अपाम्	जलों के
गर्भम्	बीजम्	बीज को
दर्शितम्	दर्शनीयम्	दर्शनीय को
ओषधीनाम्	ओषधीनाम्	ओषधियों के
अभिपत्ताम्	अभिमुखंप्राप्ताम्	सामने आए हुएों को
वृष्टिभिः	वृष्टिभिः	वर्षाओं से
तर्पयन्तम्	तर्पयन्तम्	तृप्त करते हुए को

अ०सं०१सू०१६४अं०५२ (४५४०)

सरस्वन्तम्	सरसम् (आ०को०)	रस वाले को
अवसे	रक्षणार्थम्	रक्षा के लिये
जोह्वीमि	पुनःपुनराह्वयामि	बार २ बुलाता हूं

संस्कृतार्थः ।

(अहम्)जलानामोषधीनाम् (च) बीजरूपंसम्मुखं
प्राप्तान् (स्तोतृन्) वृष्टिभिस्तपयन्तं सरसं
दिविभवं शोभनपक्षं महान्तं दर्शनीयम् (च) पक्षिणं
रक्षणार्थं पुनःपुनराह्वयामि ॥ ५२ ॥

भाषार्थः ।

मैं जलों (और) ओषधियों के बीजरूप, सामने
आए हुए [स्तोताओं] को वर्षाओंसे तृप्त करने वाले,
रस वाले, द्यौ में होने वाले, सुन्दर पंखों वाले महान
(और) दर्शन के योग्य पक्षी को रक्षा के लिये बार २
बुलाता हूं ॥ ५२ ॥

यह पक्षी सूर्य है ॥

इति चतुःषष्ट्यधिकशततमं सूक्तम्





